अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन

सहज

मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद

के अभिव्यक्ति क्रम में

आवर्तनशील अर्थशास्त्र

प्रणेता एवं लेखक

ए. नागराज

श्री भजनाश्रम, अमरकंटक

जिला – अनूपपुर, म. प्र. (भारत) – 484886

प्रकाशक :

जीवन विद्या प्रकाशन, दिव्यपथ संस्थान

अमरकंटक, जिला - अनूपपुर (म.प्र.), भारत, 484886

www.divya-path.org | info@divya-path.org

प्रणेता एवं लेखक :

ए. नागराज

सर्वाधिकार दिव्यपथ संस्थान के पास सुरक्षित

सहयोग राशि : 200/-

पूर्व संस्करण : प्रथम – 2001, द्वितीय - 2009

मुद्रण : 14 जनवरी 2024

ISBN : 978-81-956883-8-8

प्रामाणिक वेबसाइट : www.madhyasth.org

प्रिंटेड पुस्तक प्राप्ति : books@divya-path.org

All Websites : www.jvidya.com

मुद्रक : युगबोध डिजिटल प्रिंटस,

समता कॉलोनी, रायपुर, छ.ग. – 492010

सदुपयोग नीति :

यह प्रकाशन 'सर्वशुभ' के अर्थ में है और इसका कोई व्यापारिक उद्देश्य नहीं है। इसका उपयोग एवं नकल, निजी अध्ययन के लिए उपलब्ध है। इसके अलावा किसी भी अर्थ में प्रयोग (नकल, मुद्रण, आदि) करने के लिए 'दिव्यपथ संस्थान', अमरकंटक, जिला अनुपपुर (म.प्र.) भारत - 484886 से पूर्व में लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है। यह अपेक्षित है की इन अवधारणाओं को दूसरी जगह प्रयोग करते समय इस ग्रंथ का पूर्ण उद्धरण (संदर्भ) दिया जाएगा। कृपया दर्शन की पवित्रता बनाये रखें।

विकल्प

1. अस्थिरता, अनिश्चयता मूलक भौतिक-रासायनिक वस्तु केन्द्रित विचार बनाम विज्ञान विधि से मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। रहस्य मूलक आदर्शवादी चिंतन विधि से भी मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। दोनों प्रकार के वादों में मानव को जीव कहा गया है।

   विकल्प के रूप में अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन विधि से मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद में मानव को ज्ञानावस्था में होने का पहचान किया एवं कराया।

   मध्यस्थ दर्शन के अनुसार मानव ही ज्ञाता (जानने वाला), सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व जानने-मानने योग्य वस्तु अर्थात् जानने के लिए संपूर्ण वस्तु है यही दर्शन ज्ञान है इसी के साथ जीवन ज्ञान मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सहित सहअस्तित्व प्रमाणित होने की विधि अध्ययनगम्य हो चुकी है।

   अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान, मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद-शास्त्र रूप में अध्ययन के लिए मानव सम्मुख मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

2. अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन के पूर्व मेरी (ए. नागराज, अग्रहार नागराज, जिला हासन, कर्नाटक प्रदेश, भारत) दीक्षा अध्यात्मवादी ज्ञान वैदिक विचार सहज उपासना कर्म से हुई।

3. वेदान्त के अनुसार ज्ञान "ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या" जबकि ब्रह्म से जीव जगत की उत्पत्ति बताई गई।

उपासना	:-	देवी देवताओं के संदर्भ में।
कर्म	:-	स्वर्ग में मिलने वाले सभी कर्म (भाषा के रूप में)
मनु धर्म शास्त्र में	:-	चार वर्ण चार आश्रमों का नित्य कर्म प्रस्तावित है।
कर्मकाण्डों में	:-	गर्भ संस्कार से मृत्यु संस्कार तक सोलह प्रकार के कर्मकाण्ड मान्य है एवं उनके कार्यक्रम है।

   इन सबके अध्ययन से मेरे मन में प्रश्न उभरा कि -

4. सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म से उत्पन्न जीव जगत मिथ्या कैसे है? तत्कालीन वेदज्ञों एवं विद्वानों के साथ जिज्ञासा करने के क्रम में मुझे :-

   समाधि में अज्ञात के ज्ञात होने का आश्वासन मिला। शास्त्रों के समर्थन के आधार पर साधना, समाधि, संयम कार्य संपन्न करने की स्वीकृति हुई। मैंने साधना, समाधि, संयम की स्थिति में संपूर्ण अस्तित्व सहअस्तित्व होने, रहने के रूप में अध्ययन, अनुभव विधि से पूर्ण समझ को प्राप्त किया जिसके फलस्वरूप मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद वाङ्गमय के रूप में विकल्प प्रकट हुआ।

5. आदर्शवादी शास्त्रों एवं रहस्य मूलक ईश्वर केन्द्रित चिंतन ज्ञान तथा परंपरा के अनुसार - ज्ञान अव्यक्त अनिर्वचनीय।

मध्यस्थ दर्शन के अनुसार - ज्ञान व्यक्त वचनीय अध्ययन विधि से बोधगम्य, व्यवहार विधि से प्रमाण सर्व सुलभ होने के रूप में स्पष्ट हुआ।

6. अस्थिरता, अनिश्चियता मूलक भौतिकवाद के अनुसार वस्तु केन्द्रित विचार में विज्ञान को ज्ञान माना जिसमें नियमों को मानव निर्मित करने की बात कही गयी है। इसके विकल्प में सहअस्तित्व रुपी अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान के अनुसार अस्तित्व स्थिर, विकास और जागृति निश्चित संपूर्ण नियम प्राकृतिक होना, रहना प्रतिपादित है।

7. अस्तित्व केवल भौतिक रासायनिक न होकर भौतिक रासायनिक एवं जीवन वस्तुएं व्यापक वस्तु में अविभाज्य वर्तमान है यही "मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद" शास्त्र सूत्र है।

सत्यापन

8. मैंने जहाँ से शरीर यात्रा शुरू किया वहाँ मेरे पूर्वज वेदमूर्ति कहलाते रहे। घर-गाँव में वेद व वेद विचार संबंधित वेदान्त, उपनिषद तथा दर्शन ही भाषा ध्वनि-धुन के रूप में सुनने में आते रहे। परिवार परंपरा में वेदसम्मत उपासना, आराधना, अर्चना, स्तवन कार्य संपन्न होता रहा।

9. हमारे परिवार परंपरा में शीर्ष कोटि के विद्वान सेवाभावी तथा श्रमशील व्यवहाराभ्यास एवं कर्माभ्यास सहज रहा जिसमें से श्रमशीलता एवं सेवा प्रवृत्तियाँ मुझको स्वीकार हुआ। विद्वता पक्ष में प्रश्नचिन्ह रहे।

10. प्रथम प्रश्न उभरा कि -

ब्रह्म सत्य से जगत व जीव का उत्पत्ति मिथ्या कैसे?

दूसरा प्रश्न -

ब्रह्म ही बंधन एवं मोक्ष का कारण कैसे?

तीसरा प्रश्न -

शब्द प्रमाण या शब्द का धारक वाहक प्रमाण?

आप्त वाक्य प्रमाण या आप्त वाक्य का उद्गाता प्रमाण?

शास्त्र प्रमाण या प्रणेता प्रमाण?

समीचीन परिस्थिति में एक और प्रश्न उभरा

चौथा प्रश्न -

भारत में स्वतंत्रता के बाद संविधान सभा गठित हुआ जिसमें राष्ट्र, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय चरित्र का सूत्र व्याख्या ना होते हुए जनप्रतिनिधि पात्र होने की स्वीकृति संविधान में होना।

वोट-नोट (धन) गठबंधन से जनादेश व जनप्रतिनिधि कैसा?

संविधान में धर्म निरपेक्षता - एक वाक्य एवं उसी के साथ अनेक जाति, संप्रदाय, समुदाय का उल्लेख होना।

संविधान में समानता - एक वाक्य, उसी के साथ आरक्षण का उल्लेख और संविधान में उसकी प्रक्रिया होना।

जनतंत्र - शासन में जनप्रतिनिधियों की निर्वाचन प्रक्रिया में वोट नोट का गठबंधन होना।

ये कैसा जनतंत्र है?

11. इन प्रश्नों के जंजाल से मुक्ति पाने को तत्कालीन विद्वान, वेदमूर्तियों, सम्माननीय ऋषि महर्षियों के सुझाव से -

(1) अज्ञात को ज्ञात करने के लिए समाधि एक मात्र रास्ता बताये जिसे मैंने स्वीकार किया।

(2) साधना के लिए अनुकूल स्थान के रूप में अमरकण्टक को स्वीकारा।

(3) सन् 1950 से साधना कर्म आरम्भ किया।

सन् 1960 के दशक में साधना में प्रौढ़ता आया।

(4) सन् 1970 में समाधि संपन्न होने की स्थिति स्वीकारने में आया। समाधि स्थिति में मेरे आशा विचार इच्छायें चुप रहीं। ऐसी स्थिति में अज्ञात को ज्ञात होने की घटना शून्य रही यह भी समझ में आया। यह स्थिति सहज साधना हर दिन बारह (12) से अट्ठारह (18) घंटे तक होता रहा।

समाधि, ध्यान, धारणा क्रम में संयम स्वयम् स्फूर्त प्रणाली मैंने स्वीकारा। दो वर्ष बाद संयम होने से समाधि होने का प्रमाण स्वीकारा। समाधि से संयम संपन्न होने की क्रिया में भी 12 घंटे से 18 घंटे लगते रहे। फलस्वरूप संपूर्ण अस्तित्व सहअस्तित्व सहज रूप में होना रहना मुझे अनुभव हुआ। जिसका वाङ्गमय "मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद" शास्त्र के रूप में प्रस्तुत हुआ।

12. सहअस्तित्व :- व्यापक वस्तु में संपूर्ण जड़ चैतन्य संपृक्त एवं नित्य वर्तमान होना समझ में आया। सहअस्तित्व में ही :- परमाणु में विकासक्रम के रूप में भूखे एवं अजीर्ण परमाणु एवं परमाणु में ही विकास पूर्वक तृप्त परमाणुओं के रूप में 'जीवन' होना, रहना समझ में आया।
सहअस्तित्व में ही :- गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई – 'जीवन' रूप में होना समझ में आया।
सहअस्तित्व में ही :- भूखे व अजीर्ण परमाणु अणु व प्राणकोषाओं से ही संपूर्ण भौतिक व रासायनिक प्राणावस्था रचनायें तथा परमाणु अणुओं से रचित धरती तथा अनेक धरतियों का रचना स्पष्ट होना समझ में आया।

13. अस्तित्व में भौतिक रचना रुपी धरती पर ही यौगिक विधि से रसायन तंत्र प्रक्रिया सहित प्राणकोषाओं से रचित रचनायें संपूर्ण वन-वनस्पतियों के रूप में समृद्ध होने के उपरांत प्राणकोषाओं से ही जीव शरीरों का रचना रचित होना और मानव शरीर का भी रचना संपन्न होना व परंपरा होना समझ में आया।

14. सहअस्तित्व में ही :- शरीर व जीवन के संयुक्त रुप में मानव परंपरा होना समझ में आया।
सहअस्तित्व में, से, के लिए :- सहअस्तित्व नित्य प्रभावी होना समझ में आया। यही नियतिक्रम होना समझ में आया।

15. नियति विधि :- सहअस्तित्व सहज विधि से ही :-

(i) अस्तित्व में चार अवस्थाएं

- पदार्थ अवस्था
- प्राण अवस्था
- जीव अवस्था
- ज्ञान अवस्था

और

(ii) अस्तित्व में चार पद

- प्राणपद
- भ्रांति पद
- देव पद
- दिव्य पद

(iii) और

- विकास क्रम, विकास
- जागृति क्रम, जागृति

तथा जागृति सहज मानव परंपरा ही मानवत्व सहित व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी नित्य वैभव होना समझ में आया। इसे मैंने सर्वशुभ सूत्र माना और सर्वमानव में शुभापेक्षा होना स्वीकारा फलस्वरूप चेतना विकास मूल्य शिक्षा, संविधान, आचरण व्यवस्था सहज सूत्र व्याख्या मानव सम्मुख प्रस्तुत किया हूँ।

भूमि स्वर्ग हो, मनुष्य देवता हो,
धर्म सफल हो, नित्य शुभ हो।

- ए. नागराज

अनुक्रमणिका

अध्याय		पृष्ठ संख्या
1.	अर्थ को पहचानने की शुरूआत क्रम से अर्थ की परिभाषा/मान्यता	1
2.	आर्वतनशील अर्थशास्त्र : दार्शनिक आधार	9
3.	आर्वतनशील अर्थशास्त्र : अवधारणा	25
4.	आवर्तनशीलता - अनिवार्यता और उसका स्वरूप	44
5.	उत्पादन और मूल्य	68
6.	प्रमाण का आधार : मानव	96
7.	जागृति और स्वतंत्रता	104
8.	परिवार मूलक ग्राम स्वराज्य व्यवस्था का स्वरूप	110
9.	परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था योजना	122

अध्याय - **1**

अर्थ को पहचानने की शुरूआत क्रम से अर्थ की परिभाषा/मान्यता

आर्वतनशील अर्थशास्त्र को हमें लोकमानस के सम्मुख प्रस्तुत करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ।

इसके पहले अभी तक व्यक्तिवादी समुदायों के रूप में गुज़री बीती मानव परंपरा में तत्कालीन विधियों से मानव को ही स्वीकृत अर्थ का स्वरूप, परिवार में आबंटन अथवा बंटन, समुदायों में विनिमय, आवश्यकता, संभावना, स्रोत और मानव से किया गया प्रवृत्तियों और कार्यों का सामान्य स्पष्टीकरण को उचित समझकर उसे भी प्रस्तुत किए हैं।

मूलत: आदिमकालीन मानव की परंपरा का संबंध वर्तमान से जुड़ा होना स्वाभाविक है। दूसरी भाषा से नियति सहज है। स्वाभाविक का तात्पर्य हर काल देश में मानव अपनी अपनी सीमा में ही 'स्व' को स्वीकार करता हुआ इस धरती पर जीया हुआ है। इसका प्रमाण क्रमागत रूप में पायी जाने वाली पीढ़ी से पीढ़ी ही है। नियति का तात्पर्य विकास क्रम, विकास और जागृति क्रम, जागृति से है। जागृति का तात्पर्य जानने-मानने-पहचानने-निर्वाह करने वाला मानव ही है।

जब कभी भी एक से अधिक मानवों का होना सान्निध्य रूप (सान्निध्य का तात्पर्य साथ-साथ रहने से हैं) में होता है, तभी एक-दूसरे की पहचान होना स्वाभाविक है। संचेतनशीलता सहज मानव में पहचानने की क्रिया ही न्यूनतम संचेतना का प्रमाण है और संबंधों की पहचान भी न्यूनतम संचेतना का द्योतक है। इसका प्रमाण है, आज भी प्रत्येक स्वस्थ मानव, न्यूनतम रूप में आसपास की चीजों को पहचानता है। आस-पास का तात्पर्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधेन्द्रियों की पहुँच की सीमा है। संचेतना का तात्पर्य भी जानने, मानने, पहचानने एवं निर्वाह करने से है। इस प्रकार इस धरती पर आदिमानव शरीर रचना बंदर, भालू आदि किसी जीव जानवरों के शरीर में रचित होकर धरती में स्थापित होना स्वाभाविक रहा। क्योंकि इस धरती में मानव शरीर रचना के पहले किसी एक प्रजाति के जीव शरीर रचना और उसकी परंपरा स्थापित होने के उपरान्त दूसरे प्रजाति की शरीर रचना सहित परंपरा विधियों से विकसित होना देखा जाता है। मेधस युक्त शरीरों में समृद्ध मेधस युक्त शरीरों के क्रम को इस धरती पर देखा जा सकता है। इसी क्रम में मानव शरीर रचना का भी उद्भूत होना, मेधस रचना क्रम एवं उसकी परिपूर्णता के अर्थ में मानव शरीर में ही सर्वोपरि समृद्ध मेधस रचना एवं उसके अनुरूप शरीर कार्य तंत्र स्पष्ट हो चुका है। इसी के साथ यह भी स्पष्ट है कि मानव शरीर रचना के पहले की जितने भी प्रकार के शरीर रचनाएं प्रस्तुत हैं वे भी समीपस्थ

वस्तुओं, घटनाओं से व्यंजित होना दिखाई पड़ती हैं। व्यंजित होने का तात्पर्य तुरंत ही उस ओर (समीचीन शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) अपने प्रवृत्ति को नियोजित करता हुआ से है। इसलिए आदिमानव का भी समीचीन स्थिति, गति, घटनाओं से व्यंजित होना सहज सिद्ध होता है।

एक से अधिक मानवों के लिए सर्वप्रथम रूप के आधार पर संबंधों को पहचानना स्वाभाविक रहा है फलस्वरूप आवश्यकताएं उद्गमित होना अर्थात् आशा-विचार-इच्छा के रूप में गतित होना रहा है। इसी क्रम में खाने-पीने के लिए पहली आवश्यकता, बैठने-सोने स्थल की आवश्यकता, शीत-वात-वर्षा से बचने के लिए आवश्कताएं उद्गमित होती रही। इसी क्रम में पत्ते, वल्कल और घास-फूस से काम लेता हुआ मानव कन्द-मूल तक पहचानने की क्रिया सम्पादित करता रहा। साथ ही क्रूर जीव जानवरों के उपद्रवों से बचने के उपायों को खोजता ही रहा। साथ ही प्रजनन कार्य सम्पन्न होता ही रहा। संतानों का पालन-पोषण-लालन मानव से पूर्व में रही जीवों से भिन्नता को पहचानना रहे आया।

यह भी स्वाभाविक है कि विभिन्न भौगोलिक परिस्थिति की जलवायु भिन्नताएं तब भी रही हैं, अभी भी हैं। अस्तु ऐसी विभिन्न जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों में शुभारंभ किए हुए मानव परंपराएं अपने-अपने रूप (नस्ल) और रंग के साथ होती रही। यही मूलत: जब एक दूसरे जलवायु में पले मानव को देखने को मिला कि नस्ल और रंग की भिन्नतावश द्वेष अथवा भय के आधार पर परस्पर मार-पीट करते आए। यह क्रम जंगलों से कबीला, ग्राम-समूह तक पहुंचने के लिए मानव में पाई जाने वाली कल्पनाशीलता, कर्म स्वतंत्रता की महिमावश प्रवृत्ति और प्रयास स्फूर्त होता रहा। क्योंकि हर मानव में कल्पनाशीलता और कर्म स्वतंत्रता प्रमाणित होते ही रहा। यही प्रवृत्ति और कल्पनाशीलता सहज उद्गमन का भी तात्पर्य है। यही पीढ़ी से पीढ़ी में परिवर्तन का कारण रहा है। परिवर्तन वन-वनस्पति-काष्ठ युग से शिलायुग और धातुयुग तक पहुँचा। यह ग्राम और कबीले के रूप में जीने तक पहुँच गया। कुछ परिवेश में जीते आये मानव ने जीव-जानवरों को अपने आहार के रूप में स्वीकारा, कुछ परिवेश में जीये हुए मानव, वनस्पतियों से पेट भरना सीखते आया। अधिकांश मानव जो आहार को वनस्पतियों से प्राप्त करते रहे हैं वे युग परिवर्तन क्रम में कृषि कार्य को अपनाए। यहाँ यह तथ्य स्मरणीय है कि वन से मानव के खाने योग्य चीजों को अनाज के रूप में भी पहचानना आरंभ हुआ। साथ ही जंगल में पाये जाने वाले कुछ प्रकार के जानवरों को स्वाभाविक रूप में ही मानव ने अपनी नैसर्गिकता प्रदान कर, उपयोग करने के अर्थ को सार्थक करते आया। उपयोगिताएं कृषि के लिए सहायक होने के क्रम में और आहार के लिए सहायक होने के क्रम में सोची गई। इस स्थिति तक मूलत: आवश्यकताएं खाने-पीने, ओढ़ने-पहनने के साथ-साथ सोने और रहने के निश्चित स्थान, उसके स्वरूप तक पहुँचे। नस्ल और रंग संबंधी भय और द्वेष, विविध कबीला समूहों

ग्रामवासियों के साथ बना ही रहा। अपनी-अपनी प्रजाति के समूहों को सुदृढ़ बनाने के क्रम में, सतत परिवर्तन होते ही रहा। हर परिवर्तन के साथ आवश्यकताओं का स्वरूप, तादात और गुणवत्ता अपने आप बदलती रही। यह दो विधाओं में अपने-आप स्पष्ट होते आई। पहला आहार, आवास, अलंकार विधा में परिवर्तन, दूसरा भय और द्वेष वश आक्रमण प्रतिरोध कार्यों के क्रम में घूंसा, झापड़, गला घोटने की क्रियाओं से चलकर पत्थर और डंडे से मारपीट करने की एक लहर रही। पत्थर और डंडे के मारपीट से धातुओं से बनी हुई औजारों का प्रयोग अपने आप में और एक कदम रहा। मारपीट में, आक्रमण और प्रतिरोध में एक और परिवर्तन का स्वरूप रहा। इस अवधि तक यह आक्रमण और प्रतिरोध का कार्यक्रम दो विधाओं में गुजरते रहे। पहली विधा क्रूर जन्तुओं के आक्रमण का प्रतिरोध और दूसरी भयभीत मानवों के ऊपर किए गये आक्रमण और उसका प्रतिरोध के इस अवधि तक औजारों को (अर्थात् मारपीट के लिए प्रयोग किए गये औजारों को) और आहार, आवास, अलंकार के लिए प्राप्त वस्तुओं का एक दूसरे के बीच स्वेच्छा पूर्वक आदान-प्रदान होते रहा। दूसरा, एक दूसरे की वस्तुओं को अथवा एक समुदाय की वस्तुओं को, दूसरा समुदाय आक्रमण पूर्वक छीना-झपटी करते रहा या छीना झपटी के लिए आक्रमण करते रहा। इसके विपरीत इसकी प्रतिरोध करने का कार्यक्रम अनवरत रहा ही। इस विधि से उक्त दोनों प्रयोजनों के लिए जो-जो वस्तुएं प्राप्त हुई उनकों आज की स्थिति में हम 'अर्थ' का नाम दे सकते हैं।

कबीला युग के साथ भी नस्ल रंग की विपदाएं बारंबार मंडराती ही रही। बार-बार आक्रमण और प्रतिरोध के लिए तैयारी, आहार-आवास-अलंकार, प्रजनन कार्य प्रणाली के लिए बारंबार परिवर्तन जैसा एकोदर संतानों में से ही परस्पर प्रजनन संबंध, दूसरा एकोदर न हो ऐसा प्रजनन संबंध, जिसे आज की भाषा में विवाह संबंध कहते हैं, स्वाभाविक रहे आया। ऐसे भय और द्वेष से त्रस्त कबीला और ग्राम समुदाय, राजा और गुरू के आश्वासनों पर राजगद्दी और धर्मगद्दी के लिए अर्पित हुए। राजा और गुरू की मान्यता क्रम से जो कुछ भी आहार, आवास, अलंकार के रूप में प्राप्तियाँ थी और शरीर और परिवार (पहचाना हुआ निश्चित संख्यात्मक मानव की सीमा) की सुरक्षा अर्थात् छीना-झपटी, आक्रमणों से मुक्ति दिलाने के आश्वासनों पर राजगद्दी में समर्पित हुए। सद्बुद्धि, सत्प्रवृत्तियाँ को सुलभ करने के आश्वासनों पर धर्मगद्दियों पर समर्पित हुए। इसी के साथ-साथ क्लेशों से मुक्ति पाने के आशय तत्कालीन सभी मानवों में समाया रहा। उसके सफलता के लिए आश्वासन घोषणा सबको अच्छा लगता रहा। इसी आधार पर राजगद्दी और धर्मगद्दी के प्रति आस्था निर्मित हुई। आस्था का तात्पर्य न जानते हुए भी किसी अस्तित्व को स्वीकारने से है। इस प्रकार आस्थावाद राजगद्दी, धर्मगद्दी की स्थापना, जनमानस में उसकी स्वीकृति रही। यहाँ उल्लेखनीय और स्मरणीय घटना यही है अर्थात् स्मरण में रखने योग्य घटना यह है कि धर्म को लोकमानस का न समझना रहा ही साथ ही धर्म को अपने स्वरूप में प्रमाणित करने योग्य धर्मगद्दी की स्थापना हुई

नहीं, साथ ही राज्य सामान्य रूप से मानव सहज वैभव को ध्वनित करता है, मानव को समझे बिना ही राज्य की स्थापना शासन के रूप में स्थापित हुई। मूलत: शासन का आरंभ घटना काल धर्म प्रधान रहा है राजा जिस धर्म का होता रहा, पूरे देश निवासी अर्थात् ऐसे धर्मावलम्बी सभी व्यक्ति होने के आधार पर धार्मिक राज्यनीति प्रभावशील रही। ऐसे विविध समुदाय भी राज्य और धर्म के आश्वासनों को स्थापित करने में सफल होते रहे हैं। धार्मिक मान्यताओं (आस्थाओं) में अंतर्विरोध होता आया फलस्वरूप धर्म का अथवा धर्मनीति का अथवा धर्म शासन का पकड़ ढीला होना शुरू हुआ। इसी बीच धातुयुग से समृद्ध होने के उपरान्त विस्फोटक तंत्र रूपी बारूद-बंदूक-तोप तक पहुँचे। इसी के साथ-साथ कबीला ग्राम युग तक सम्पन्न किए गए जीवों के उपयोग के साथ हाथी-घोड़ा का उपयोग हो चुकी थी, अब यह राज्य-राज्य के बीच युद्ध के लिए एक बहुत बड़ी संख्याओं में संग्रहित रहा। तलवार पहले से ही रही, तोप बंदूक और जुड़ गया। धातु युग के साथ-साथ बाण तंत्र भी प्रचलित हो चुकी थी। इस प्रकार युद्धतंत्र, उसकी गुणवत्ता विभीषिका की ओर बढ़ी और विभिन्न भौगोलिक आहार, आवास, अलंकार वस्तुएं प्रचुर होता आया। इस प्रकार संघर्षरत राज्य और धर्म अब राज्य प्रधानता को स्थापित करने के लिए कर विधियों से पूरा संग्रह कार्य में अग्रसर हुआ। असंतुलित संग्रह का स्वरूप अर्थात् सभी लोग ऐसा संग्रह नहीं कर सके, ऐसा संग्रह राजगद्दियों में अथवा कोषों में हुआ। लोकमानस में ऐसी घटना की सांत्वना को राजगद्दी और धर्मगद्दी दोनों मिलकर देश सुरक्षा को, धर्म की अखण्डता को और विस्तारवाद को ध्यानाकर्षण में लाते रहे, सांत्वना देते रहे।

उक्त स्वरूपों में अनुप्राणित राज्य, धर्म और जनता अथवा राज्यवासी समुदाय अपने-अपने कल्पनाशीलता-कर्मस्वतंत्रता को भी प्रयोग करते रहे। उक्त सभी प्रकार के उत्पादनों के क्रम में ग्रामोद्योग, कुटीर उद्योगों की स्थापना हुई। इसके आरंभिक काल में वस्तु विनिमय प्रणाली प्रभावशील रही। **राजगद्दी के कर विधि कार्यक्रम के साथ ही वस्तु विनिमय प्रणाली में भी लाभार्जन के लिए प्रवृत्त हुआ। यही लाभोन्माद का प्रारंभिक चरण माना जा सकता है।** इसके उपरान्त विभिन्न राज्यों में विभिन्न प्रकार के वस्तु विनिमय के स्थान पर मुद्रा प्रचलन स्थापित हुई। आरंभिक समय में धातु मुद्रा का प्रचलन स्थापित होना इतिहास में भी अंकित है। धातुओं पर लिखे गये संख्यात्मक मूल्यों के आधार पर वस्तुओं का विनिमय आरंभ हुआ। यहाँ उल्लेखनीय घटना यही है 'इसके पहले वस्तु विनिमय प्रणाली जब स्थापित हुई तब धातु मुद्रा चलन के साथ भी श्रम-मूल्य का मूल्यांकन, उसकी प्रणाली, पद्धति, नीति स्थापित नहीं हो पायी।'

उक्त परिस्थिति प्रणालियों से गुजरता हुआ राज्य और धर्मों के चलते, मानव का ही कर्मस्वतंत्रता-कल्पनाशीलता के चलते वैज्ञानिक युग इस धरती पर आरंभ होना पाया गया। यह स्थापित होने में जो कुछ

भी परेशानियाँ अथवा अवरोधक बनी वह विशेषकर धर्मगद्दियों के पक्ष से ही घटित होते आयी। वैज्ञानिक घटना का प्रमाण इस धरती पर नियति क्रमानुषंगीय विधि से स्वीकृत रही है इसलिए यह अपने ही विधियों से स्थापित हुई। यह नियम और सिद्धांत के रूप में उदय हुआ। सभी नियम पुर्जों को अलग-अलग कर देखने की विधियों से आयी। **अर्थात् किसी एक को अनेक भागों में बांटकर देखने के क्रम को नियम कहा गया है। इस सभी भागों को जोड़कर एक कार्य घटना को प्रमाणित कर देने की प्रणाली पद्धति को सिद्धांत कहा गया।** इस क्रम को मानव कुल के लिए उपकार रूप जो समीचीन है अथवा उपलब्ध है वह तीन स्वरूप में है, दूरगमन, दूरश्रवण, दूरदर्शन। दूसरे विधा में विस्फोट तत्व जो पहले से ही रही, उसको हथगोला, बम के रूप में उपयोग करना, विध्वंस करना, विध्वंसकारी मानसिकता से तैयार किया। युद्ध और प्रतिरोध तो पहले से ही रहा। यह और आधुनिक, अत्याधुनिक होते-होते दूर मार अथवा प्रक्षेपण, विध्वंसक कार्यों के रूप में प्रयोग सिद्ध कर लिया। इसी क्रम में आहार, आवास, अलंकार में से आवास और अलंकार विधाओं में परिवर्तन हुआ। वर्तमान में सौ-सौ मंजिल तक की इमारतें देखी गई। स्वचालित यांत्रिकीय प्रणाली विकसित होकर वस्त्र, कागज पत्र, धातु कार्य विपुल रूप में केन्द्रीयकृत विधि से उत्पादन होने लगी और पीढ़ी से पीढ़ी में बेरोजगारी बढ़ी। किसी एक या दो धातुओं को अन्य सभी वस्तुओं को मूल्यांकन करने का आधार, ऐसे आधारभूत अर्थात् मूल्यांकन के आधारभूत धातु जिस देश के कोषालय में अधिक होता गया उन पर आधारित पत्र-मुद्रा का मूल्य बढ़ता गया। इस प्रकार वस्तु का प्रतीक धातु हुआ, धातु का प्रतीक पत्र हुआ। इस बीच चर्म मुद्रा भी प्रचलित होने की बात सुनने में आती है। इस प्रकार अब आधुनिक युग के अनुसार अर्थशास्त्र केवल अर्थ के अध्ययन के रूप में उभरी। अर्थ का अध्ययन वस्तु के प्रतीकात्मक मूल धातु, उसके संग्रहण, उसके तादात पर आधारित पत्र मुद्रा, पत्र मुद्राओं पर आधारित अथवा पत्र मुद्रा रूपी मूल्यों के आधार पर मूल्यांकित वस्तुओं का स्वरूप बन गई। इन सभी प्रयास में लाभ ही प्रधान तत्व हुआ। **लाभ का स्वरूप सदा ही, जब से मानव में लाभ का आशा शुरू हुआ तब से, कम देकर अधिक पाना प्रवृत्ति रहा है। कितना कम देकर कितना अधिक पावे इसका ध्रुव अभी तक प्रचलित अर्थशास्त्रों के आधार पर प्रचलित नहीं हो पायी।** अभी तक की प्रचलित अर्थशास्त्र उन्मुक्त विधि से, और नियंत्रित विधि से सोचा गया। दोनों अर्थ चिंतन लाभापेक्षी रहा है। **और ऐसे लाभ पाने की विधि में कृत्रिम अभाव एक प्रधान तकनीकी मानी गई।** यह मुद्रा रूपी पूंजी पर आधारित रहना पाया गया। कृत्रिम अभावपूर्वक सर्वाधिक लाभ की अपेक्षा सर्वाधिक घटनाओं में घटित हो भी गया। यहाँ उल्लेखनीय बात यही है कि विगत में सोचा गया। दोनों प्रकार के अर्थशास्त्र यह भी मानते आये हैं कि एक इकाई को लाभ होने के लिए दूसरे इकाई को हानि होती है। इसके पश्चात भी दोनों प्रकार से सोचा गया अर्थशास्त्र लाभ-हानि मुक्त अर्थशास्त्र और व्यवस्था को प्रणयन करने में असमर्थ रहे हैं। यही बिन्दु है इस बिन्दु से इंगित

विधि से होने वाली पीड़ा के फलस्वरूप अर्थशास्त्र का पुनर्विचार होना एक आवश्यकता के रूप में देखा गया। इसी समस्या के समाधान रूप में आर्वतनशील अर्थशास्त्र को प्रस्तावित करने और प्रणेत प्रेरणा स्त्रोत स्थापित करने का अवसर प्राप्त हुआ।

इस वर्तमान में इस धरती पर मानव परंपरा में लेन-देन का जो क्रियाकलाप है पत्र मुद्रा पर आधारित और गतिशील होना पाया जाता है। पत्र मुद्रा किसी धातु मुद्रा अथवा धातु के तादाद पर आधारित है। यह धातु संग्रहण अथवा धातु कोषालय प्रत्येक राष्ट्र अथवा राज्य के अधीनस्थ मानी जाती है और देखा जाता है। हर वस्तुएं जो मानव से उत्पादित रहता है मानव का सृजनशीलता के प्रमाणों के रूप में देखा जाता है। धातुओं (सोना-चांदी) का संग्रहण स्वयं कोई मानवोपयोगी वस्तु के रूप में दिखाई नहीं पड़ती। औषधियों के रूप में लाखों में एक आदमी इसका उपयोग किया होगा। ऐसे अनुपयोगी वस्तु उपयोगी वस्तु के बीच में मानदंड के रूप में स्वीकारना, भटकाव का आधार हुआ। उसके प्रतीक रूपी पत्र मुद्राएं अनेक तोड़-मरोड़ का रास्ता खोल दी। जिस देश में धातु कोष कम होता गया उस देश के पत्र मुद्रा का मूल्य घटता गया जिस देश का धातु संग्रहण मजबूत होता गया अर्थात् बढ़ता गया उन-उन देश के पत्र मुद्रा का मूल्य बढ़ता गया। जबकि आखों में दिखने के लिए यह सब कागज ही दिखते हैं। **प्रतीक मुद्रा, मुद्रा के प्रतीक रूप में छपी इस कागज पर किसी में कुछ नाम संख्या, किसी में कुछ नाम संख्या लिखा रहता है और उनमें एक से हजारों संख्या लिखी रहती है। ऐसे कागजों को वस्तुओं के अनुपलब्ध की स्थिति में, किंवा इसके मूल में जो बहुत सारे धातु कोष रहते हैं, वह सब मिलकर भी एक व्यक्ति के लिए अनाज या एक व्यक्ति का प्यास बुझाने के स्थान पर कार्य नहीं कर सकता।** यह एक सामान्य व्यक्ति को हृदयंगम हो सकता है, विद्वान एवं मनीषी व्यक्तियों के बारे में कहना ही क्या? इस प्रकार इस स्वरूप में हम प्रतीक मुद्राओं को दो प्रकार से गणना कर सकते हैं - (1) धातु कोष (2) पत्र कोष। इनका परस्पर तारतम्य धातु कोष के आधार पर पत्र कोष का तादात एक नियंत्रण रूप प्रदान करने के लिए मानव एक रेखा बना लेता है जैसा 100 संख्यात्मक पत्र मुद्रा में एक तोला सोना, दसों हजार संख्यात्मक पत्र मुद्रा के बदले में एक तोला सोना। यह भी एक मान्यता और आस्था पर आधारित कार्यक्रम रहा है इसमें व्यवहारिक और सार्थक कोई आधार दिखाई नहीं पड़ता। ऐसा क्रम रहस्यमयी स्थिति का विस्तार बनाता गया। यही कृत्रिम अभावों का कारण बन चुकी है क्योंकि पत्र मुद्रा के अधीन में संपूर्ण वस्तुओं को ग्रसित हुआ देखा जाता है। इसका स्पष्ट परिणाम यही हुआ जहाँ सर्वाधिक पत्र मुद्राएं संग्रहित अथवा निर्मित हैं, वहीं वस्तुएं कैद होना पाया जाता है। ऐसी घटनाओं को घटित कराने योग्य व्यक्तियों का संगठन व्यापार संघ कहलाता है। ऐसी व्यापार संघ के लाभ मानसिकता के अनुरूप उपयोगी वस्तु की कैद से सर्वसुलभ होने की गति से छुटकारा बन जाती है, वस्तुओं का कैद वस्तु की गति से छुटकारा पाना बन पाता है। ऐसी मानसिकता में लाभ और लाभ के

बाद और लाभ की ओर गतित होना पाया जाता है। अभी तक लाभ का संतुष्टि बिन्दु कहीं, किसी देश काल में नहीं मिल पायी है। इस प्रकार अंतविहिन लाभ प्रक्रिया अथवा लाभ मानसिकता सहित सभी व्यापार विद्वान होना पाया जाता है। **इससे और भी एक आकलन निष्पन्न होती है कि वस्तुओं का उत्पादन करने वाला सदैव ही गरीब रहना देखा गया।**

लाभ पर आधारित व्यापार प्रणाली वस्तु और वस्तु मूल्य के साथ ही सीमित रहना पाया जाता है। इसी के साथ अर्थात् व्यापार संघ के साथ बैर विहिन परिवार, संघ या राष्ट्र या समुदाय ही नहीं बन पाया फलस्वरूप समुदाय चेतना और समाज चेतना के लिए प्रतिरोधक अथवा विरोधी मानस बन बैठा। उत्पादित वस्तुओं में गुणवत्ता और कला मूल्यों में (उत्पादित वस्तु का आकार-प्रकार, सजावट और सुरक्षा विधि) श्रेष्ठता जिससे मानव में जो अच्छा लगने की एक सहज क्रिया है उसके अनुसार स्वीकृत हो जाए। गुणवत्ता का तात्पर्य किसी भी वस्तु की कार्यशीलता, उपयोगिता के अर्थ में है। कार्यशीलता की निरंतरता मानव सहज रूप में अपेक्षित है। यह विशेषकर संपूर्ण प्रकार के यंत्रों आवास विधाओं में देखा जाता है। जहाँ तक अलंकार वस्तु होते है और आहार वस्तुएं आदि काल से अभी तक वैसे ही दिखाई पड़ती है। इस प्रकार आहार व्यवस्था, मानव इस धरती पर अवतरित रहने के पहले से ही समृद्ध रहा है, उसे पहचानने में मानव कुल को अवश्य समय लगा है। अलंकार और आवास संबंधी परिवर्तनों को अपनाता आया है। इसी के साथ सभी यंत्र निर्मित होने के उपरांत ही यह सभी व्यापार के फन्दे में फंसा ही है। व्यापार लाभ के फन्दे में लटका है। लाभ शोषण पूर्वक संग्रह, भोग, अतिभोग, बहुभोग की ओर धंसता ही जा रहा है। इसी के अनुरूप कला कलाकारियाँ और कलाविदों का एक खास पहचानने योग्य समुदाय भी तैयार हो चुकी है। जबकि ऐसे व्यापारविद समुदाय और कलाविद समुदाय कहीं भी उत्पादन के लिए चिन्हित रूप में सहायक नहीं हैं। इसी व्यापार के विस्तार के लिए ही अधिकांश अर्थशास्त्रों का प्रणयन हो चुकी है। इससे अनुप्राणित व्यापारी, कलाविद इन दोनों प्रकार के मानसिकता से राज्य संस्था और राजनीतिज्ञ प्रभावित होना पाया गया है। इतना ही नहीं धर्म, धर्मनीति और धर्मनीतिज्ञों - धर्मगद्दियों पर भी इन्हीं दो पक्ष का प्रभाव पड़ता हुआ अथवा इन्हीं दो पक्षों से यह प्रभावित होता हुआ दिखाई पड़ता है। इन सभी घटनाओं को ध्यान में लाने पर निष्कर्ष यही निकलता है :-

1) व्यापार विधि से समाज नहीं बन सकता।
2) व्यापार विधि से समुदायों में अन्तर्विरोध मिट नहीं सकता।
3) व्यापार विधि से बैर विहिन परिवार हो नहीं सकते, समझौते में भले ही सांत्वना पाते रहे।
4) व्यापार विधि से धर्म सफल नहीं हो सकता।

5) व्यापार विधि से कोई राष्ट्र राज्य व्यवस्था सार्वभौम, अखण्ड और अक्षुण्ण नहीं हो सकती।

6) व्यापार विधि से कोई भी व्यक्ति समृद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि संग्रह सुविधा और लाभ का तृप्ति बिन्दु नहीं होता।

7) व्यापार विधि से सार्वभौम शुभ (समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व)घटित नहीं हो सकता।

इन निष्कर्षों के साथ ही विकल्प की ओर दृष्टिपात करना एक आवश्यकता है।

अध्याय - 2

आर्वतनशील अर्थशास्त्र : दार्शनिक आधार

मानव परंपरा में अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र, मनोविज्ञान शास्त्र, विज्ञान और तकनीकी शास्त्र, ज्ञान और विवेक शास्त्र के मूल में मानसिकता, विचार, इच्छाओं को पहचाना जाता है।

मानसिकता और विचार ही इच्छापूर्वक कल्पनाशीलता कहलाता है और इसी के साथ कर्म स्वतंत्रता कार्य करने लग जाती है। यही अध्ययन, शोध और अनुसंधान का मूल संपदा प्रत्येक मानव में होना पाया जाता है। कोई इसे उपयोग कर पाते है कोई नहीं कर पाते। इसी कल्पनाशीलता का समानता ही है सर्वशुभ की स्वीकृति का आधार। सर्वशुभ के संदर्भ में जितने भी प्रकार से शोध, अनुसंधान, अवतरण घटनाक्रम में, परिस्थिति क्रम में, पीढ़ी से पीढ़ी के रूप में दिखने वाली मानव परंपरा में पाये जाने वाले आंकलन चाहे वह राज्य, राष्ट्र, नस्ल, रंग, धर्म, संप्रदाय, भाषा के आधार पर क्यों न हो, इसमें कितनी विविधता क्यों न हो, यह सभी किसी घटना अथवा परिवर्तित घटना जन्य के रूप में आंकलित होना पाया जाता है। इसी तथ्य के आधार पर सर्वशुभ का आशय (1) समाधान (2) समृद्धि (3) अभय (4) सहअस्तित्व सहज प्रमाण परंपरा में है। आवर्तनशील अर्थशास्त्र, मानसिकता, विचार और प्रक्रिया का प्रणयन सर्वमानव में अथवा मानव परिवार में समृद्धि को ध्यान में रखते हुए उसे सहज सुलभ विधियों से सम्पन्न होना उद्देश्य है। इसे लोकव्यापीकरण करने के क्रम में सर्वशुभ रूप में कहे हुए चारों बिन्दुओं में अन्तरसंबंधों को पहचानना विधिवत अध्ययनक्रम में एक आवश्यकता है।

मानव ही सर्वशुभ की अपेक्षा करता है। अर्थशास्त्र का अध्ययन समृद्धि, समाधान, अभय और सहअस्तित्व क्रम में है। समृद्धि का धारक वाहक हरेक एक परिवार होता है, पारंगत प्रवर्तन के रूप में हर व्यक्ति दायी है। क्योंकि प्रत्येक मानव समृद्धि को स्वीकारता है। जिसको जो स्वीकारता है वह दायी होना एक स्वयंस्फूर्त और सर्वस्फूर्त आवश्यकता है। आवश्यकता के आधार पर प्रवृत्तियों और प्रवर्तन कार्य सम्पादित होना पाया जाता है। इस प्रकार हर मानव में आवश्यकता सहज स्वीकृति, परिवार में निश्चयन, परिवेश में अवसर नित्य वर्तमान होना पाया जाता है। हर अवसर हर मानव के लिए विभिन्न परिस्थितियों में समीचीन रहता है। मानव सहज कल्पनाशीलता में समीचीन अवसर समृद्धि के लिए स्वीकृत हो पाना या नहीं हो पाना ही प्रधान बिन्दु है अथवा प्रभेद है। इन्हीं प्रभेद के आधार पर उत्पादन प्रवृत्ति, प्रर्वतन और निष्ठा विविध होना पाया जाता है। समीचीन अवसर, समृद्धि की आकांक्षा इन दोनों के बीच में सूत्र निर्मित होना ही समृद्धि मार्ग

प्रशस्त होने का सहज उपाय है। **इसे भ्रमित करने का प्रधान कारक तत्व दो स्वरूप में दिखती है - (1) लाभ और व्यापार (2) संग्रह और भोग। इससे यह भी पता चलता है कि परंपरा में लाभ के बाद लाभ, भोग के बाद भोग का सम्मोहन बढ़ता आया है। इस सम्मोहन को समीक्षीत करने योग्य जागृति को सुलभ करना ही आवर्तनशील अर्थचिंतन, विचार और शास्त्र की महिमा है।** इसका आधार सर्वमानव स्वीकृत शुभाकांक्षा ही है। ऐसे शुभाकांक्षाओं को अर्थात् समाधान, समृद्धि, अभय और सहअस्तित्व को सभी राज्य संस्था, धर्म संस्था, व्यापार संस्था, प्रौद्योगिकी संस्था, विज्ञान समुदाय, ज्ञान समुदाय प्रकारान्तर से स्वीकार किया हुआ है।

मानव में शुभाशुभ प्रवर्तन का आधार मानसिकता ही है। सर्वत्र मानसिकताएं परंपराओं से अनुप्राणित होना पाया जाता है। परंपराओं को शिक्षा, संस्कार, संविधान और व्यवस्था के स्वरूपों, आशयों, अनुप्राणन प्रणालियों पर आधारित रहना पाया जाता है। दूसरे विधि से संस्कृति, सभ्यता, विधि व व्यवस्था उसका प्रेरक और अनुप्राणन प्रणालियों पर निर्भर होना पाया जाता है। इन दोनों प्रणालियों से अनुप्राणित मानव परंपरा दिखाई पड़ती है। इसका समीक्षा मूल्यांकन यहीं है अभी तक साक्षरता, विज्ञान, उपदेश, आस्था और आंकलानात्मक ज्ञान समेत परस्परता में कुण्ठा, निराशा, भय से होता हुआ, प्रलोभन से ग्रसित होता रहा। फलस्वरूप संग्रह भोग लिप्सा से तंत्रित होकर द्रोह, विद्रोह, शोषण और युद्ध के लिए तत्पर होता हुआ सर्वाधिक समुदायों को देखा गया। जबकि हर मानव सर्वशुभ कामना करता ही रहा, अभी भी कर रहा है। ऐसे सर्वशुभ घटित न होने का क्या कारण रहा इसको परिशीलन किया गया और पाया गया कि -

1. नित्य वर्तमान रूपी अस्तित्व को सटीक अध्ययन करने में हम मानव जाति असफल रहे हैं। इसके स्थान पर रहस्यमयी ईश्वर को अथवा ब्रह्म को ज्ञान रूप में स्वीकारा गया। इसी को सत्य भी कहा गया। ऐसा सत्य ज्ञान संपन्न व्यवहार गति देखने को नहीं मिला, जिससे समाधान, समृद्धि, अभय और सहअस्तित्व चरितार्थ नहीं हो सका। अतएव सर्वशुभ को चाहने और होने में सदा ही दूरी बना रहा।

2. अस्थिरता अनिश्चयता मूलक वस्तु केन्द्रित चिंतन को तर्क संगत विधि से विज्ञान मान लिया गया। विज्ञान को नियमों के रूप में प्राप्त कर, गणितीय भाषा सहित प्रयोग योग्य स्वरूप देना माना गया और उसे क्रियान्वयन करने की प्रक्रियाओं को तकनीकी कहा गया। यह सब मानवेत्तर संसार के साथ, वह भी पदार्थावस्था के साथ, अर्थात् मृत, पाषाण, मणि, धातुओं के साथ यंत्रीकरण, तंत्रीकरण, जल, थल, नभ प्रदेशों में स्वत्व गतिकरण कार्यकलापों के रूप में दिखने को मिलता है। ये सब उपलब्धियाँ विज्ञान का ही देन स्वीकारा गया है। उल्लेखनीय घटना यही है कि विज्ञान वैज्ञानिक नियमों और सिद्धांतों से मानव का अध्ययन सर्वतोमुखी विधि से सम्पन्न नहीं हो पाया है। फलस्वरूप अर्थशास्त्र

भी किंवा प्रचलित सभी शास्त्र अथवा सभी प्रकार के शास्त्र मानव से आशित सर्वशुभ रूपी प्रयोजनों को चरितार्थ करने में सर्वथा पराभवित रहे हैं। जबकि हर मानव हर विधा के कर्ता-धर्ता भी सर्वशुभ चाहते हैं। इसलिए रहस्य और अस्थिरता अनिश्चयता से मुक्त नित्य वर्तमान रूपी सहअस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन अवश्यंभावी रहा ही। अस्तित्व न तो घटता है, न बढ़ता है, नित्य वर्तमान प्रकटनशील है ही इसलिए अस्तित्व स्थिर होना पाया जाता है। स्थिरता का मतलब निरंतर होना ही है। वर्तमान सहज प्रकाशन है। इसीलिए रहस्य विहीन है, यथार्थता, वास्तविकता, सत्यतामय है। अस्तु इसकी स्थिरता स्पष्ट है। इस प्रकार अस्तित्व अपने में महिमा समेत होना समझ में आता है।

3. अस्तित्व में मानव भी अविभाज्य इकाई है। मानव सहज रूप में संचेतनशील होना पाया जाता है। संचेतना का मूल स्रोत के रूप में शरीर का रचना-कार्य जीवन का संयुक्त प्रणाली, लक्ष्य और अध्ययन, पहले बीती हुई दोनों प्रकार के विश्व दृष्टिकोण, तर्क, मीमांसा और प्रतिपादनों से अध्यनगम्य नहीं हो पाया है। उन दोनों विश्व दृष्टिकोणों को ईश्वर केन्द्रित और वस्तु केन्द्रित माना गया है। इन दोनों के विचार और कार्य यात्रा के फलन रूप में बीसवीं शताब्दी की अंतिम दशक में भी देख पा रहे हैं जो शिक्षा संबंधी समीक्षा (पूर्व में किया गया है) सहित लाभोन्माद, कामोन्माद, और भोगोन्माद विधियों से ग्रसित, त्रस्त मानस रहस्यमी आस्थाओं के लिए बाध्य होता हुआ असमानता, विषमताओं से प्रताड़ित होता हुआ अधिक और कम से, श्रेष्ठ और नेष्ठ के, ज्ञानी और अज्ञानी के, विद्वान और मूर्ख के सविषमताओं से कुण्ठित, होना पाया जाता है क्योंकि विद्वान-ज्ञानी, सक्षम-समर्थ, अमीर और बली ये सभी अपने में सार्वभौम शुभ को घटित करने में असमर्थ रहना पाया गया। इसलिए इस विधि से ये सब भी कुण्ठित हैं एवं इसके विपरीत बिन्दु में दिखने वाले मानव भी कुण्ठित है ही। इसलिए मानव का अध्ययन और स्वभाव गति सम्पन्न मानव का स्वरूप मानसिकता, विचार, योजना, कार्य प्रणालियों को अध्ययन करना और कराना एक आवश्यकता ही रहा है।

अस्तित्व में मानव अविभाज्य वर्तमान परंपरा है। अस्तित्व में मानव ही सर्वाधिक रूप में विकसित होना दिखाई पड़ता है। यह :-

1) मानवेत्तर प्रकृति से अपने को सार्वभौम शुभ के आधार पर ही भिन्न होना स्पष्ट हो जाता है।

2) दूसरे विधि से मानव परंपरा चारों आयाम सम्पन्न है।

3) मानव ही भूतकाल और घटनाओं का स्मरण, वर्तमान में विज्ञान सम्मत विवेक, विवेक सम्मत विज्ञान योजना कार्य-व्यवहारों और व्यवस्था को निश्चयन करने योग्य है।

विज्ञान-विवेक का तात्पर्य संपूर्ण विश्लेषण ज्ञान सम्मत होने से है और विवेक का तात्पर्य प्रयोजन सम्मत होने से है। ज्ञान का तात्पर्य जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान एवं मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान से है। विवेक का तात्पर्य संपूर्ण विवेचनाएं प्रयोजनों के अर्थ में स्वीकार योग्य रूप स्पष्ट होने से है। विवेचना का तात्पर्य विवेचना सहित विख्यात विधि (सबके लिए स्वीकार योग्य) से वस्तुओं, घटनाओं को जानने-मानने-पहचानने की क्रियाकलापों से है। इस प्रकार विज्ञान, ज्ञान और विवेक सहज सार्थकता और चरितार्थता स्पष्ट है। यह अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन और सहअस्तित्ववादी विश्व दृष्टिकोणों के आधार पर स्पष्ट हो जाता है।

स्पष्टता के लिए मानवकुल आदिकाल से तरसता ही रहा है। प्रयास भी स्पष्टता के क्रम में अभिप्रेत रहा है। मूल मान्यताएं समुदाय और वर्ग केन्द्रित होने के आधार पर तथा दूसरी ओर रहस्य और वस्तुओं के आधार पर जितने भी सोचा गया, प्रयत्न किया गया, प्रयोग किया गया, वर्ग और समुदाय सीमा में ही हितों को सोचना बना। इसलिए सर्वशुभ चाहते हुए वह घटित होना संभव नहीं हुआ। इन तथ्यों का अवलोकन करने पर विकल्प की आवश्यकता और अनिवार्यता स्वाभाविक रूप में स्वीकृत होता है अन्यथा भ्रमित रहना ही होगा।

ऊपर वर्णित घटनाओं का वर्णन, आंकलन और विश्लेषण से यह स्पष्ट हो चुका है कि वस्तु केन्द्रित विश्व दृष्टिकोण और रहस्यमय ईश्वर केन्द्रित विश्व दृष्टिकोण से मानव का अध्ययन मानव के लिए तृप्तिदायक अथवा समाधानपूर्ण विधि से संपन्न नहीं हो पाया इसलिए मानव के लिए योजित शिक्षा संस्कार और शिक्षा संस्कार को समृद्ध बनाने के लिए प्रबंध-निबंध, पाठ-पाठ्यक्रम, साहित्य, कला सभी मिलकर भी अधूरा ही रह गया। इस मायने में कि सार्वभौम शुभ सर्व सुलभ होने में नहीं आया। साथ ही यह तथ्य अपने आप में अवश्य ही उपादेयी रहा है कि उक्त दोनों प्रकार के विश्व दृष्टिकोण, उससे संबंधित सभी प्रयास अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिंतन के पहले मानव परंपरा में परिलक्षित होना अवश्यंभावी रहा। अस्तु इस बात पर हम सर्वमानव सहमत हो सकते हैं कि बीता हुआ सभी परिवर्तनों का समीक्षा फलनों के साथ ही विकल्प की ओर ध्यानाकर्षण होना संभव, आवश्यक और अनिवार्य है।

अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन का मूल अवधारणाएं निम्नलिखित हैं :-

1. अस्तित्व नित्य वर्तमान है। वर्तमान का तात्पर्य होने-रहने से है।
2. अस्तित्व में मानव अविभाज्य है। अविभाज्यता का तात्पर्य मानवत्व सहित होने-रहने के रूप में कार्यरत रहने से है।

3. अस्तित्व सहित ही संपूर्ण पद, अवस्था, दिशा, देश, कोण, आयाम, परिप्रेक्ष्य स्थिति-गति का होना पाया जाता है। इसी के साथ सहअस्तित्व में ही विकास क्रम, विकास, जागृतिक्रम, जागृति में ही संपूर्ण पद, अवस्था, स्थिति गति को देखा जाता है। उदाहरण के रूप में प्रत्येक नर-नारी सहअस्तित्व में किसी पद और अवस्था में संपूर्ण जड़-चैतन्य प्रकृति का पहचान होना पाया जाता है इनके स्थिति गति को जागृति के आधार पर मानवत्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में देखा जाता है।

4. मानव ही दृष्टापद में है एवं इसे वैभवित, प्रमाणित, व्यवहृत करने योग्य इकाई है। अस्तु मानव ही कर्ता-भोक्ता होना भी पाया जाता है।

5. मानव ही प्रत्येक इकाई में अनन्त कोणों का दृष्टा; एक से अधिक इकाईयों के दिशा, काल और देश का दृष्टा, प्रत्येक एक में स्थिति गति का दृष्टा; प्रत्येक इकाई में अविभाज्य रूप में वर्तमानित रूप, गुण, स्वभाव, धर्म रूपी आयामों का दृष्टा; व्यक्ति, परिवार, ग्राम, देश, राष्ट्र और विश्व परिवार रूपी परिप्रेक्ष्यों का दृष्टा होना अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिंतन सहित सहअस्तित्व रूपी शाश्वत क्रियाकलाप क्रम में, परमाणु में विकास गठनपूर्णता, उसकी निरंतरता, चैतन्य पद में संक्रमण जीवनपद, जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम, जागृति, मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा और जीवन जागृति पूर्णता फलस्वरूप देव मानव, दिव्य मानव पदों का दृष्टा, कर्ता, भोक्ता होना पाया जाता है। इसी क्रम में स्पष्ट किए गये मानव पद में क्रियापूर्णता और दिव्यमानव पद में आचरण पूर्णता और उसकी निरंतरता का होना पाया जाता है।

इस विधि से अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिंतन की अवधारणाएं स्वयं स्पष्ट करता है कि पूर्ववर्ती दोनों विचारधारा से समाधान के अर्थ में भिन्न होना स्पष्ट है। **अवधारणा का तात्पर्य ही अध्ययनपूर्वक धारणा के अनुकूल स्वीकृतियों से है। मानव की धारणा, प्रत्येक मानव में सुख, शांति, संतोष और आनन्द के अर्थ में नित्य वर्तमान होना पाया जाता है। किसी भी मानव का परीक्षण करने पर यह पाया जाता है कि सुख, शांति, संतोष, आनन्द के आशा अपेक्षा में ही संपूर्ण कार्यकलाप विन्यासों को करता है।** परीक्षण क्रम में 5 ज्ञानेन्द्रियों से जो कुछ भी पहचानता है, पहचानने के मूल में प्रवृत्ति है वह सुखापेक्षा ही दिखाई पड़ती है। संपूर्ण मानव संपूर्ण प्रकार के अध्ययनों को सुखापेक्षा से ही किया रहता है। प्रत्येक मानव से सम्पादित होने वाली संपूर्ण अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशनों का परीक्षण से भी सुख, शांति, संतोष, आनन्द सहज आशा आकांक्षा से ही व्यक्त होना पाया जाता है। अस्तित्व में नित्य वर्तमान प्रकाशन को सुख की अपेक्षा

आकांक्षा से ही स्वीकारना चाहता है। यही सुख, शांति, संतोष, आनंद परंपरा में प्रमाणित होने की स्थिति में समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व के रूप में मूल्यांकित हो जाता है।

उक्त विधि से सहअस्तित्व सहज रूप में ही नित्य प्रभावी होना पाया जाता है फलस्वरूप सार्वभौम शुभ परस्पर पूरक होना सहज है। समाधान का प्रमाण मानव के सर्वतोमुखी शुभ की अभिव्यक्ति में, संप्रेषणा में और प्रकाशन में सम्पन्न होने वाली फलन है। सर्वाधिक रूप में यही अभी तक देखने में मिला है कि मानव ही मानव के लिए समस्या का प्रधान कारण है। व्यक्तिवादी समुदायवादी विधि से प्रत्येक मानव समस्याओं को पालता है, पोषता है और वितरण किया करता है। परिवार मानव के रूप में प्रत्येक व्यक्ति समाधान को पालता है पोषता है और वितरित करता है, क्योंकि जो जिसके पास रहता है वह उसी को बंटन करता है। स्वायत्त मानव ही परिवार मानव के रूप में प्रमाणित हो पाता है। स्वायत्त मानव का तात्पर्य स्वयं स्फूर्त विधि से व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी, होने की अर्हता से है। यह प्रत्येक व्यक्ति में सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान जैसी परम ज्ञान, अस्तित्व दर्शन जैसी परम दर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण रूपी परम आचरण अध्ययन और संस्कार विधि से स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक और व्यवसाय में स्वालंबन के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है, पाया गया है। इसी विधि से परिवार मानव का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। इसे अध्ययन विधि से लोकव्यापीकरण करना मानवीयतापूर्ण परंपरा का कर्तव्य और दायित्व है। इसी क्रम में आवर्तनशील अर्थव्यवस्था अवश्यंभावी है।

परिवार का तात्पर्य सीमित संख्यात्मक स्वायत्त नर-नारियों का न्याय पूर्वक सहवास रूप है। यह अपने आप में स्वयं स्फूर्त विधि से परस्पर संबंधों को पहचानना, मूल्यों को निर्वाह करना, मूल्यांकन करना और उभय तृप्ति पाना होता है। इसी के साथ-साथ समझदार परिवारगत उत्पादन कार्य में परस्पर पूरक होना, परिवार की आवश्कता से अधिक उत्पादन करना अथवा होना होता है। यही परिवार का कार्यकलाप का प्रारंभिक स्वरूप है। संबंध, मूल्य, मूल्यांकन विधि से समाज रचना और अखण्ड समाज होना पाया जाता है अथवा संभावनाएं है ही। समाज रचना विधि ही व्यवस्था का आधार है। व्यवस्था का स्वरूप पांचों आयामों में यथा (1) न्याय सुरक्षा, (2) उत्पादन कार्य (3) विनिमय कोष (4) स्वास्थ्य संयम, और (5) शिक्षा संस्कार कार्यकलापों के रूप में प्रमाणित हो पाता है और उसकी निरंतरता संभावित है। सभी आयामों में भागीदारी को निर्वाह करना ही समग्र व्यवस्था में भागीदारी का तात्पर्य है। ऐसी व्यवस्था सार्वभौम होने की संभावना समीचीन है जिसकी अक्षुण्णता मानव परंपरा में भावी है। ऐसी व्यवस्था को कम से कम एक गाँव से आरंभ करना और सभी आयामों में भागीदारी को निर्वाह करने योग्य अर्हता से समूचे ग्रामवासियों को सम्पन्न करना

एक आवश्यकता है। ऐसे अर्हता से सम्पन्न परिवार मानव और परिवार कम से कम 100 परिवार के सहअस्तित्व में परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था समझदारी पूर्वक प्रमाणित हो पाता है। ऐसी परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में ही आवर्तनशील अर्थशास्त्र चरितार्थ होना सहज संभव है।

आवर्तनशीलता का तात्पर्य जिस किसी बिन्दु से समृद्धि के अर्थ में प्राकृतिक ऐश्वर्य नैसर्गिकता सहज पूरकता क्रम में लक्ष्यपूर्ति तक और पुन: आरंभिक बिन्दु तक सूत्रित होने से है। यह चक्राकार रूप में चित्रित हो पाता है और प्रमाणित हो पाता है। उदाहरण के रूप में बीज से वृक्ष तक एवं वृक्ष से बीज तक क्रियाकलापों का अध्ययन स्वयं चक्राकार विधियों से ही दिखाई पड़ती है। वंशों के अनुरूप शरीर रचना एवं शरीर रचना के अनुरूप वंश परंपराएं चक्राकार विधि से इंगित होती है। जानने-मानने के आधार पर पहचानना निर्वाह करना एवं पहचानने निर्वाह करने के क्रियाकलापों को जानना-मानना चक्राकार विधि से देखा जाता है। संबंध सूत्रों के आधार पर मूल्य, मूल्य निर्वाह के आधार पर मूल्यांकन, मूल्यांकन के आधार पर संबंध सूत्र आवर्तन रूप में दिखाई पड़ता है। व्यक्ति का पूरकता परिवार में, परिवार का पूरकता व्यक्ति के लिए सूत्रित होना आवर्तनशीलता है। परिवार की पूरकता ग्राम में, ग्राम की पूरकता परिवार के लिए सूत्रित होना आवर्तनशीलता है। श्रम नियोजन पूर्वक उत्पादन, श्रम मूल्य के आधार पर उत्पादित वस्तु का मूल्य और मूल्यांकन, उत्पादित वस्तु का श्रम मूल्य के आधार पर विनिमय आवर्तनशीलता के रूप में प्रमाणित होता है। पदार्थावस्था प्राणावस्था के लिए, प्राणावस्था जीवावस्था के लिए, पदार्थ, प्राण और जीव, ज्ञानावस्था के लिए तथा ज्ञानावस्था, पदार्थ, प्राण और जीवावस्था के लिए पूरक होना आवर्तनशीलता है। जीवन ज्ञान सहित सहअस्तित्ववादी विचार मानवीयतापूर्ण आचरण पूर्वक व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण मानव और मानव परंपरा में प्रमाणित करना अपेक्षित है।

व्यवस्था एवं व्यवस्था में भागीदारी क्रम में ही मानव को भौतिक समृद्धि, बौद्धिक समाधान सम्पन्न होता हुआ देखा गया है। हर परिवार जागृतिपूर्वक इस वैभव से सम्पन्न होना समीचीन है। यह जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण सम्पन्नता का द्योतक और प्रमाण होना पाया जाता है।

जीवन प्रत्येक व्यक्ति में समान रूप से क्रियाशील रहना पाया जाता है। इसके लिए अध्ययन वस्तु करने वाला मानव है। मानव के अध्ययन क्रम में सर्वप्रथम हम कल्पनाशीलता और कर्म स्वतंत्रता को देख पाते हैं। कल्पनाशीलता का उपयोग विविध विधि से होता हुआ कर्म स्वतंत्रता सहज कार्य-विन्यास गति में सर्वेक्षित होना पाया जाता है। इसके साथ परीक्षण-निरीक्षण एक आवश्यकता बनी रहती है। आबाल, वृद्ध, गरीब-अमीर, ज्ञानी-अज्ञानी, विद्वान और मूर्ख सभी व्यक्तियों में कल्पनाशीलता कर्म स्वतंत्रता संप्रेषित होता हुआ देखने को मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि सभी मानव में यह समान रूप से विद्यमान है। समानता

के मुद्दे में मानव का ध्यान मात्रा और गुणों के ओर दौड़ना स्वाभाविक है। यह जीवन का ही एक अपेक्षा है साथ ही कल्पनाशीलता कर्मस्वतंत्रता जीवन सहज गति स्वरूप होना पाया जाता है। तथापि जीवन अपने मात्रा सहित ही वैभवित है। ऐसी मात्रा को एक गठनपूर्ण परमाणु के रूप में जाना गया है और माना गया है। फलस्वरूप जीवन के क्रियाकलापों को पहचानना संभव हो गया है। इसके प्रमाण में निर्वाह करना स्वाभाविक घटना है अथवा स्वाभाविक स्थिति है। (**गठनपूर्ण परमाणु का तात्पर्य यह है कि उसमें कोई अंश, किसी भी परिवेश से अथवा मध्य से विस्थापित न होता हो और न ही उसमें प्रस्थापित होता हो। यही भार बंधन और अणु बंधन से मुक्त और क्रम से आशा, विचार, इच्छा बन्धनों से कार्य करता हुआ देखने को मिलता है।** इसे प्रकारान्तर से जीव संसार में भी आशा बंधन को वंशानुषंगीय विधि से कार्य करता हुआ देखने को मिलता है। प्रत्येक मानव में ये तीनों प्रकार के बंधन सहित कार्य करता हुआ कल्पनाशीलताओं, उसके क्रियान्वयन क्रम में कर्म स्वतंत्रता का नियोजन द्दष्टव्य है। यह भय और प्रलोभन, संग्रह और द्वेष से ग्रसित होना सुदूर विगत से इस वर्तमान बीसवीं शताब्दी की दसवें दशक तक स्पष्ट हो चुकी है। ऐसे बंधनवश ही व्यक्तिवादी अहमताओं और अहमताओं से अहमताओं का टकाराव विविध प्रकार से होते ही आई। यही मानव परंपरा में संघर्ष का स्रोत रहा है। इसका वर्तमान में साक्ष्य यही है शिक्षा जैसी परंपरा में लाभोन्मादी अर्थशास्त्र, भोगोन्मादी समाजशास्त्र, कामोन्मादी मनोविज्ञान शास्त्र, पठन-पाठन, साहित्य कलाओं में रुचि और विवशताएं है।) अब बंधन से मुक्ति क्रम में समझदारी व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी होना सहज समीचीन है इसलिए आवर्तनशील विधि को जागृतपूर्वक पहचानना संभव हुआ।

जागृति जीवन में ही घटित होना पाया जाता है और प्रमाण-प्रयोजन मानव परंपरा में होना पाया जाता है। जागृति का संपूर्ण स्वरूप जानना-मानना-पहचानना-निर्वाह करना, दूसरे प्रणाली से अनुभवमूलक विधि से अभिव्यक्ति, संप्रेषणा एवं प्रकाशन करना ही है। जानने-मानने की संपूर्ण वस्तु अस्तित्व, अस्तित्व ही सहअस्तित्व, सहअस्तित्व में परमाणु विकास, परमाणु विकास क्रम में गठनपूर्णता (चैतन्य पद) में संक्रमित होना और जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम, जीवन जागृति (क्रियापूर्णता), जीवन जागृतिपूर्णता (आचरणपूर्णता) और उसकी निरंतरता, रासायनिक-भौतिक रचना विरचना आवर्तनशील और पूरक विधि से अध्ययन करना सहज है।

जीवन ही द्दष्टा, कर्ता, भोक्ता पद में होने के कारण अध्ययन करने में समर्थ है। मानव शरीर भी एक रासायनिक, भौतिक रचना है। अस्तित्व ही सहअस्तित्व के रूप में नित्य प्रभावी होने के कारण जीवन और शरीर का संबंध और सहअस्तित्व सहज रूप में देखने को मिलती है। इसी कारणवश शरीर को जीवन्त बनाए रखते हुए जीवन अपने निज ऐश्वर्य को, अर्थात् जागृतिपूर्ण ऐश्वर्य को मानव परंपरा में प्रमाणित करने

के क्रम में जीवन क्रियाकलाप प्रमाणित होता है। अस्तु आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा, और अनुभव प्रमाण, जीवन के वैभव है ही, इनमें से आशा, विचार, इच्छाएं, अनुभवपूत होने पर्यन्त भ्रमित रहना देखा गया है। अनुभवपूत होने का तात्पर्य अनुभवमूलक विधि से आशा, विचार, इच्छाओं को शरीर के द्वारा मानव परंपरा में और नैसर्गिक परिवेश में व्यक्त और प्रयोग करने से है। **भ्रम का तात्पर्य जो जैसा है उससे अधिक, कम या उस वस्तु से भिन्न वस्तु मान लेने से है। निर्भ्रमता का तात्पर्य भी सुस्पष्ट है कि जो जैसा है उसे वैसा ही जान लें, मान लें, पहचान लें और निर्वाह कर लें। जो जैसा है का तात्पर्य सहअस्तित्व में चार अवस्था व चार पदों का होना इंगित करा चुके हैं।** इस प्रकार जीवन ही दृष्टा पद में होना, जीवन और शरीर का संयुक्त रूप में मानव परंपरा का होना जिसका प्रयोजन सर्वशुभ होना, सर्वशुभ घटित होने के लिए मानव परंपरा ही जागृत होना एक अनिवार्य स्थिति है।

जागृत मानव परंपरा में अनुभव का स्वरूप क्रिया उसका प्रमाण जीवन सहज वैभव के रूप में जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करने के क्रम में समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व रूपी सौभाग्य सम्पन्न होना पाया जाता है। अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था का नित्य प्रसवन, वैभव, नित्य उत्सव के रूप में मानव परंपरा में, से, के लिए नित्य समीचीन है। इस प्रकार जीवन ही दृष्टापद प्रतिष्ठावश सहअस्तित्व दर्शन क्रिया में सफल होता है। तभी जीवन ही जीवन को जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने में समर्थ होता है और निष्णात हो जाता है। समर्थ का तात्पर्य अनुभवमूलक विधि से अभिव्यक्त, संप्रेषित होने में निरंतरता को बनाए रखने से है। निष्णातता का तात्पर्य अनुभवगामी विधि से अध्ययन कराने से है। व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह कराने से है। पारंगत होना निष्णातता में गण्य होता है। ये सभी परिभाषा, ध्वनि जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सहज बिन्दुओं को स्पष्ट रुप में प्रमाणित करने-कराने के अर्थ में प्रस्तुत किया गया है।

अब जीवन स्वयं में गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई के रूप में नित्य विद्यमान रहना स्पष्ट किया गया है। यह भी स्पष्ट हो चुका है अस्तित्व में घटने-बढ़ने का कोई लक्षण ही नहीं है। अस्तित्व ही सम्पूर्ण पदों में वैभवित है इसी आधार पर जीवन दृष्टा पद में होना ही अध्ययन का आधार है। जीवन का अध्ययन संपन्न करने क्रम में कल्पनाशीलता, कर्मस्वतंत्रता प्रत्येक मानव में पहचाना और पहचान कराने की विधाओं में स्पष्ट किया जा चुका है। मानव कितनी भी कल्पना करें उनमें कल्पना धारायें निर्गमित होती ही है। इससे यह पता लगता है कि कल्पनाशीलता हर व्यक्ति में अक्षय रूप में है।

कल्पनाशीलता के अनन्तर प्रत्येक भ्रमित मानव चयन, आस्वादन करता हुआ देखने को मिलता है। चयन पहचान पूर्वक ग्रहण करने और उसका आस्वादन अपने ही इच्छापूर्ति के लिए सम्पन्न करता हुआ देखने

को मिलता है। इससे पता लगता है कि चयन करने के अनन्तर आस्वादन, आस्वादन के अनन्तर पुन: चयन क्रिया आवर्तनशील विधि से सम्पन्न होता हुआ देखने को मिलता है। यह क्रिया कितना भी करें और करने के लिए यथावत् चयन-आस्वादन क्रिया उद्गमन बना ही रहता है। इसके साथ यह भी पता लगता है चयन आस्वादन करने का जीवन सहज शक्तियों का उद्गमन होता रहता है। तीसरे क्रम में प्रत्येक मानव में विश्लेषण और तुलन क्रियाएं सहज ही देखने को मिलती है। यह भी अक्षय रूप में होना प्रमाणित होती है अथवा समझ में आता है। विश्लेषण विधियों में अभी तक कितना भी किया है और विश्लेषण करने के लिए निरंतर प्रयास जारी है। इससे पता लगता है मानव में विश्लेषण क्रिया अक्षुण्ण और अक्षय है। इसी के साथ-साथ प्रियाप्रिय, हिताहित, लाभालाभात्मक, न्यायान्याय, धर्माधर्म, सत्यासत्यात्मक तुलन क्रियाओं को मानव ने सम्पन्न करने के क्रम में प्रयास किया है। जिसमें से प्रिय, हित लाभात्मक तुलनाएं निर्णायक बिन्दुओं तक अपने विवशता को फैलाया है। अभी भी न्यायान्याय, धर्माधर्म, सत्यासत्यात्मक तुलन परिशीलन क्रम में ही गुजर रहा है क्योंकि अभी तक तीन मुद्दों पर निर्णायक बिन्दु, स्वरूप और गति प्रयोजन मानव परंपरा में शेष है। इस तुलन क्रिया को कितना भी किया जाय और तुलन करने के लिए जीवन सहज शक्तियों का उद्गमन सदा ही बना रहता है। इस निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण क्रिया से भी इसकी अक्षयता समझ में आता है।

मानव के अध्ययन क्रम में चित्रण और चिंतन जीवन सहज अक्षुण्ण क्रियाकलाप होना समझ में आता है। इस क्रिया में जो चित्रण क्रियाकलाप है यह जीवन में सम्पन्न होने के उपरान्त ही वाणी में और बाह्य चित्रण में उपस्थित होता है। इस तथ्य को अपने में प्रमाणित करना होता ही है और लोगों के प्रमाण के लिए दृष्टा भी बन पाता है। सहअस्तित्व में ही मानव का होना स्पष्ट है। सहअस्तित्व में अकेले कोई चीज होता नहीं है। संपूर्ण चीज होता है। सम्पूर्णता अपने सहअस्तित्व चारों अवस्थाओं के रूप में प्रकाशमान है। इसी यर्थाथतावश एक दूसरे पर प्रतिबिम्बन बना ही रहता है। **इसलिए जीवन सहज कल्पनाशीलता, सहअस्तित्व सहज प्रतिबिम्बनों और मूल्यांकनों के योगफल में संपूर्ण चित्रण कार्य सम्पन्न होना पाया जाता है। इसी के साथ जो चिंतन क्रिया होती है यह 'मूल्यों का साक्षात्कार क्रिया है।'** प्रत्येक इकाई में मूल्यों का होना मानव में मानव मूल्य, जीवों में जीव मूल्य, प्राणावस्था में प्राण मूल्य एवं पदार्थावस्था में पदार्थ मूल्य अक्षुण्ण रूप में रहता ही है। हर वस्तु और मानव की पहचान मूल्यों के आधार पर ही हो पाती है। जबकि प्रत्येक इकाई में रूप, गुण, स्वभाव, धर्म का अध्ययन है। **स्वभाव और धर्म मूल्यों के रूप में स्पष्ट होते हैं। मूल्यों का मूल्यांकन करना ही चिंतन कार्य है। मानव मूल्य धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करूणा है, यही मानव की व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रमाणित होने का सूत्र है। यह स्वयं में परावर्तन, प्रत्यावर्तन के रूप में आवर्तनशील है। परावर्तन में मूल्यों की संप्रेषणा और प्रत्यावर्तन में मूल्यों**

का मूल्यांकन होना पाया जाता है। यह प्रत्येक परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक प्रमाणित होता है। ये क्रियाकलाप भी अक्षुण्ण और अक्षय समझ में आता है क्योंकि कितना भी मूल्यांकन करें, कितना भी मूल्यों को संप्रेषित करें और मूल्यांकित संप्रेषित करने की जीवन सहज शक्तियाँ उद्गमित रहती ही है। इसलिए इनको अक्षय और अक्षुण्ण रूप में पहचानना मानव सहज है।

जीवन में बोध और ऋतंभरा क्रियाएं हर जागृत मानव में होना पाया जाता है। ये क्रियाएं जागृति की दूसरी सीढ़ी है। जागृति का पहला सीढ़ी चिंतन ही है, जिससे मूल्यों का पहचान हो पाता है फलत: मूल्यांकन सम्पन्न हो पाता है। इसलिए न्याय सुलभ होना भी सहज हो जाता है। पांचवे क्रियाकलाप में मूल्य, धर्म और सत्य बोध होना पाया जाता है अर्थात् **सहअस्तित्व रूपी परम सत्य बोध, मानवीयता पूर्ण स्वभाव धर्म रूपी मूल्यों का बोध होना ही बोध का तात्पर्य है। ऐसे अनुभव व प्रमाण बोध के उपरान्त व्यवस्था में जीने, समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने का संकल्प होता है।** बोध और संकल्प की महिमा ही है अस्तित्व सहज, वस्तु सहज, स्थिति सहज, गति सहज, विकास सहज, जागृति सहज सत्यता बोध और निर्वाह करने की निष्ठा, संकल्प के रूप में होता ही है। इस प्रकार जागृत जीवन मूल्यों का साक्षात्कार, बोध और संकल्प पूर्वक निष्ठापूर्ण कार्यप्रणाली मानव कुल में प्रमाणित होना ही परिवार व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण है। कम से कम परिवार में व्यवस्था का स्वरूप, कार्य, प्रयोजन स्पष्ट होता है। व्यवस्था का स्वरूप संबंधों को पहचानने के रूप में, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन, उत्पादन कार्य में भागीदारी के रूप में स्पष्ट हो जाता है। प्रयोजन अपने आप में कार्य व्यवहार से ही स्पष्ट होना पाया जाता है वह समाधान और समृद्धि है। इस प्रकार बोध पूर्वक प्रवर्तन अर्थात् अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन ही अनुभव बोध सहित होने रहने के आधार पर संकल्पों की दृढ़ता निष्ठा के रूप में प्रमाणित होती है। इस तथ्य को हर व्यक्ति में अध्ययन किया जा सकता है और वैभव की आवश्यकता पूरकता प्रत्येक नर-नारी में देखने को मिलता ही है, इसलिए अध्ययनपूर्वक न्याय, धर्म, सत्य बोध करना एक व्यवहारिक सत्य के रूप में अनुभव किया गया और आंकलित किया गया। इससे सर्वमानव पारंगत को समृद्ध संपन्न होने के लिए मानव परंपरा ही जागृत होने की आवश्यकता है। परंपरा का स्वरूप मानवीयतापूर्ण शिक्षा, मानवीयतापूर्ण संस्कार, मानवीयतापूर्ण संविधान और मानवीयतापूर्ण व्यवस्था के रूप में ही नित्य वैभव और गति होना ही सार्थकता है। ऐसी सार्थक स्थिति को परंपरा में प्रमाणित करने के लिए सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान को अध्ययनगम्य करना ही होगा। इस विधि से मानव परंपरा जागृत होने और वैभवित होने की संभावनाएं स्पष्ट है। इसी क्रम में आवर्तनशीलता का साक्षात्कार भी एक अनिवार्य बिन्दु है। यह स्वयं अर्थात् जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान पूरकता विधि से आवर्तनशील है।

अनुभव और प्रामाणिकता का वैभव न्याय, धर्म और सत्य सहज प्रमाण सहअस्तित्व में नित्य वर्तमान रूप में समझने और समझाने की क्रियाकलाप, परस्परता में संप्रेषणा और अभिव्यक्ति-प्रकाशन होना पाया जाता है। जैसे एक उदाहरण के रूप में मुझसे कोई पूछता है - क्या मानव के बारे में विश्वास का परिशीलन करना आवश्यक है? इसको प्रमाणित करना भी आवश्यक है? इसके उत्तर में मैं कहता हूँ - हाँ आवश्यक है। फिर मुझसे पूछा जाता है आप कैसे विश्वास करते हो? इसके लिए मैं समझता हूँ कि

1. मानव का रूप एक शरीर रचना है।
2. मानव में कल्पनाशीलता कर्म स्वतंत्रता वर्तमान है।

कल्पनाओं के बारे में पहले स्पष्ट किया जा चुका है। आशा, विचार, इच्छाओं के अनुरूप कल्पना किया जाता है। वह चयन, आस्वादन, विश्लेषण, तुलन और चित्रण, इन साढ़े चार क्रियाओं में अर्थात् भ्रमित कल्पनाशीलता की सीमा में बारंबार परिशीलन करने योग्य जागृति सहज पाँचों क्रियाओं में से न्याय परिशीलन क्रम में विश्वास साम्य मूल्य के रूप में होना देखा गया है। पर्यावरण में विश्वास वश ही सांस लेता है, धरती पर विश्वास पूर्वक चलता है और पानी पीता है। वन, खनिज इन सबके स्वभाव के आधार पर निरंतर विश्वास करना पाया जाता है। दूसरी स्थिति में विश्वास पूर्वक ही इन सबके साथ कार्य, व्यवहार, विचार हम सब करते ही हैं। मानव के साथ मानव का विश्वास विधि भी मानवीय स्वभाव के आधार पर ही हम करते हैं। मानवीय स्वभावों में से विश्वास न्याय के अर्थ में परिशीलन हो जाता है। यही विश्वास जैसी वस्तु आँखों में आती नहीं, हाथों से छुआ नहीं जाता परन्तु समझ में आता है। सम्पूर्ण समझ चिंतन, बोध, संकल्प, अनुभव और प्रामाणिकता के रूप में वैभवित रहता ही है। इसमें से चिंतन, बोध, अनुभव जीवनगत गरिमा है और स्थिति है। प्रामाणिकता ऋतम्भरा ये महिमा है गति है। इस विधि से हमें स्वयं के प्रति निष्कर्ष यही समझदारी अर्थात् जानना-मानना-पहचानना-निर्वाह करने में पूर्ण जागृति ही हमारे तृप्ति का नित्य स्रोत है। निर्वाह करना ही अर्थात् समझा हुआ के अनुरूप निर्वाह करना ही ईमानदारी का परिभाषा है। समझे बिना जो कुछ निर्वाह किया जाता है भ्रम सिद्ध हो जाता है।

जानने-मानने में सम्पूर्ण मूल्य समझ में आता है। इसके तृप्ति बिन्दु में इसकी पूर्णता की स्वीकृति होती ही है। इसी अधिकारपूर्वक अर्थात् अनुभवपूर्वक अभ्युदय के अर्थ में व्यक्त होना प्रमाणित होता है। **सम्पूर्ण मूल्यों का स्वरूप जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य और वस्तु मूल्यों के रूप में गण्य होता है।** सुख, शांति, संतोष, आनन्द के रूप में जीवन मूल्य समझ में आता है। यह तभी प्रमाणित हो पाता है जब मानव ऊपर कहे गये दसों क्रिया रूपी जीवन को समझ लेता है। सुख का स्वरूप तुलन और विश्लेषण के साथ आस्वादन और चयन संतुलित होने की स्थिति में जागृति होने में आता है। इसे प्रत्येक

व्यक्ति स्वयं में समझ सकता है। इसी प्रकार चिंतन, चित्रण के साथ तुलन, विश्लेषण संतुलित होने की स्थिति में शांति समझ में आता है। बोध और ऋतंभरा के साथ चिंतन-चित्रण संतुलित होने की स्थिति में संतोष समझ में आता है। अनुभव और प्रामाणिकता के साथ बोध संकल्प रूपी ऋतम्भरा संतुलित होने की स्थिति में आनन्द समझ में आता है। इसमें सहजता यही है कि प्रत्येक मानव अपने में इन जीवन सहज क्रियाओं के साथ स्वयं से, स्वयं में, स्वयं के लिए परीक्षण-निरीक्षण पूर्वक सत्यापित करना बनता है। इस विधि से अस्तित्व सहज यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता को समझना संभव है। अस्तित्व ही परम सत्य वास्तविक और यथार्थ है। प्रत्येक एक अस्तित्व में अविभाज्य है।

मानव मूल्य धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करूणा रूप में होना समझ में आता है। संबंधों का पहचान, मूल्यों का निर्वाह विधि से धीरता प्रमाणित होता है अथवा धीरता को हम प्रमाणित करते हैं। यह परस्पर संबंध संतुलन का द्योतक है। संपूर्ण संबंधों में साम्य रूप में वर्तमान विद्यमान वस्तु का नाम ही विश्वास है। वस्तु के रूप में विश्वास संबंध संतुलन के रूप में ही समझ में आता है। पहले भी यह उल्लेख किया गया था धरती, जल, वायु, वन, खनिज, वनस्पति, जीवों के साथ उन-उनके स्वभाव-धर्म के आधार पर संबंध संतुलन बनाए रखने में मानव समर्थ हो चुका है। मानव-मानव के साथ संबंध संतुलन बनाए रखने में आवश्यकता प्रतीक्षा बनी ही है। अतएव **आवर्तनशील अर्थ व्यवस्था क्रिया प्रणाली मानव संबंधों में संतुलन के उपरान्त ही सार्थक हो पाता है। उदाहरण के रूप में यह देख सकते हैं कि जितना दूर तक अर्थात् एक व्यक्ति के साथ-साथ कई व्यक्ति के साथ जो अपने संबंध को संतुलित बनाए रखता है उसका सम्पूर्ण वस्तु लाभ हानि मुक्त विधि से उपयोग हो जाता है** तथा जहाँ जहाँ तक संबंध संतुलन नहीं है वहाँ वहाँ तक भ्रमवश लाभोन्माद छाया ही रहता है। इसे प्रत्येक मानव अपने परिवेशगत मानवों के साथ निरीक्षण कर सकता है और प्रमाणित हो सकता है। वीरता को हम न्याय को सर्वसुलभ करने योग्य प्रवृत्तियों, कार्यकलापों और आचरणों के रूप में समझते हैं। एक उदाहरण ऐसा भी देखा जा सकता है कहीं भी दो व्यक्ति वाद ग्रस्त है, किसी मुद्दे में भ्रमित होकर ही ऐसा विवाद होना देखा गया है। ऐसे विवाद के मूल में दोनों गलत हों अथवा दोनों में से एक अवश्य गलत हो तभी वाद-विवाद होना विश्लेषित होता है। ऐसी स्थिति में वे दोनों परस्पर अपने संबंधों को पहचाने नहीं रहते हैं इसलिए वाद-विवाद करने में कटिबद्ध हो जाते हैं। संबंध को समझने के उपरान्त एक दूसरे के बीच उत्पन्न मतभेदों का निराकरण करने का सामर्थ्य उदय होता ही है। इसी सिद्धांत के आधार पर तीसरा उन दोनों के परस्परता में संबंध संतुलन को स्थापित करने के लिए प्रयत्न करें वाद-विवाद दूर हो जाता है। परस्पर मानव के साथ संबंध स्थापित रहता ही है इसे जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना ही जागृति का तात्पर्य है। जागृतिपूर्वक ही मानव

धीरता–वीरता-उदारता को और जागृतिपूर्णता के प्रमाण स्वरूप दया, कृपा, करूणा को प्रमाणित करता है।

उदारता को हम अपने ही कार्यकलापों में, व्यवहारों में इस प्रकार देख सकते हैं कि संबंध संतुलन के उपरान्त तन-मन-धन रूपी अर्थ का उपयोग, सदुपयोग और सुरक्षा करते हैं। सदुपयोग का तात्पर्य शरीर पुष्टि (आहार पूर्वक) शरीर सुरक्षा (आवास, अलंकार पूर्वक) और जीवन जागृति की सार्थकता या चरितार्थता के लिए नियोजन कार्य का नाम है उदारता। सम्पूर्ण प्रकार का आवर्तनशीलता उदारता का ही द्योतक है।

ऊपर कहे गये मानव मूल्यों में से धीरता, वीरता, उदारता को स्वयं निरीक्षण करना एक सहज कार्य और उपलब्धि के रूप में देखा गया है। इसके लिए जीवन तंत्रणा के संबंध में एक संक्षिप्त और स्पष्ट झांकी मानव के सम्मुख प्रस्तुत हो चुकी है जिसमें जीवन के दसों कार्यकलापों को स्पष्ट किया है। यहाँ जीवन का मूल स्वरूप और रचना संबंधी तत्व को सूक्ष्म रूप में इंगित कराया है इसका विशद् अध्ययन 'अस्तित्व में परमाणु का विकास' में किया गया है।

जीवन का मूल रूप चैतन्य इकाई गठनपूर्ण परमाणु स्वयं जीवन है। चैतन्य परमाणु गठनपूर्ण परमाणु के रूप में समझा गया है क्योंकि अस्तित्व में संपूर्ण प्रकार के पद और व्यवस्था का आधार केवल परमाणु है। अस्तित्व केवल अविभक्त एवं विभक्त स्वरूप में नित्य वर्तमान है। अविभक्त स्वरूप ही साम्य ऊर्जामय सत्ता है। ऐसे ऊर्जामय सत्ता में संपूर्ण विभक्त अस्तित्व (अनंत एक-एक के रूप में दिखने वाला) डूबा हुआ, घिरा हुआ और भीगा हुआ दिखाई पड़ता है। भीगा हुआ का साक्ष्य ऊर्जा सम्पन्नता के रूप में; घिरा हुआ का साक्ष्य नियंत्रण तथा डूबा हुआ का साक्ष्य क्रियाशीलता से है। क्रियाशीलता श्रम, गति, परिणाम के रूप में स्पष्ट है। रूप-अरूपात्मक अस्तित्व अविभाज्य रूप में नित्य वर्तमान है। रूपात्मक अस्तित्व में मूलत: व्यवस्था का मूल रूप परमाणु के रूप में देखा गया है। एक से अधिक परमाणु ही संगठित होकर अणु के रूप में, अणुएं रचित होकर अनेक पिण्डों के रूप में स्पष्ट है। इसी क्रम में भौतिक-रासायनिक रचना-विरचना निरंतर पूरक विधि से होना पाया जाता है। इसी रासायनिक रचना के श्रेष्ठता क्रम में वनस्पति संसार, विभिन्न जीव शरीर और मानव शरीर रचनाओं को समझा गया है। इसको विकास क्रम के नाम से जाना जाता है। इसमें रचना में श्रेष्ठता क्रम ही मूल्यांकित होता है। परमाणु में विकास क्रम में ये सभी प्रकार के रासायनिक-भौतिक अभिव्यक्तियाँ सम्पन्न हो जाते हैं। कोई-कोई परमाणु आवश्यकीय सभी स्थितियों को पाकर गठनपूर्णता से सम्पन्न हो जाते हैं। यही गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य पद में संक्रमित हो जाते हैं। इसी को 'जीवन' नाम से संबोधित किया गया है। जीवन भार बंधन और अणु बंधन मुक्त होने के आधार पर परमाणु के सभी रचना सहित अपने कार्य गति पथ रचना स्वयं ही कर लेता है। इसका आधार जीवन

सहज आशा है। **आशा का तात्पर्य ही है आशय सहित यत्नशील रहना।** चैतन्य पद में संक्रमित होते ही आशा सहित कार्य करने की अर्हता जीवन में उद्गमित होता है। ऐसी महिमा के साथ जीवन में प्रतिष्ठित सभी क्रियाएं क्रम से अर्थात् जागृति क्रम से व्यक्त होते हैं। जागृति क्रम में होने वाले जीवन कार्यों को पहले इंगित किया जा चुका है। इस प्रकार जीवन रचना एक गठनपूर्ण परमाणु है, रासायनिक-भौतिक क्रियाकलापों में भाग लेने वाले परमाणुओं में जो श्रम-गति-परिणाम देखने को मिलता है उसमें से परिणाम का अमरत्व, गठनपूर्ण परमाणु में स्पष्ट होता है। यह परमाणु में विकास का एक सोपान है। ऐसे जीवन ही मानव शरीर द्वारा जागृति को प्रमाणित करने के क्रम में श्रम का विश्राम को मानव चेतना के रूप में स्पष्ट कर देता है। **इसका प्रमाण समाधान = विश्राम = जागृति है। इस विधि से श्रम का विश्राम अर्थात् समाधान पद में ही मानवीयता पूर्ण समाज और व्यवस्था अपने अखण्डता और सार्वभौमता के साथ वैभवित होना समीचीन है।** ऐसी जागृतिपूर्वक परंपरा स्थापित होना और उसकी निरंतरता होना ही वैभव का तात्पर्य है।

प्रत्येक मानव सहज रूप में समाधान को स्वीकारता है न कि समस्या को क्योंकि समाधान सुख के रूप में ही होना समझ में आता है। अस्तु मानव व्यवस्था में जीने, व्यवहृत होने के फलस्वरूप ही नित्य समाधान अक्षुण्ण रहना पाया जाता है। ऐसी जागृत परंपरा ही जीवन में क्रियापूर्णता का साक्ष्य है। इनकी महिमा क्रम में जीवन में जागृति पूर्णता का होना जिसका कार्यरूप अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान सहज नित्य अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन पूर्वक प्रमाणित होना देखा जाता है। यही जागृति और जागृति पूर्णता प्रत्येक मानव में अपेक्षित है। इसे देव-दिव्य चेतना रूप में जागृति पूर्ण पद के रूप में पहचाना गया है। यही पद मुक्ति प्रमाणित होता है। इसी पद में मानव ही देव मानव, दिव्य मानव के रूप में अपने ज्ञान-दर्शन-आचरण पूर्वक सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करता है। ऐसे देव मानव दिव्य मानव पद में सर्वाधिक उपकार होना समीचीन है। **उपकारी का तात्पर्य है उपाय पूर्वक जीवन जागृत कार्य-व्यवहार में पारंगत और समर्थ होने में सहायक होने से है।** इस पद को आचरणपूर्णता नाम से संबोधित किया है। इस प्रकार परिणाम का अमरत्व, श्रम का विश्राम और गति का गंतव्य ही सहअस्तित्व में परमाणु सहज विकास होने के अनन्तर जीवन लक्ष्य होना, सार्थक होने का तथ्य अध्ययनगम्य है। इस प्रकार इस धरती में भ्रमात्मक मानव समुदायों से निर्भ्रम मानव, अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था एवं मानव परंपरा वैभवित होने का अध्ययनगम्य रूप में प्रस्तुत है।

पहले धीरता, वीरता, उदारता का स्वरूप स्पष्ट किया जा चुका है। मानव मूल्य के रूप में दया, कृपा, करूणा, जीवन जागृति पूर्णता का प्रमाण रूप में अथवा साक्ष्य रूप में व्यवहृत होना पाया जाता है। **दया को मानव के आचरण में जीने देकर स्वयं जीने के रूप में देखा गया है। जीने देने के क्रम में पात्रता के**

अनुरूप शिक्षा-संस्कार को सुलभ कर देना, प्रमाणित होता है। दूसरे विधि से पात्रता के अनुरूप वस्तुओं को सहज सुलभ करा देने के रूप में स्पष्ट होता है। कृपा का व्यवहार रूप प्राप्त वस्तु के अनुरूप योग्यता को स्थापित करने के रूप में है। उदाहरण के रूप में मानव है, मानव एक वस्तु है, मानव में मानवत्व सहित व्यवस्था के रूप में जीने की योग्यता को स्थापित कर देना ही कृपा सहज तात्पर्य है। करूणा का तात्पर्य पात्रता के अनुरूप वस्तु; वस्तु के अनुरूप योग्यता को स्थापित करने के रूप में देखा जाता है। यह मूलत: मानव में उदारता और दया, देवमानव में दया प्रधान रूप में और कृपा करुणा; दिव्यमानव में दया, कृपा, करूणा प्रधान रूप में, व्यवहृत होने की अर्हता प्रमाणित हो पाती है। ऐसे परिवार मानव, देव मानव, दिव्य मानव के रूप में समृद्ध होने योग्य परंपरा को पा लेना ही जागृति परंपरा का लक्षण और रूप है। इससे यह स्पष्ट हो गया कि जागृत परंपरा पूर्वक ही सर्वमानव, मानवत्व रूपी सम्पदा से सम्पन्न होता है। ऐसे सम्पन्नता क्रम में आवर्तनशील अर्थशास्त्र, व्यवहारवादी समाजशास्त्र और मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान सहज शिक्षा-संस्कार विधा में चरितार्थ करना एक आवश्यकता है।

जय हो ! मंगल हो !! कल्याण हो !!!

अध्याय - 3

आर्वतनशील अर्थशास्त्र : अवधारणा

आवर्तनशीलता वर्तुलाकार में होना समझ में आता है। आवर्तनशील अर्थशास्त्र का तात्पर्य तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग, सुरक्षा और समृद्धि के रूप में दृष्टव्य है। यह आवर्तनशील होना पाया जाता है। मन मूलत: जीवन में अविभाज्य कार्य कलाप है। जीवन शक्ति रूपी आशा, विचार, इच्छाएं, संकल्प अनुभवपूत होकर अर्थात् अनुभवमूलक विधि से शरीर के माध्यम से प्राकृतिक ऐश्वर्य पर निपुणता कुशलतापूर्वक श्रम नियोजन कार्य को करता है। श्रम नियोजन के फलस्वरूप उपयोगिता और कलामूल्य सम्पन्न वस्तुए उत्पादित होती है। यही धन है। अनुभवपूत मन अथवा अनुभव से अनुप्राणित मन निपुणता, कुशलता, पांडित्य को शरीर के द्वारा संप्रेषित अभिव्यक्त करता है। मानव परंपरा में जीवन प्रमाणित होने के लिए मानव शरीर की अनिवार्यता समझ में आती है। इस प्रकार अर्थोपार्जन के लिए तन एक महत्वपूर्ण वस्तु है। शरीर का उपयोग करने वाला वस्तु जीवन ही है। जीवन में से मन अधिकांश शरीर को उपयोग करता है। क्रम से अनुभव, बोध, चिंतन, तुलन सम्मत विधि से मन शरीर का उपयोग करता है तभी शरीर का सदुपयोग होना प्रमाणित होता है। शरीर की सुरक्षा के लिए जीवन सदा ही शरीर को जीवंत बनाए रखता है। मानव शरीर को जीवंत बनाए रखने में मन ही प्रयोजित रहता है। प्रयोजित रहने का तात्पर्य प्रयोजनों के अर्थ में योजित रहने से है। योजित रहने का तात्पर्य पूरकता सहवास के रूप में होने से है। शरीर जीवंत रहना शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधेन्द्रियों का कार्य जीवन स्वीकृत अथवा जीवन के द्वारा दृश्यमान होने के रूप में स्पष्ट होता है। शब्द के द्वारा व्यंजित होना कर्ण यंत्र से पहचाना जाता है फलस्वरूप शब्द का अर्थ अस्तित्व में कोई न कोई वस्तु, मूल्य, स्थिति-गति पद के अर्थों में से कोई न कोई अर्थ स्वीकृत होता है, साक्षात्कार होता है। इसी प्रकार अन्य सभी इन्द्रियों में व्यंजना के साथ उसका अर्थ साक्षात्कार होना पाया जाता है। साक्षात्कार विधि जानने-मानने-पहचानने-निर्वाह के रूप में अध्ययन स्पष्ट होता है। इसे हर व्यक्ति अपने में परीक्षण कर सकता है निर्वाह करने में भी परस्पर व्यंजनापूर्वक अर्थ साक्षात्कार स्वीकृतियाँ हो पाता है। इस विधि से धन, तन द्वारा मन के लिए अर्थात् जीवन के लिए, उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनों के रूप में साक्षात्कार होता है। यही अर्थ सार्थकता है। **जीवन शक्तियाँ श्रम नियोजनपूर्वक उपयोगिता मूल्य, कला मूल्य रूपी अर्थ को स्थापित करती हैं। यही वस्तु मूल्य का यथार्थ स्वरूप होने के रूप में मूल्यांकित हो जाता है।** इसी आधार पर सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता के निश्चित आधारों पर जीवन में संतुष्टियाँ शरीर पुष्टि उत्पादन में वस्तुओं का नियोजन रूपी उपयोगिता विधि से उपयोगिता का मूल्यांकन

और उससे होने वाली तृप्ति समग्र व्यवस्था में जीने की कला समेत वस्तुओं का नियोजन वस्तु का परम प्रयोजन के रूप में मूल्यांकित होता है। इस प्रकार जीवन शक्तियों का परार्वतन विधि से प्राकृतिक वस्तुओं में उपयोगिता व कला मूल्यों की स्थापना और उसकी उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता से तृप्ति और उसकी नित्य संभावना एक आवर्तनशील साक्ष्य है। इसे प्रत्येक मानव जीवन, शरीर और प्रकृति सहज नैसर्गिकता सहित प्रयोग कर सकता है। निरीक्षण-परीक्षण पूर्वक निष्कर्षों को सत्यापित और प्रमाणित कर सकता है। प्रत्येक मानव में तन-मन-धन रूपी अर्थ होता ही है। होना वर्तमान में, से, के लिए ही है। इनमें परस्पर पूरकता स्वयं आवर्तनशीलता का साक्ष्य है। मन से संचालित शरीर, मन और तन के संयुक्त प्रयोग से वस्तु मूल्यों का प्रकटन, पुन: वस्तु मूल्यों का शरीर के लिए उपयोगी, जीवन के लिए तृप्तिदायी होना एक आवर्तनशीलता है। यह प्रत्येक स्वायत्त मानव में प्रमाणित होना पाया जाता है। स्वायत्त मानव को स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवसाय में स्वावलंबी, व्यवहार में सामाजिक रूप में होना पाया जाता है। स्वायत्त मानव ही परिवार मानव का स्वरूप है। ऐसे समझदार मानव एक से अधिक मानव लक्ष्य के अर्थ में सहवास विधि से जीना ही व्यवस्था का स्वरूप है। **परिवार अपने में परस्पर संबंधों को निश्चित रूप में पहचानने मूल्यों को निर्वाह करने, मूल्यांकन पूर्वक परस्पर तृप्ति उभय तृप्ति पाने के रूप में देखा जाता है।** ऐसे परिवार में अपनायी गई उत्पादन कार्य में स्वयं स्फूर्त विधि से परिवार का हर व्यक्ति पूरक होना पाया जाता है। फलत: परिवार की आवश्कता से अधिक वस्तुओं का उत्पादन हर परिवार में समीचीन रहता ही है। यह भी अर्थात् परिवार में उभयतृप्ति, उसकी निरंतरता और आवश्यकता से अधिक उत्पादन, उसका सदुपयोग और सुरक्षा, यह स्वयं में आवर्तनशील है। इससे स्पष्टतया समझ में आता है कि मानवीयता पूर्ण परिवार में आवश्यकताएं सीमित हो जाती है क्योंकि उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता निश्चित होता है। फलस्वरूप आवश्कता से अधिक उत्पादन हर परिवार में संभव है।

मानवीयतापूर्ण अनेक परिवार परस्पर उपकार सहयोग विधि से व्यक्ति स्वायत्तता और परिवार स्वायत्तता सहित ग्राम मुहल्ला स्वायत्तता के रूप में प्रमाणित होना मानवीयता पूर्ण परिवार विधि से सहज है। एक ग्राम में 100 परिवार की कल्पना के रूप में एक इकाई के रूप में पहचाना जा सकता है। हरेक परिवार में 10-10 व्यक्तियों के रूप में जनसंख्या स्पष्ट होती है। धरती-वायु-जल-वन-खनिज ही श्रम नियोजन स्थली है। प्रत्येक गाँव के आहार-आवास-अलंकार रूपी वस्तुओं का तादात गुणवत्ता निश्चित हो जाता है। इसी के साथ-साथ औषधि संबंधी आवश्यकता और उसका आंकलन भी निश्चित होती है। इसी के आधार पर 100 परिवार में उत्पादन कार्यों का परस्पर वितरण भी संभव है। सर्वाधिक आहार उसके बाद अलंकार और औषधि; इसके बाद आवास और आवास रचना के लिए आवश्यक वस्तुओं के निर्माण कार्यों को कुटीर

उद्योग, ग्रामोद्योग पूर्वक संपन्न कर लेने की स्थिति को और कृषि, गोपालन विधियों से पूरे गाँव की आवश्यकता से अधिक उत्पादन होना सहज है। जिस गाँव में कोई विशेष उत्पादन नहीं हो पाता है उसको अन्य स्रोतों से उत्पादन जो अधिक है उसे देकर वांछित वस्तुओं को पा लेना भी बहुत सहज है ऐसी स्थिति में आवर्तनशीलता पुन: सहवास और संबंध विधि से स्पष्ट हो जाता है।

पूरे गाँव में आवर्तनशीलता को इस प्रकार पहचानना आवश्यक और सहज है कि प्रत्येक परिवार समूचे ग्राम परिवारों के साथ एक दूसरे को किसी संबंध से पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं मूल्यांकन करते हैं। सदा तृप्ति मिलती ही रहती है। दूसरा श्रम मूल्यों के आधार पर वस्तु मूल्यों का मूल्य निर्धारित करते हैं और परस्पर विनिमय करते हैं। हर परिवार में आवश्कता से अधिक उत्पादन कार्य स्पष्ट रहता ही है। इस प्रकार वस्तुओं का उत्पादन, विनिमय और न्याय-सुरक्षा कार्यकलाप एक दूसरे से पूरक विधि से आवर्तनशील होते हैं। क्योंकि श्रम नियोजन, श्रम मूल्य में सामरस्यता, संबंध और मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य में सामरस्यता और उसका नित्य गति के रूप में व्यवहार और विनिमय एक-दूसरे के लिए पूरक होते हैं और नित्य गतिशील रहते हैं इस प्रकार इसकी आवर्तनशीलता समझ में आती है।

इसी क्रम में परिवार सहज सहवास, ग्राम मोहल्ला सहज सहयोग, राष्ट्र और विश्व परिवार सहज सहअस्तित्व के रूप में आवर्तनशील अर्थ व्यवस्था को जानना-मानना-पहचाननना-निर्वाह करना नियति सहज समीचीन है। परिवारमूलक विधि से एक ग्राम और ग्राम मूलक विधि से एक परिवार व्यवस्था पांचों आयामों के रूप में वैभवित होना सहज है। यही पाँचों आयामों की परस्पर पूरकताएं आवर्तनशीलता को प्रमाणित करना मानव का सहज अपेक्षा और जागृति क्रम घटना की समीचीनता अध्ययनगम्य हो जाता है। एक ग्राम व्यवस्था में न्याय सुरक्षा कार्य में भागीदारी, विनिमय कोष कार्यो में भागीदारी निरंतर समीचीन रहता है। परिवार व्यवस्था में जीना प्रमाणित रहता है। इन तीनों आयामों के लिए स्रोत रूप में स्वास्थ्य संयम कार्यो में भागीदारी और शिक्षा संस्कार कार्यो में भागीदारी की आवश्यकता, सम्भावना और प्रयोजन समीचीन रहता ही है। हर समझदार परिवार मानव कहे गये पाँच आयामों में भागीदारी को निर्वाह करने योग्य होता ही है। इसका स्रोत शिक्षा-संस्कार विधि से सम्पन्न होने की व्यवस्था है।

समूचे व्यवस्था का अर्थात् एक परिवार से विश्व परिवार, मानव व्यवस्था को पहचानने-निर्वाह करने के क्रम में दस सीढ़ियों में पहचानना सहज है। यथा (1) परिवार सभा व्यवस्था, (2) परिवार समूह सभा व्यवस्था (3) ग्राम परिवार सभा व्यवस्था (4) ग्राम समूह परिवार सभा व्यवस्था (5) ग्राम क्षेत्र परिवार सभा व्यवस्था (6) मंडल परिवार सभा व्यवस्था (7) मंडल समूह परिवार सभा व्यवस्था (8) मुख्य राज्य परिवार सभा व्यवस्था (9) प्रधान राज्य परिवार सभा व्यवस्था और (10) विश्व राज्य परिवार सभा व्यवस्था।

इन दसों सीढ़ियों का अन्तर संबंध हर एक व्यक्ति 10 व्यक्ति को अथवा हर 10 व्यक्ति एक-दूसरे को मानव सहज संबंधों के रूप में पहचानने, उसमें निहित मूल्यों को निर्वाह करने के रूप में समझा गया है। इस क्रम में एक परिवार सभा से कम से कम 10 व्यक्ति होना मानते हुए इसे चित्रित किया गया है। 10 व्यक्ति में से एक व्यक्ति को किसी निश्चित काल तक परिवार समूह सभा व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने के लिए निर्वाचित करेंगे। ऐसे 10 परिवारों में से निर्वाचित एक-एक व्यक्ति मिलकर एक परिवार समूह सभा के रूप में कार्य करना होगा। ऐसे 10 परिवार समूह सभाएं अपने में से एक-एक व्यक्ति निर्वाचित करेंगे। ऐसे 10 व्यक्ति मिलकर एक ग्राम मोहल्ला स्वराज्य परिवार सभा व्यवस्था गठित करेंगे। यही निर्वाचित 10 व्यक्ति मिलकर, ग्राम के कम से कम 1000 व्यक्ति में से ही 5 समितियों को मनोनीत करेंगे।

ये 5 समितियाँ क्रम से (1) न्याय-सुरक्षा (2) उत्पादन-कार्य (3) विनिमय-कोष, (4) शिक्षा-संस्कार और (5) स्वास्थ्य-संयम समितियाँ रहेंगी। इसमें मूलत: महत्वपूर्ण मुद्दा यही है परिवार के सभी सदस्यों को स्वयं पर विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्त्वि में संतुलन, व्यवसाय में स्वावलंबी, व्यवहार में सामाजिक योग्य क्षमता-योग्यता-पात्रता को स्थापित करने के उपरांत ही परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था सभा का गठन करना सहज है। ऐसे 10-10 व्यक्तियों का 10 ग्राम स्वराज्य परिवार सभाओं में से 1-1 व्यक्ति को निर्वाचित करेंगे। ऐसे 10 व्यक्ति मिलकर एक ग्राम समूह परिवार सभा का गठन करेंगे। और इसमें भी पांच आयाम रूपी समितियों को मनोनीत व्यक्तियों से गठित करेंगे। इसी प्रकार क्रम से प्रधान राज्य परिवार सभा का गठन, पाँचों आयाम रूपी समितियों का मनोनयन सम्पन्न होगा। इस धरती पर जितने भी प्रधान राज्य परिवार सभाएं होंगी वे सब अपने-अपने निर्वाचित सदस्यों को पहचानने, इस प्रकार विश्व परिवार सभा व्यवस्था भी मनोनयन पूर्वक 5 व्यवस्था समितियों को गठित करेगा। ये सभी समितियाँ ग्राम से विश्व तक अंतर संबंधित रहना होगा। सभी स्तरीय सभाएं इन पाँचों समितियों का मूल्यांकन करते हुए श्रेष्ठता की ओर कार्य और प्रयोजन पर बल देते रहना बनता है। इस विधि से भविष्य का हर क्षण उत्सवमय होना समझ में आता है।

दसों स्तरीय निर्वाचित सभाओं, सभाओं से मनोनीत समितियों के अंतरसंबंधों को बनाए रखने के लिए संचार, दूरभाष, परिवहन मार्ग, जल, पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने के लिए हर स्तरीय सभाएँ और समितियाँ दायित्व का वहन करेंगे। हर स्तरीय सभा का क्षेत्र एक दूसरे से जुड़ी ही रहेगी। इस प्रकार अंतर संबंधों बाह्य संचारों का आवर्तनशीलता में निरंतर व्यवस्था क्रम सुदृढ़ और मधुरिम होने का स्वरूप समझ में आता है। हर स्तरीय समितियाँ स्थानीय सभी कार्यकलापों को विधिवत समृद्ध बनाते ही रहेंगे। जैसा

मकान बनाना, सड़क बनाना, कूप खनन करना, सार्वजनिक प्रयोजनार्थ गृह निर्माण करना, पूरे ग्राम के लिए आवश्यकीय गृह निर्माण वस्तुओं को सुलभ करना, रेल मार्ग, वायु मार्ग, जल मार्ग का व्यवस्था प्रदान करना बना रहेगा।

न्याय सुरक्षा के साथ-साथ ग्राम सुरक्षा कार्यक्रम, न्याय सुरक्षा समिति से संचालित रहेगा। इसी प्रकार हर स्तरीय सुरक्षा विधि बना रहेगा। यह क्रम से क्षेत्र सुरक्षा के अनन्तर ग्राम सुरक्षा की आवश्यकता, प्रधान राज्य के अनन्तर मुख्य राज्य सुरक्षा तक की गौणता और विश्व राज्य व्यवस्था के अनंतर प्रधान राज्य सुरक्षा की आवश्यकताएँ शून्य होना भावी है। भले ही आज बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक में इसे कल्पना के रूप में ही स्वीकार लें। इस धरती की हालत वैज्ञानिक युग के अनन्तर जैसे बन पड़ी है और पर्यावरण संतुलन जैसा जर्जर छिन्न-भिन्न होता जा रहा है, उनके पहले भी किए गए, सोचे गए परिणामों के फलस्वरूप अनेकानेक नस्ल, रंग, जाति, धर्म, मत, संप्रदाय, देश, भाषा, वर्गों के रूप में बांटकर अनेक अहमता की दीवालें बन चुकी है। पूर्ववर्ती विधि से बनी हुई तमाम समुदायों में बंटी हुई मानव जाति सहअस्तित्व, अभय, समृद्धि और समाधान सम्पन्न होना संभव नहीं है। विकल्पात्मक अखण्ड सार्वभौम और अक्षुण्ण समाज व्यवस्था और जागृति सहज विधि से सम्पन्न होने के लिए विकल्पात्मक समाज-रचना विधि-व्यवस्था कार्यविधि, व्यावहारिक योजना विधि। इसके लिए विकल्पात्मक जीने की कला विधि, विकल्पात्मक विचार विधि, विकल्पात्मक दर्शन विधियों को जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना अनिवार्य है।

इस प्रकार एक परिवार से विश्व परिवार तक संबंध रचना कार्य सूत्र संबंधी ढांचा स्पष्ट हुई। इसी क्रम में ग्रामोद्योग, कृषि, पशु-पालन, कुटीर उद्योग को ऊर्जा संतुलन को सर्वाधिक विश्वसनीय बनाने के लिए जो तकनीकी की धारक वाहकता है वह शिक्षा परंपरा में ही रहेगी। प्रत्येक अध्यापक आचार्य विद्वान और मेधावी जन ही उपकार कार्य के रूप में प्रौद्योगिकी योजनाओं को तकनीकी कर्माभ्यासों को जन सामान्य में पहुँचाने का कार्य करते ही रहेंगे। क्योंकि व्यवहारवादी समाज का कार्य व्यवहार विचार अनुसंधान और संधान ही कार्यकलाप के रूप में निरंतर मानव के सम्मुख बना ही रहता है। प्रत्येक व्यक्ति में श्रेष्ठता को प्रमाणित करने का अरमान और निष्ठा स्वीकृत है। इसे प्रमाणित करने का प्रयासोदय प्रत्येक व्यक्ति में समीचीन है। इसीलिए परंपरा जागृत होने के उपरांत ही ये सर्वसुलभ होना अभिप्रेत है। इसी क्रम में आवर्तनशील अर्थव्यवस्था को व्यवस्था कार्य व्यवहार के अंगभूत रूप में पहचानना एक अनिवार्य स्थिति रही है।

बड़े-बड़े उद्योगों का भी स्थान अवश्य ही बना रहेगा। अधिकांश प्रौद्योगिकियाँ लघु उद्योग सीमा तक ही केन्द्रित होना रहेगा। इन सबका यथावत् संचालन कार्य भी ग्राम स्वराज्य सीमा में सर्वाधिक सम्पन्न होना

जैसे-जैसे आगे की सीढ़ियाँ होंगी वैसे-वैसे इनका तादात घटने की व्यवस्था है दिखाई पड़ती है। आवर्तनशीलता क्रम में प्रत्येक सीढ़ी में जिम्मेदारियों का सूत्र या दायित्वों का सूत्र बना ही रहेगा। शिक्षण संस्थाओं में सर्वाधिक जिम्मेदारी समायी रहना स्वाभाविक है। शिक्षा संस्कार ही स्वायत्त मानव का स्वरूप देने में अथवा स्वरूप को स्थापित करने का सार्थक मानसिकता प्रमाण कार्यप्रणाली है। वस्तु प्रणालियाँ समाहित रहेगी। वस्तु प्रणाली का तात्पर्य जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान ही है। इसका प्रबोधन कार्य प्रणालियाँ पूरकता और आवर्तनशील विधियों से सम्पन्न होता रहेगा। यह नैसर्गिक संतुलन और पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने में सार्थक होगा।

आवर्तनशील अर्थशास्त्र - ऊर्जा

अभी तक ऊर्जा सम्पादन कार्य को धरती के पेट में समायी हुई खनिज तेल और खनिज कोयला, विकरणीय धातुओं को ऊर्जा सर्वाधिक स्रोत का लक्ष्य बनाया। धरती अपने में संतुलित रहने के लिए कोयला और खनिज तेल धरती के पेट में ही समाया रहना आवश्यक रहा। इसका गवाही यही है कि यह धरती पर मानव अवतरित होने के पहले तक, यही धरती इन दोनों वस्तुओं को अपने पेट में समा ली थी। इसे पहले विज्ञानी भी पहचान सकते थे। ऐसा घटित नहीं हुआ। यही मूलत: वैज्ञानिक उपलब्धियों के साथ-साथ धरती के साथ भी दुर्घटना को घटित करने का प्रयास भले ही अज्ञानता वश हुआ हो यह घटना की विकरालता थोड़ा सा भी जागृत हुए मानव को दिखाई पड़ती है। धरती अपने में सम्पूर्ण प्रकार की भौतिक, रासायनिक सम्पदा से परिपूर्ण होने के उपरांत ही इस धरती पर जीव संसार और मानव संसार बसी। जीव संसार तक ही सभी क्रम अपने में पूरक विधि से संतुलित रहना पाया जाता है। मानव ही एक ऐसा वस्तु है, अपने कल्पनाशीलता, कर्म स्वतंत्रतावश भ्रमित होने के कारण ही धरती में अपना वैभव को प्रकाशित करने का जो स्वरूप रहा है उसे हस्तक्षेप करने का सभी प्रयास मानव के लिए एक हाफा-दाफी का कारण बन चुकी है। पर्यावरण में प्रदूषण अपने चरमोत्कर्ष स्थिति में पहुँचने के उपरांत सभी देश यही सोचते हैं प्रदूषण का विपदा अथवा प्रदूषण से उत्पन्न विपदाएं अपने-अपने देश में प्रभावित न हो, जबकि प्रदूषण का प्रभाव इस धरती के सभी ओर फैली ही रहती है। इसका साक्ष्य है इस धरती के ऊपरी भाग में बनी हुई रक्षा कवच। अर्थात् इस धरती की ओर आने वाली सूर्य ताप को यह धरती स्वयं पचाने योग्य परावर्तन विधि और प्रणालीबद्ध करता रहा है। वह धरती के सभी ओर से विलय होता हुआ आधुनिक उपकरणों से भी देखा गया है। जिसको विज्ञान की भाषा में ओजोन का नाम बताया करते हैं। यह भी वैज्ञानिक मापदण्डों से पता लग चुका है कि यह धरती का ताप किसी न किसी अंश में बढ़ना शुरू कर दिया है। इसका गवाही के रूप में समुद्र का जल किसी मात्रा में बढ़ता हुआ पहचाना गया है। इसी के साथ यह भी पहचाना गया

है कि धरती में ताप बढ़ने पर ध्रुव प्रदेशों में जमा हुआ बर्फ पिघल सकता है। यदि पिघल जाए तब धरती अपने में जितना विशाल क्षेत्र को पानी से रिक्त बनाए रखा है, उनमें से सर्वाधिक भाग जल मग्न होने की संभावना पर ध्यानाकर्षण कराया जा चुका है।

यहाँ उल्लेखनीय घटना यही है। विज्ञानी ही खनिज तेल और कोयला को निकालने के लिए यांत्रिक प्रोत्साहन किए और उसी से प्रदूषण सर्वाधिक रूप में होना स्वीकारे। इसके पश्चात भी उन खनिज तेल और कोयले की ओर से अपना ध्यान नहीं हटा पा रहे हैं। यहाँ पर प्रदूषण और ताप संबंधी दो तलवार मानव जाति पर लटकी ही हुई है। यह सर्वविदित तथ्य है। तीसरे प्रकार से सोचा जाए कि यह विज्ञान व विवेकमान्य तथ्य है कि इस धरती पर जल जैसी रसायन निश्चित तादात तक गठित होने की व्यवस्था रहा है। इसका कारण स्त्रोत को ब्रह्माडीय किरणों का ही पूरक कार्य के रूप में समझ सकते हैं। इसका उदाहरण रूप में अभी-अभी चंद्रमा रूपी ग्रह पर आदमी जाकर लौटा है और वहाँ पानी न होने की बात कही गई है। वहाँ पानी गठित होने के लिए अब दो कारण दिखाई पड़ती है। एक तो मानव इस धरती से जाकर जल रूपी रासायनिक गठन क्रिया को आरंभ कराएं अथवा ब्रह्माडीय किरणों के पूरकता वश गठित हो जावे। इन आशयों को हृदयंगम करने के उपरांत **जिस विधि से ब्रह्मांडीय किरणों के संयोग से जल बना ठीक इसके विपरीत यदि पानी वियोगित होने लगे तो धरती पानी विहीन हो जाएगी।** और इसी क्रम में ब्रह्मांडीय किरण इस धरती में स्थित विकिरण परमाणुओं के संयोग से यदि परमाणु अपने मध्यांशों को उसके सम्पूर्ण गठन के विस्फोट के लिए तैयार हो जाता है और प्रजाति के सभी परमाणु विस्फोटित हो जाते हैं, तब क्या इस धरती के सभी प्रजाति के परमाणु स्वयं स्फूर्त विस्फोट प्रणाली में आहत नहीं हो जाएंगे ? इसके लिए अनुकूल परिस्थिति को बनाने के लिए मानव ने क्या अभी तक कुछ भी नहीं किया है ? ये सब मानव सहज परिकल्पनाएँ उभर आती हैं। हमारा कामना ऐसा कोई दुर्घटना न हो, उसी संदर्भ में यह पूरा सवाल है।

बीती गुजरी वैज्ञानिक प्रयासों का जो कुछ भी परिणाम धरती पर असर किया है और धरती के वातावण में असर किया है, यही असर आगे और बढ़ने पर स्वाभाविक रूप में यह धरती जिस विधि से समृद्ध हुई उसके विपरीत विधि स्थापित हो सकता है। क्योंकि विकास भी नियम से होता है, ह्रास भी नियम से होता है।

पहले इस बात को इंगित कराया है जो ऊर्जा स्रोत विगत के बुद्धिमान पीढ़ी ने अपनाया उसके पक्ष में सम्पूर्ण प्रौद्योगिकी निर्भर हुई। उससे हुई प्रदूषण की पराकाष्ठा। अब मुख्य रूप में ऊर्जा संबंधों में सभी आवर्तनशील विकल्पों को अपनाना अनिवार्य है। अभी तक अपनाया हुआ ऊर्जा स्रोतों में से गोबर, कचड़ा गैस, पवन ऊर्जा, और सौर ऊर्जा, प्रपात ऊर्जा (जल विद्युत) यह आवर्तनशील होना स्पष्ट हो चुकी है।

जिसके संयोग से जितने भी कार्यकलाप करते हैं उससे कोई प्रदूषण नहीं होता। अभी तक जैसा नदी के प्रपात स्थलियों में बिजली प्रवाह प्राप्त करने का यंत्र संयोजनों को सजाया जा चुका है और समुद्र तरंग के बारे में भी प्रयोग शुरू किया गया है। इसी के साथ जल प्रवाह शक्तियों को विद्युत प्रवाह शक्तियों के रूप में पाने का प्रयास करना समीचीन है। यह सर्वाधिक, सभी देशों में समीचीन है। कोई न कोई महत्वपूर्ण नदी सभी समय बहती रहती है। बहाव का दबाव अनुस्यूत रहता है। उतने दबाव से संचालित होने वाली विद्युत संयंत्र को सर्वसुलभ करना आवश्यक है। ऐसी तकनीकी को प्राप्त कर शिक्षण पूर्वक लोक व्यापीकरण करना आवश्यक है। विद्युत संयंत्रों का विभिन्न स्तर मानव जाति पा चुकी है। इसलिए प्रवाह तंत्र के अंतर्गत इसे पाना, चित्रित कर लेना, व्यवहारीकरण कर लेना सहज है।

जिस गति प्रौद्योगिकी स्थितियों को पाकर हम अभ्यस्त हो गए हैं, उसमें हर दिशा में गति की ही बात आती है। ऊर्जा गति के लिए संयंत्र को विद्युत चालित, तेल चालित, वाष्प चालित विधियों से संचालित करते हैं। विद्युत को प्रवाह शक्तियों से सर्वाधिक रूप में पा सकते हैं। तैलीय यंत्रों के लिए खनिज तेल के स्थान पर वनस्पतिजन्य तेल से चलने वाली यंत्रों की संरचना एक आवश्यक घटना है। इसके लिए मानव विचार कर ही रहा है। इस विधा में दृष्टिपात करने पर वनस्पति तेल से संचालित होने वाले यंत्र इसमें आवर्तनशीलता अपने आप में स्थापित है। वनस्पतियाँ पुष्टितत्व के साथ ही हर प्रकार के द्रव्यों का संग्रहण कर सकता है। मानव के लिए आवश्यकीय प्राणवायु को समृद्ध करने के लिए सहायक कार्यकलाप के रूप में अधिकांश वनस्पतियों को देखा जाता है। वनस्पति तेल से संचालित क्रियाकलाप से तैलीय धूम्र, वनस्पति संसार में पाचन योग्य रहता ही है। इसके स्रोत संबध को इस प्रकार समझा गया है कि प्रत्येक कृषक अपने यात्रा कार्य में नियोजित होने वाले तेल का तादात समझना, समझाना संभव है। इसे किसी भी परिवार का यात्रा कार्य एवं कृषि कार्यों के आधार पर आवश्यक तादात को पहचाना जाता है। इस पहचान के आधार पर किसी भी तैलीय बीजों को तैयार कर प्रस्तुत कर सकता है। जैसे नीम, कंजी (करंज), एरण्ड, क्षुद्र एरण्ड इत्यादि। यह भी देखा गया है कि हर देश, काल, परिस्थितियों में तैलीय वृक्षों को हर कृषक पहचाना ही रहता है। जहाँ जो चीज प्रचुर मात्रा में रहती है, उसको भी पहचाना रहता है। यह तभी सफल होता है, परिवार मानव और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी हो जाए। तैलीय स्रोत बीज वृक्ष न्याय से नित्य स्रोत होना देखा गया है। यह आवर्तनशील होना नियति सहज है। इससे उत्पन्न धूम्र वनस्पतियों का आहार होना, वनस्पतियों में यह धुआँ पच जाना देखा जाता है। इस विधि से यह भी क्रम से वृक्ष बीज, तेल धूम्र और वृक्षों का आहार, पुनः बीज विधि से आवर्तनशील होना दिखाई पड़ता है। ऐसे तैलीय वृक्षों को सड़कों के किनारे आवश्यकतानुसार जंगल में रोपित कर मानव जाति के लिए आवश्यकता से अधिक तैलीय बीजों का संग्रहण करना नित्य समीचीन है। इसमें दो ही बिन्दु प्रधान हैं। धरती का संतुलन और

मानव संतुलन प्रधानत: अध्ययन और योजना का आधार बिन्दु हैं। यह तो बहुत स्पष्ट है मानव परम्परा की अक्षुण्णता धरती की संतुलन और स्वस्थता पर निर्भर है।

मानव का संतुलन जीवन जागृति पर आधारित है। जीवन जागृति सुलभता पीढ़ी से पीढ़ी के लिए जागृत परंपरा पर ही आधारित है। (इस बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक मानव विभिन्न रहस्यमयी अहमतावादी अस्मिता सहित संघर्ष, कुण्ठा, निराशा, भय, सशंकता, द्रोह, विद्रोह, घृणा उपेक्षा जैसी अवांछनीय प्रताड़नाओं से प्रताड़ित होता ही आया हुआ है। इसे हम सब अच्छी तरह से समझ गए हैं अथवा समझ सकते हैं। इसी के साथ जो कुछ भी **संग्रह और भोग के प्रति प्रलोभन है, जिसमें क्षणिक रूप में राहत प्रतीत होते हुए भी उसके दूसरे क्षणों में राहत से अधिक भय, सशंकता व्यापता हुआ देखा गया है।** इसे प्रत्येक व्यक्ति, समुदाय, समाजसेवी संस्था, राष्ट्र संस्था, धर्म संस्था और व्यापार संस्था और प्रौद्योगिकी संस्थाओं में परीक्षण निरीक्षण पूर्वक सर्वेक्षण कर सकते हैं। इसे हम भले प्रकार से समझ चुके हैं।) अतएव आवर्तनशील विधि से स्वायत्त परिवार मानव, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी की नित्य संभावना वर्तमान में कार्यक्रम सहित समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्वपूर्ण शुभ और उसकी अक्षुण्णता को अनुभव करना, प्रमाणित करना, उत्सवित होना समीचीन है। इसके लिए दो ही बिन्दु का विशद् अध्ययन की आवश्यकता है। वह है मानव परिभाषा सहज जीने की कला, विचारशैली और अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन और सहअस्तित्व साक्षात्कार। इसी तथ्य के साथ सम्पूर्ण मानव में संतुलन सूत्र और यह धरती का व्यवस्था में पूरक होने का सूत्र मानव परंपरा के लिए करतलगत होता है। इसी के अंगभूत यह आवर्तनशील चिंतन और शास्त्र है।

आवर्तनशील ऊर्जा स्रोत के क्रम में सूर्य उष्मा से विद्युत और उष्मा कार्य-भट्टियों को प्राप्त कर लेना सहज है। सूर्य उष्मा भट्टी के स्वरूप को चूना पत्थर आदि से संबंधित पक्ककारी क्रियाकलापों को सम्पादित करने के लिए चित्रित करना आवश्यक है इसका स्रोत सूर्य का प्रतिबिम्बन को किरण के रूप में प्राप्त करना, वह किरण के साथ उष्मा प्रवाह होना, फलस्वरूप रुई, लकड़ी आदि वस्तुओं में आग लगने वाली क्रिया के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रयोग के आधार पर अर्ध गोलाकार भट्टी के रूप में रचना किया जा सकता है इसमें उत्पन्न अथवा इसमें अर्जित उष्मा से भट्टी से बनी हुए सभी वस्तुयें और चूना पत्थर पकना सहज है। यह भी आवर्तनशील विधि से व्यवस्था में प्रमाणित हो जाता है। क्योंकि सूर्य उष्मा का परावर्तन सूर्य बिंब अपने में स्वभावगति को प्राप्त करने के क्रम में होना पाया जाता है। सूर्य बिंब आज की स्थिति में आवेशित गति में होने के फलस्वरूप उष्मा का परावर्तन भावी है। परावर्तित सभी उष्मा विभिन्न ग्रह-गोलों में पच जाना पाया जाता है। इस क्रम में पचाया हुआ भी स्वभाव गति में होना और स्वभावगति में आने के

लिए उन्मुख है। उसके लिए सहअस्तित्व व सहज व्यवस्था मार्ग प्रशस्त होना समझ में आता है। इसी प्रकार धरती सौर व्यूह, अनंत सौर व्यूह, ब्रह्मांडीय किरण स्वभाव गति रूप में सहअस्तित्वकारी गतिविधि कार्यकलाप करता हुआ समझ में आता है।

कृषि-उर्वरकता-ऊर्जा और नैसर्गिकता में आवर्तनशीलता

कृषि उर्वरकता-ऊर्जा और नैसर्गिकता में आवर्तनशीलता अस्तित्व सहज सहअस्तित्व में पाया जाता है। कृषि का तात्पर्य सर्वविदित है धरती से बीज-वृक्ष कार्य प्रणाली पूर्वक मानव शरीर पोषण योग्य और आक्रामक-संक्रामक और संयोगात्मक रोगों से मुक्ति पाने योग्य वस्तुओं का पा लेना है। ऊर्जा का तात्पर्य धरती से जितने भी शरीर के लिए पुष्टि तत्व कृषि विधि से प्राप्त किया जाता है। यही आहार रूपी ऊर्जा है।

'उर्वर धरती' का तात्पर्य एक बीज को अनेक बीजों में परिणित करने वाली धरती से है। 'उर्वरक' का तात्पर्य धरती को उर्वर बनाने वाली वस्तु व द्रव्यों से है। धरती का अध्ययन क्रम में अर्थात् मानव धरती को समझने के क्रम में धरती को उर्वर, अनुर्वर स्थितियों में दृष्टव्य है।

उर्वर धरती को मानव ने पहचाना है। धरती को उर्वर बनाए रखना भी चाहता है। मूलत: धरती उर्वर बना कैसा है, यह भी बहुतायत लोगों के मन में स्पष्ट है। यथा धरती में वनस्पति के प्रकटन के अनन्तर उर्वरकता बढ़ती आया है। इस प्रक्रिया को ऐसा समझा गया है कि जहाँ झाड़-पौधे, घास-फूस होते हैं, वहाँ की मिट्टी शनै:-शनै: उर्वर होना पाया जाता है। वनस्पतियाँ सड़कर, विरचित होकर ही धरती उर्वर और उर्वरता में समृद्धि की ओर दिखाई पड़ती है, अथवा स्पष्ट है। ऐसी उर्वरता श्रेष्ठ-श्रेष्ठतर रूप में व्यवस्थित हुए स्वरूप में देखने को मिलती है। यह निर्विवाद है वनस्पति संसार परमाणु, परमाणुओं से रचित अणु, अणु संयोगित रसायन द्रव्य, रसायन द्रव्यों से रचित प्राणकोषा, प्राणकोषा से रचित रचनाएँ देश धरती में देखने को मिला। इस यथार्थ घटना के आधार पर यह विदित होता है कि धरती में पाए जाने वाले किन्ही प्रजाति के पदार्थ ही वनस्पतियों के रूप में परिणित होते हैं। साथ ही **ठोस वस्तुएं ठोस वस्तु के साथ, विरल वस्तुयें विरल वस्तुओं के साथ, तरल वस्तुयें तरल वस्तुओं के साथ सहअस्तित्व रत पाया जाता है। इतना ही नहीं इसे प्रमाणित करने के क्रम में निरंतर उद्यमशील है।** जैसा धरती की सतह में अथवा धरती की सतह के नीचे किसी भी वस्तु को विरल स्वरूप प्रदान किया जाए उनके सजातीय अथवा उसके अनुरूप वस्तु के सतह तक ऊपर गमन करता हुआ देखने को मिलता है। इसे अध्ययन करने पर और तौल के कसौटियों पर लाने पर इनमें भार दिखाई पड़ती है। इस प्रयोग से विरल वस्तु, विरल वस्तु के साथ सहअस्तित्व में रहना समझा गया

है। यह भी देखा गया है कि पानी ढाल की ओर अंतत: दौड़ता है। ऐसा ढाल अंतत: नाला, नदी, समुद्र के रूप में होना देखा गया है। पानी में यह भी गुण देखा गया है मिट्टी को गीला करने का अथवा मिट्टी गीला होने का कार्य को होता हुआ देखा गया। मिट्टी के संयोग में पानी जितनी तादात में होता है, सतह से नीचे जहाँ पानी की स्थिति पायी जाती है, वहाँ तक पहुँचने की गति को देख सकते हैं। इस प्रकार विरल वस्तु, विरल वस्तु के साथ सहअस्तित्वशील होना उनके गतियों, प्रवर्तनों और स्थितियों से प्रमाणित हो जाता है। पानी स्वयं वाष्पित होकर विरल रूप में होकर पुन: बादल के रूप में एकत्रित होना, धरती की उष्मा, बादल की उष्मा, ऋण धनात्मक स्थितियों में वर्षा होना देखा गया। यथा धरती ज्यादा गर्म रहे, धरती का वातावरण कम गर्म रहे उससे कम गर्म बादल होने की स्थिति में पानी बरसना देखा गया है। धरती का वातावरण और धरती ठंडी रहे अर्थात् उष्मा कम हो जाए, बादल अपनी स्थिति को वर्षा में बदलने के क्रिया में ओला पड़ता हुआ, जमा हुआ पानी देखने को मिलता है। इस प्रकार विरल रूप में परिवर्तित पानी पुन: बादल, वर्षा, धरती ढाल की ओर होना स्पष्ट है। यह सब आवर्तनशीलता का द्योतक है। इसी क्रम में ठोस वस्तु, ठोस वस्तु के साथ सहअस्तित्व रूप में होने रहने की क्रियाकलाप यथा ऊपर फेंका हुआ पत्थर, पेड़ से गिरा हुआ पत्ता-फल ये सब ठोस के साथ ठोस वस्तु सहअस्तित्व को प्रमाणित करने के क्रम में क्रिया-विन्यासों को करता हुआ देखने को मिलता है। यह भी इसी के साथ देखने को मिला है कि धरती के साथ-साथ तीनों अवस्थाओं में सहअस्तित्वशील वस्तुओं को उससे भिन्न स्थिति में विस्थापित करने के लिए विदेशी (बाह्य) बल-शक्ति का संयोजन होना आवश्यक है। जैसा विरल वस्तु को धरती में धरती के साथ स्थिर करने में बाह्य बल लगता ही है। पानी को अपने सतह से ऊपर की सतह में विस्थापित करने के लिए बाह्य बल लगता ही है और धरती का अपने सतह में रहे आयी किसी ठोस वस्तु को धरती की सतह से ऊपर विस्थापित करने के लिए बाह्य बल होना आवश्यक है। यथा एक पत्थर को ऊपर फेंकने के लिए बाह्य बल संयोजित होना देखा जाता है। ठोस वस्तु में यह भी एक विशेषता है। धरती के सतह से नीचे में जो वस्तु ठोस रूप में रहती है उसे ऊपर लाने के लिए भी बाह्य बल-शक्ति लगता है। इसे हर मानव प्राय: देखता ही है। यही स्थिति सभी ग्रह-गोलों में होना सहज है। यहाँ इन तथ्यों के वर्णन का प्रयोजन यही रहा कि अन्न, वनस्पतियों की रचना रस और ठोस संयुक्त रूप में होना दिखता है। इसके विरचना क्रम में यह भी देखने को मिलता है कि पदार्थ शनै:-शनै: वाष्पित होकर शुष्क होता है। इसके अनन्तर धरती के संयोग से मिट्टी के सदृष्य हो जाता है। इसी प्रकार एक छोटे से छोटे तृण से बड़े से बड़े वृक्षों को भी देखा गया है। अस्तु इस धरती में रासायनिक रचना संसार ही धरती के उर्वर होने का स्रोत है।

रासायनिक संसार पदार्थावस्था से उदात्तीकृत द्रव्यों के रूप में दृष्टव्य हैं। रासायनिक द्रव्यों का तात्पर्य है एक से अधिक प्रजाति के अणुएं निश्चित अनुपात में मिलकर दोनों, अपने-अपने आचरणों को त्याग देते हैं

और तीसरे प्रकार के आचरण सम्पन्न होकर प्रकाशित रहते हैं। इस घटना का सटीक अध्ययन करने पर आवर्तनशीलता, उदात्तीकरण, पूरकता, सहअस्तित्व के अर्थ में स्पष्ट हो जाता है।

सत्ता में संपृक्त प्रकृति ऊर्जा सम्पन्न बल सम्पन्नता क्रम में क्रिया के रूप में व्याख्यायित है। **क्रिया श्रम-गति-परिणाम का संयुक्त रूप ही है।** इसलिए मानव अध्ययन कर सकता है। सत्ता स्थितिपूर्णता के रूप में अर्थात् सर्वदा व्यापक, पारदर्शी, पारगामी के रूप में ही विद्यमान है। इसलिए इसे स्थितिपूर्ण नाम है। ऐसी स्थितिपूर्ण सत्ता में अनंत इकाईयों के रूप में अथवा अनगिनत एक-एक के रूप में स्थितिशील प्रकृति सहज जड़-चैतन्य रहना दृष्टव्य है। यही अस्तित्व स्वयं सहअस्तित्व होने का प्रमाण है। पूर्ण में संपृक्त प्रकृति, पूर्णता में गर्भित होना (पूर्णता का आशय सम्पन्न रहना) इस प्रकार से देखा जा सकता है कि प्रत्येक परमाणु अंश एक-दूसरे को पहचानते हैं। इसका प्रमाण निश्चित अच्छी दूरी में है। इतना ही नहीं, निश्चित कार्य और आचरण करते हैं। इसके आगे प्रत्येक परमाणु दूसरे परमाणु को पहचानते हैं। इसका प्रमाण अणुओं के रूप में परमाणुओं का होना स्पष्ट है। प्रत्येक परमाणु सजातीय और विजातीयता को भी पहचानते हैं, इसका प्रमाण रासायनिक द्रव्य हैं। रासायनिक द्रव्यों का तभी प्रकटन होता है। इसके मूल में उदात्तीकरण ही सिद्धांत है। उदात्तीकरण के मूल में विभिन्न प्रजाति के दो अणुएं निश्चित अनुपात सहित संयोजित होकर दोनों अपने-अपने निश्चित आचरण को छोड़ देते हैं तथा तीसरे ही प्रकार के आचरण के लिए तैयार हो जाते हैं। यह समृद्ध पदार्थावस्था के उपरांत ही घटित हो पाता है। पदार्थावस्था अपने सम्पूर्ण समृद्धि को बनाए रखते हुए विभिन्न/सम्पूर्ण रचना वैभवों को स्पष्ट करता है इसका साक्ष्य इस धरती पर दृष्टव्य है। विभिन्न रचनाएँ अपने-अपने मौलिकता के आधार पर बीजानुषंगीय-वंशानुषंगीय विधियों को प्रमाणित करता हुआ देखने को मिलता है। यहाँ यह भी स्मरण रहना आवश्यक है कि मानव ही देखने जानने-मानने-समझने वाला है। देखने का अर्थ समझना ही है। समझने का स्वरूप और प्रमाण जानना-मानना-पहचानना-निर्वाह करना, इनमें नित्य समरसता को अनुभव करना, ऐसे सामरस्यता को सर्वतोमुखी दिशा, कोण, परिप्रेक्ष्य और आयाम में समाधान के रूप में अभिव्यक्त और संप्रेषित करना ही है। अर्थात् पदार्थावस्था-प्राणावस्था, रासायनिक-भौतिक स्वरूप है। पदार्थावस्था समृद्ध होकर ही रसायन द्रव्यों में परिवर्तित होना स्पष्ट हुआ। इसमें से उदात्तीकरण सिद्धांत से विकास क्रम में स्थित पदार्थावस्था की एक से अधिक इकाईयाँ अपने आचरण को अग्रिम विकास के अर्थ में तिलांजलि देकर तीसरे प्रकार के आचरण को वे सभी इकाईयाँ मिलकर अपनाना ही प्रधान तथ्य है। यहाँ भी सहअस्तित्व में आवर्तनशीलता प्रमाणित होता है।

सहअस्तित्व का तात्पर्य ही सभी प्रकटन साथ-साथ होने से है। साथ-साथ होने का तात्पर्य चिन्हित रूप में अलग-अलग आचरण प्रभाव, अविभक्त-विभक्त मानव पहचानने योग्य होने और विकास क्रम में अथवा विकास के रूप में स्पष्ट रहने से है। इस विधि से सम्पूर्ण भौतिक-रासायनिक वैभव विकासक्रम में गण्य होता है। साथ ही इनके योग-संयोग-वियोग विधियों से श्रेष्ठता क्रम में स्पष्ट हो जाती है। विकासक्रम में स्थित सभी भौतिक पदार्थ और रसायन द्रव्य, उनसे घटित घटनाएँ उदात्तीकरण के साथ-साथ सहअस्तित्व इन्हीं के आचरण में द्रष्टव्य है। यथा परमाणु-अंश एक दूसरे के साथ निश्चित दूरी, निश्चित कार्य, निश्चित फलन के साथ-साथ परमाणु गठित होता है। इसके मूल में सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में ऊर्जा-सम्पन्नता, बल-सम्पन्नता का स्वरूप स्पष्ट किया जा चुका है। इसी आधार पर परमाणु सहज क्रियाकलाप का मानव अपने भाषा में अपने ही दृष्टापद प्रतिष्ठा के अनुरूप व्यक्त करने पर जितने भी परमाणु अंश परमाणु में कार्यरत हैं, वे सब एक दूसरे को पहचानते हैं। प्रत्येक परमाणु गतिपथ और गति पथों सहित कार्यरत रहना, निर्वाह करने का द्योतक है। इस प्रकार प्रत्येक परमाणु अंश पहचानने और निर्वाह करने का प्रवर्तन सम्पन्न रहता है। इसका गवाही यही है, सभी परमाणु अंश किसी न किसी परमाणु गठन में ही कार्यरत रहते हैं। किसी परमाणु अंश गठन से बाहर यदि दिखते हैं अथवा मानव घटित करता है, पुन: वे सब मिलकर परमाणु के रूप में गठित होने के प्रयास में रहते हैं अथवा किसी परमाणु में समावेश होने के प्रयास में रहते हैं। परमाणु अंश से ही पहचानने, निर्वाह करने का क्रियाकलाप, तद्नुसार निरीक्षण-परीक्षण पूर्वक सर्वेक्षित होता है।

एक से अधिक परमाणुओं का गठन को हम अणु कहते हैं। मूलत: परमाणु ही अणु रचना करते हैं। सभी प्रकार के अणु अपने-अपने सजातीय परमाणुओं से रचित रचना है। सम्पूर्ण अणु स्वरूप को एक ही प्रजाति के परमाणुओं से रचित रचना के रूप में अणुओं को देखा जाता है। अणु के अनन्तर ही सजातीय-विजातीय अणु संयोग, बड़े-छोटे भौतिक रचनाएँ होते हैं। यथा धरती-ग्रह-गोल जैसी बड़ी-बड़ी रचनाएँ होती हैं और विभिन्न धातु, विभिन्न प्रकार के पत्थर, विभिन्न प्रकार की मणियाँ, विभिन्न प्रकार की मिट्टी के रूप में रचनाएँ हुई।

ये सब सहअस्तित्व सहज पूरकता उपयोगिता विधि से गठित हुई हैं। एक से अधिक परमाणु अंशों का एकत्रित होना सहअस्तित्व का ही नित्य प्रभाव है - महिमा है क्योंकि अस्तित्व ही सहअस्तित्व है। इस विधि से एक दूसरे को पहचानना, साथ में होना, के स्वरूप को अथवा शुद्ध सहअस्तित्व के स्वरूप को अणु-रचना पर्यन्त शुद्ध तात्विक वस्तु के रूप में देखा जाता है। तात्विक वस्तुएं मिश्रित और यौगिक स्वरूप में प्रवृत्त होना भी सहअस्तित्व का द्योतक है। भौतिक संसार अपने समृद्धि को प्रमाणित करने के लिए मिश्रित

और यौगिक कार्यों में भाग लेना स्पष्ट हुआ। इस प्रकार मिश्रित और यौगिक कार्यों में प्रवृत्त होना सहअस्तित्व का द्योतक है। प्रयोजन भौतिक-रासायनिक; जीवन रचनाओं के रूप में दृष्टव्य है। विकास प्रमाणित होने के लिए पदार्थावस्था की समृद्धि और प्राणावस्था की समृद्धि जड़-चैतन्य प्रकृति में सहअस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए अपरिहार्यता रही। अपरिहार्य का तात्पर्य निश्चत प्रकल्प से है। प्रकल्प का तात्पर्य निश्चित प्रयोजनों को प्रमाणित करने के अर्थ में घटित घटनाएँ। **निश्चित प्रयोजनों का तात्पर्य सहअस्तित्व में ही भौतिक रासायनिक क्रियाकलाप रूपी विकास क्रम, परमाणु में विकास (गठनपूर्णता), चैतन्यपद, जीवन प्रतिष्ठा, जीवन और शरीर में सहअस्तित्व, जीवन जागृति को स्पष्ट करने की आवश्यकता, विश्रामस्थली (क्रियापूर्णता), मानव स्वयं अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होना, जिसमें आवर्तनशील अर्थव्यवस्था एक महत्वपूर्ण भूमि होना पाया जाता है।** पुन: मानव ही जागृतिपूर्णता को मानव परम्परा में प्रमाणित करना जागृति सहज है। जागृति का प्रमाण मानव ही है। मानव ही जीवन सहज जागृति को दृष्टा, कर्ता, भोक्ता के रूप में प्रमाणित करता है। प्रमाणित करने के मूल वस्तु के रूप में अस्तित्व दर्शन रूपी परमदर्शन, जीवन ज्ञान रूपी परम ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण रूपी परम आचरण को प्रमाणित करता है करने योग्य है। **प्रमाण स्रोत ही लोक व्यापीकरण और सर्वसुलभ होने का स्रोत है।** इस प्रकार नियति सहज रूप में ही जीवन जागृति उसका निश्चित प्रयोजनों को मानव परम्परा में स्पष्ट होना समीचीन है जिसकी अपरिहार्यता है ही। इस क्रम में मानव ही तन, मन, धन रूपी अर्थ में समृद्धि को अनुभव करना और व्यवहार में प्रमाणित करना अति आवश्यक है।

शरीर पुष्टि, स्वास्थ्य संरक्षण के रूप में प्रमाणित हो पाता है। इसके मूल में भी जीवन जागृति बनाम जागृत मन ही प्रमाण है। स्वस्थ मन का तात्पर्य भी जागृत जीवन की अविभाज्य अभिव्यक्ति संप्रेषणा क्रम में पाए जाने वाले जागृत मन से है। धन समृद्धि का तात्पर्य परिवार मानवों से गठित परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन से है। साथ ही संपूर्ण धन, मन और तन का सदुपयोग से है। इस स्वरूप में अर्थात् स्वायत्त परिवार मानव सहज परिवार में परिवार का अर्थ, प्रयोजन और गति स्वयंस्फूर्त विधि से प्रमाणित होता ही है। फलस्वरूप परिवार मूलक स्वराज्य अपने आप स्वयंस्फूर्त विधि से स्थापित होना सहज है।

परिवार मानवों से रचित परिवार, व्यवस्था में जीना प्रमाणित करता है। क्योंकि सहअस्तित्व में संतुलन-नियंत्रण शाश्वत् व्यवस्था सूत्र है। दूसरे विधि से यह नित्य वर्तमान है। इसी विधि से संपूर्ण अस्तित्व सहअस्तित्व के अर्थ में प्रतिष्ठित है। मानव भी सहअस्तित्व में अविभाज्य रहते हुए व्यवस्था को प्रमाणित करना अस्तित्व सहज निर्देश समझ में आता है। मानव में सूंपर्ण प्रेरकताएं परस्परता में ही होना पाया जाता है। यही सहअस्तित्व और आवर्तनशीलता का मूल सूत्र है। **प्रेरकताएं प्रेरित होने के क्रम से अस्तित्व सहज**

रूप में, विकास सहज रूप में, जागृति सहज रूप में, रचना-विरचना सहज रूप में प्रमाणित है। सहअस्तित्व सहज रूप में सहअस्तित्व ही प्रेरणा, प्रेरित होना रहना ही फलन है। सहअस्तित्व अपने आप में नित्य प्रमाण है। क्योंकि सत्ता में संपृक्त प्रकृति निरंतर वर्तमान है ही। मानव सहज क्रिया और विचार विधियों से अन्य प्रकृतियों से अलग-अलग होना-रहना और करना-कराना संभव नहीं क्योंकि सत्ता हर काल, देश में विद्यमान है जबकि संपूर्ण प्रकृति हर काल में विद्यमान है, (हर देश में नहीं।)

देश का आधार सत्ता है यही विस्तार हैं। सत्तामय इसे हम व्यापक नाम दिया है, देश का लम्बाई-चौड़ाई-ऊंचाई-गहराई का कहीं पता नहीं लगता, कारण-गुण-गणित विधि से देखने को नहीं मिलता। मानव कल्पना में आता नहीं। इन्हीं के नापदण्ड अथवा नाप मानव के लिए असम्भव रहा इसलिए अस्तित्व में नित्य वैभवित सत्ता को व्यापक ही कहना बन पाया। इसके पहले यह भी समझ चुके हैं कि सत्ता संपूर्ण प्रकृति के लिए पारदर्शी है। प्रकृति में पारगामी है। प्रकृति के लिए नियम है। नियम ही अथवा नियम सहित ही अस्तित्व बोध होता है यही मानव में ज्ञान है। इसी क्रम में पारगामीयता का प्रमाण संपूर्ण पदार्थ व प्रकृति अपने में नित्य क्रियाशील होने के रूप में और क्रियाशीलता के मूल में बड़े-से-बड़े, छोटे-से-छोटे वस्तुएं ऊर्जा सम्पन्न और बल सम्पन्न रहना पाया जाता है। भले ही इनके नाम को जैसे भी हम रख लें। इस प्रकार मानव में ऊर्जा सम्पन्नता ही ज्ञान सम्पन्नता है। ऊर्जा सम्पन्नता, क्रियाशीलता और हर ग्रह-गोल-ब्रह्माण्ड नियंत्रित रहना पाया जाता है। सभी नियंत्रण निश्चित अच्छी दूरी में से ही स्पष्ट होना देखा गया है। इस प्रकार सत्ता में प्रकृति सहअस्तित्व सहज रूप में विद्यमान है। यह सहअस्तित्व सहज वैभव स्वयं संपूर्ण प्रकृति सत्तामयता में, से, के लिए को प्रमाणित करने में व्यस्त है अथवा रत है और कहीं इनका अवरोध, प्रतिरोध, विरोध लवलेश भी न होकर निरंतर संगीत, निरंतर उत्सव, नित्य वैभव के रूप में ही नित्य वर्तमान है।

विकास जागृति सहज प्रेरणाओं का प्रमाण स्वयं में विकास जागृति ही है। विकास जागृति का ध्रुव बिन्दु अथवा विकास का प्रमाण बिन्दु मानव जीवन ही है। मानव अनुभवमूलक वैचारिक परिशीलन, विश्लेषणपूर्वक, प्रयोजन और प्रयोजित बिन्दुओं के रूप में जानने-मानने और पहचानने की अध्ययन प्रक्रिया-क्रिया है। विकास घटना के साथ-साथ विकास क्रम भी होना एक स्वाभाविक वैभव है। इस वैभव को हम मानव देख पाते हैं। मानव में देखने की परिभाषा सुस्पष्ट है कि जानना-मानना-पहचानना-निर्वाह करना। इस विधि से समझने वाला मानव ही है। समझ में आने वाली वस्तु ही सहअस्तित्व ही है, इसीलिए मानव ही द्रष्टा, कर्ता, भोक्ता के रूप में सहज है। यही जागृति का प्रमाण है। विकास गठनपूर्णता के रूप में वैभव है। जागृति द्रष्टा पद जागृति एवं प्रमाणों के रूप में द्रष्टव्य है। इन प्रमाणों के आधार पर ही मानव

अपने परंपरा सहज वैभव को प्रमाणित कर पाता है। दृष्टा पद सहज विधि से जड़-चैतन्य का दृष्टा है। इसी विधि से मानव का परमाणु को देख पाना संभव हुआ है। परमाणुओं का नाम, रचना की परिकल्पना मानव परंपरा में आ चुका है। इसका लोकव्यापीकरण भी हुआ है। नाम और रचना के परिकल्पनाओं को यथावत् मानते हुए, ऐसे परमाणुएं है क्यों? और कितने हैं? वाला प्रश्न आना सहज रहा। इन्हीं प्रश्नों का सहज उत्तर रूप में अनेक प्रजातियों के परमाणु होना, उसमें से किसी संख्यात्मक परमाणु अंशों से गठित परमाणुओं में भूखापन और कुछ निश्चित संख्यात्मक परमाणु अंशों से गठित परमाणुएं अपने में अजीर्णता को प्रकाशित करते हैं। ऐसे भूखे और अजीर्ण परमाणु जितने भी हैं, वे सब विकास क्रम में हैं। ऐसे विभिन्न जाति के परमाणुएं अणु और अणु रचित रचनाओं में भागीदारी करता हुआ देखने को मिलता है। इसमें जागृति क्रम ही एक नामकरण ही है। जागृति क्रम - जागृति जितने भी जीवन मानव परंपरा में ही अध्ययन गम्य है विद्यमान हैं वे सभी इकाई के रूप में गण्य होते हैं और परमाणु व्यवस्था का आधार रूप में व्याख्यायित होते हैं। व्याख्यायित होने का तात्पर्य कार्यरत रहने से है। प्रत्येक निश्चित संख्यात्मक परमाणु अंश सम्पन्न परमाणुएं, अपने-अपने आचरणों को, सदा-सदा के लिए, एक ही प्रयोजन के रूप में अथवा एक-एक निश्चित प्रयोजन के रूप में बनाए रखते हैं। विकास क्रम में पाये जाने वाले सम्पूर्ण प्रकार के परमाणुएं अणुबंधन एवं भारबंधन पूर्वक रचना-विरचना कार्यों को सम्पन्न करते हैं। ऐसी रचना और विरचनाएं भौतिक और रासायनिक प्रभेदों से होना पाया जाता है। भौतिक रचनाएं प्रधान रूप में मृद, पाषाण, मणि, धातुओं के रूप में; रासायनिक रचनाएं, अम्ल, क्षार, पानी; प्राणावस्था की संपूर्ण रचना और विरचना, जीवास्था की संपूर्ण शरीर रचना और विरचना तथा ज्ञानावस्था के संपूर्ण शरीर रचना और विरचना के रूप में दृष्टव्य है।

प्रत्येक रचनाएं विरचना के ओर और विरचनायें रचना के ओर उन्मुख रहते ही है इसको हम ऊपर कहे हुए भौतिक-रासायनिक स्वरूप में देख पाते हैं। इस क्रम में धरती का भी रचना-विरचना होने की परिकल्पना आता है। धरती के संबंध में हर ग्रह गोल अपने स्थिति में एक रचना के रूप में ही होते हैं चाहे वे ठोस रूप में हो या विरल रूप में हो। ये दोनों स्थिति में दिखने वाली रचनाएं प्रत्येक स्थिति शून्याकर्षण के आधार पर अक्षुण्ण बने रहते हैं। ऐसी दोनों प्रकार की रचना में से ठोस रचना के उपरान्त ही रासायनिक रचना के लिए तत्पर होना पाया जाता है। इस धरती में रासायनिक रचनाएं अपने चरमोत्कर्षता पर्यन्त रचना क्रम को बनाए रखा है। यह धरती स्वयं इस बात की गवाही है। रासायनिक रचनाएं न हो ऐसे भी धरती हैं। ऐसे भी रचनाएं ग्रह-गोल के रूप में है और ठोस रूप न हो परन्तु केवल विरल रूप हो ऐसे भी ग्रह-गोल हैं। उक्त तीनों स्थितियों में हर ग्रह-गोल अपने निरंतरता को बनाएं रखते हैं क्योंकि अस्तित्व न तो घटता है न ही बढ़ता है। इसी आधार पर ग्रह गोल की अक्षुण्णता को स्वीकारना बनता है। ऐसी स्वीकृति की आवश्यकता और अधिकार दोनों मानव में होना पाया जाता है। किसी ग्रह गोल में और कोई अव्यवस्थित

उल्काएं (धूमकेतु) समाने मात्र से अस्तित्व में वस्तु बढ़ना-घटना नहीं हुई। अव्यवस्थित वस्तुएं व्यवस्था में भागीदारी के लिए अर्पित होना अस्तित्व सहज चरित्र और कार्य है। ऐसी घटनाओं को यही कहा जा सकता है कि जिस ग्रह गोल में जो समा गया उसकी समृद्धि हुई। अव्यवस्थित रूप में उल्काओं (धूमकेतुओं) के होने का कारण किसी भी धरती में वैज्ञानिक विधि से नाभिकीय प्रयोगों अथवा परिवेशीय अंशों का आवेश क्रम में किये गये प्रयोगों के फलस्वरूप किसी भी धरती से आंशिक वस्तुएं शून्याकर्षण स्थिति में असीम अवकाश में होना संभव है, इसी क्रम में इन वस्तुओं को पहचाना जा सकता है। पहचानने का प्रमाण मानव ही ऐसी इकाई है जो प्राकृतिक सहज क्रियाकलापों में हस्तक्षेप करता है, फलत: ह्रास विधि ज्ञान को विज्ञान कहना बनता है। यथा- मेंढक, सांप, आदमी, परमाणुओं को काटो, धरती को काटो-उड़ाओ ये सब कल्पनाएं मानव में होता है। अपनी कल्पनाओं के अनुसार प्रयोग करने का अधिकार मानव में होता है। इन्हीं प्रयोगों के चलते मानव को अथवा हर भ्रमित मानव को अव्यवस्था में जीने की विवशता को भी स्वीकार करता है। यही सर्वदृष्टिगोचर घटना अव्यवस्थित मानव ही अव्यवस्था के लिए प्रयत्न करता है यह भी बात अव्यवस्था के कारक तत्व के रूप में मानव को पहचाना जा सकता है।

इस प्रकार रचना-विरचनाएं अपने संपूर्णता के साथ ही वैभवित रहते हुए देखने को मिलता है। जैसे सूरज विरल रूप में होते हुए भी नियंत्रित रहना पाया जाता है। इसी प्रकार अनेक ग्रह-गोल विरल रूप में नियंत्रित है, कुछ ग्रह-गोल ठोस रूप में नियंत्रित है और कुछ ग्रह-गोल ठोस रूप के बाद संपूर्ण रासायनिक क्रिया-प्रक्रिया सहित रचना-विरचना के रूप में वैभवित रहना पाया जाता है। ऐसी समृद्ध धरतियों में से यह धरती जिसमें मानव शरण लिया है साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत है। अतएव **अव्यवस्था के लिए कारक कोई इकाई अस्तित्व में देखने को मिला है, वह केवल भ्रमित मानव है। इस आशय से भी स्पष्ट होता है कि हर भ्रमित मानव ही जागृत होना एक आवश्यकता है।**

उल्का के बारे में और भी प्रक्रियाएं देखने को मिलता है। वह है इस धरती के वातावरण में ब्रह्मांडीय किरणों और विकिरणों का संचार होता ही रहता है जिससे विकास के लिए समुचित उपकार मार्ग प्रशस्त होता ही रहता है। इसी क्रम में इसी धरती के वातावरण में स्थित विरल वस्तुएं किरण-विकिरण से ऊर्मित होकर ठोस होने के क्रम में उल्कापात भी कहा जाता है। ऊर्मित का तात्पर्य ऊर्जित और परिमित होने से है। ऐसी स्थिति में अर्थात् विरल वस्तु ठोस होने के लिए प्रवर्तित होने के क्रम में आकर्षण-विकर्षण का संयोग होना स्वाभाविक है क्योंकि सभी विरल वस्तुएं अणुओं के रूप में होना पाया जाता है। इसलिए ऐसा संयोग अनिवार्य रहता ही है। इसी पद्धति में आकर्षण-विकर्षण का दबाव में आयी हुई अणु समूह ज्वलनशील अथवा प्रकाशपुंज के रूप में दिखना भी देखा गया है। यह सभी क्रिया-प्रक्रियाएँ, व्यवस्था के अर्थ में ही

सहअस्तित्व में हैं। मानव कुल जागृत होने के उपरांत ही विधिवत व्यवस्था क्रम में अपने को प्रमाणित करना बन पाता है।

इस अध्याय में जितने भी विश्लेषण हुए वह सब मानव जागृति के अर्थ में ही केन्द्रित है। यह स्पष्ट रूप से सहअस्तित्व सहज सभी अवस्थाएँ एक दूसरे की पूरक होना आवर्तनशीलता है। हर अवस्थाओं में पूरकता व्यवस्था को अक्षुण्ण बनाए रखने के अर्थ में ही हर पद परंपराएं निरन्तर वैभवित होना सहज है। इसी विधि में मानव भी एक परंपरा है। वह अपनी परंपरा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए स्वयं स्फूर्त व्यवस्था को अपनाना ही होगा। स्वयं स्फूर्त व्यवस्था का ही दूसरा नामकरण जागृत परंपरा है। जागृति हर मानव की वांछित अपेक्षा है। जागृति, पूरकता और सहअस्तित्व विधि से ही सम्पन्न हो पाता है।

इस धरती में सम्पूर्ण अवस्थाएँ अपने-अपने में और एक दूसरे के परस्परता में पूरकता विधि से पंरपरा सम्पन्न होना पाया जाता है। मूलत: परमाणु अंश एक दूसरे का पूरक होने के प्रमाण को निश्चित आचरण सम्पन्न परमाणु के रूप में स्पष्ट कर दिया है। पूरकता स्वयं आवर्तनशीलता का तात्पर्य है। यही परस्पर पुष्टि भी है। मूलत: परस्पर पुष्ट होना ही सम्पूर्ण अस्तित्व में और जागृति में समानता इंगित होता है। अस्तित्व में परस्पर पुष्टि का साक्ष्य परमाणु अंशों से आरंभ होकर परमाणु के रूप में व्यवस्था की पुष्टि हो गई। परस्पर परमाणुओं, अणु और अणुरचित रचनाओं के रूप में व्यवस्था को प्रकाशित कर दिया है। यह तथ्य सभी जागृत मानव को विदित होता है। जो जागृत नहीं है वे सब जागृत होने के लिए इच्छुक हैं। इस प्रकार सच्चाई के प्रति हर व्यक्ति जागृत होना चाहता है। सच्चाईयाँ सबको स्वीकृत रहता ही है। यही सच्चाई की महिमा भी है। सच्चाई अपने परम रूप में सहअस्तित्व ही है। अस्तित्व में व्यवस्था के रूप में एक दूसरे के पूरक रूप में आवर्तनशीलता प्रमाणित होती है। इसी क्रम में मानवेत्तर प्रकृति एक दूसरे के पूरक होना देखा जाता है। मानव के लिए मानवेत्तर प्रकृति पूरक होते हुए, मानव मानवेत्तर प्रकृति के साथ पूरक होने के लिए आवश्यकीय जागृति अभी भी प्रतीक्षित है। मानव अपने में व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में आवर्तनशील होना प्रमाणित होता है। यही इस आवर्तनशील अर्थशास्त्र को प्रणयन करने के क्रम में उद्देश्य है। यह उद्देश्य अस्तित्व सहज होने के कारण से सहज उद्देश्य भी कहा जा सकता है।

आवर्तनशील विधि से अंतर संगीत, बाह्य संगीत का अनुभव करना सहज है। दूसरे विधि से अन्तर समाधान-बाह्य समाधान का अनुभव किया जा सकता है। यह भी देखा गया है कि समाधान क्रम में ही सुखानुभव होना पाया जाता है। सुख का प्रमाण ही है वर्तमान में विश्वास। वर्तमान में विश्वास होने का मूल तत्व ही है वर्तमान में व्यवस्था। व्यवस्था का मूल स्वरूप ही है हर वस्तु को अथवा हर-एक को जीने देना और जीना

और वर्तमान में समृद्धि, समाधान, अभय, सहअस्तित्व का प्रमाणीकरण करना। यही जागृतिपूर्वक प्रमाणित होने वाली विधि है। यह मानव मात्र के लिए वरेण्य है। वरेण्य का तात्पर्य सर्वोपरि वर से है। वर का तात्पर्य स्वीकारा हुआ का प्रमाणीकरण और उसकी निरंतरता है। इस प्रकार आवर्तनशीलता मानव सहज स्वीकृति है ही। इसके प्रमाणीकरण और निरंतरता के लिए अनुभव मूलक विधि से प्रस्तुत अवधारणाएँ मानव के लिए उपयोगी हो सकेगा।

अध्याय - 4

आवर्तनशीलता - अनिवार्यता और उसका स्वरूप

सुदूर विगत से अब तक के आर्थिक इतिहास और परिवर्तन के सिलसिले को देखने से संग्रहवादी अर्थचेतना अथवा संग्रहवादी मानसिकता जनमानस में स्थापित हो चुका है। ऐसे विचार और ज्ञान का लोकव्यापीकरण संभव हुआ है। वर्तमान में जो कुछ भी अर्थव्यवस्था के नाम से स्वीकार किए हैं- संग्रह में, संग्रह से, संग्रह के लिए क्रियाशील होता हुआ देखने को मिलता है।

संग्रह में अर्थ का रूप मूलत: जड़ वस्तु को मान लिया गया है। जिसको अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अथवा राष्ट्रीय मुद्रा कोष का मूल पूँजी अथवा पत्र मुद्रा का अथवा उससे भिन्न अन्य धातु मुद्राओं का मूल्यांकन का मापदण्ड सुदृढ़ राष्ट्रीय कोष के आधार पर अथवा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के आधार पर निर्भर होना आज की मान्यताएँ हैं। राष्ट्रीय मुद्राकोष की मूल पूँजी को सोना रूपी धातु के रूप में पहचाना गया है, जो न्यूनतम प्रयोजनकारी उपयोगी धातु है। सोने के महत्व को अलंकार के रूप में विविध विग्रहों पर, स्थानों पर, मानवों पर अलंकृत कर नेत्रानंद का लाभ उठाया। यह क्रियाकलाप आज भी प्रचलित है। इसका दूसरा पहलू शरीर व्याधि, रोग के लिए दवाई के रूप में प्रयोग होना पहचाना गया है। इसका उपयोग एक प्रतिशत व्यक्ति में अभी तक हुआ नहीं। आयुर्वेदीय रसायन शालाओं में इसका भस्म बनाने का दावा अवश्य करते हैं। शीशियों के ऊपर 'सुवर्ण भस्म' लिखा भी रहता है। ज्यादा से ज्यादा ऐसा भस्म बनाने वाले रसायन कारखाना एक के बाद एक पैदा होता ही रहता है। इसी के साथ-साथ और कुछ दवाईयों के साथ निरा सोना भस्म के अतिरिक्त इस धातु का उपयोग उल्लेखित है। इन औषधियों के साथ संलग्न और प्रयोजित मात्रा न्यूनतम होना पाया जाता है। उससे अधिक अलंकारिक वस्तुओं के रूप में होना व किसी पूजा स्थल, गौरव स्थल, सम्मान स्थल और व्यक्तियों के देह पर देखने को मिलती है। शेष सभी स्वर्ण धातु सर्वाधिक भयभीत सुरक्षा के छाया में सुरक्षित रहना देखा गया है। भयभीत इसीलिए उल्लेखित किया गया है कि सोने को ताकने वाले हर व्यक्ति के हाथों सक्षम आयुध-औजारों का होना पाया जाता है। भयग्रस्त व्यक्ति ही इन सभी चीजों को एकत्रित करता है, उद्देश्य भी भयभीत करने के लिए ही किया गया है। ये सर्वविदित तथ्य है। सभी राष्ट्रीय कोष इस धातु-संग्रह के लिए प्रयत्न जारी रखा ही है। इसी के साथ-साथ उन-उनके तादात के आधार पर उसका प्रतीक मुद्रा जैसा चांदी, तांबा, लोहा आदि धातुओं और पत्र मुद्राओं का मापदंड होना पाया जाता है। उसी के आधार पर अर्थात् **प्रतीक मुद्राओं के आधार पर वस्तुओं का मूल्यांकन**

किया जाता है। आज ही यह प्रचलित परंपरा है। इस विधि से हर देश में हर वस्तु का राष्ट्रीय कोष और उसके तादात के आधार पर प्रतीक मुद्राओं का मूल्य, स्वीकृति मुद्रा कोष के नाम से रहा करता है।

प्रतीक मुद्राओं की आवश्यकता, उसमें भी पत्र मुद्राओं के प्रचलन की आवश्यकता तब मानव ने महसूस किया एक तरफ वस्तु, एक तरफ धातु मुद्रा का भार, इनमें किसी एक को हल्का करने के लिए मानसिकता तैयार हुई। इसी क्रम में पत्र मुद्रा का अनुबंध राष्ट्रीय मुद्रा कोष के हैसियत से निर्णय लेना आवश्यक हुआ। दूसरी ओर मनपसंद कागज का निर्माण प्रचुर रूप में संभव हो गया। मुद्रण और अलंकरण की कला, तकनीकी पर्याप्त रूप में सुलभ हुआ। इसी संयोगवश पत्र मुद्रा का प्रचलन सहज रूप में प्रचलित हुई। इतना ही नहीं जनमानस में स्वीकार हुआ। इन सभी संयोग और कार्य सम्पन्न होने के उपरांत भी वांछित सर्वशुभ इससे समीचीन नहीं हुई। इसके विपरीत इसमें इससे पहले से अधिक लुभावना और शोषण दोनों एक साथ वृद्धि हुई। लुभावना पहला यह रहा लाखों रुपया जेब में रखकर जा सकते हैं और उससे संबंधित वस्तुओं को निरापद रूप से ला सकते हैं। दूसरा लुभावना यह बनी करोड़ों, अरबों रुपयों को एक छोटे से पेटी में रख सकते हैं। यथा समय अपने रुचि के अनुसार वस्तुओं को लाकर उपयोग कर सकते हैं। तीसरा लुभावना सभी वस्तुएं मुद्रा में बिका करते हैं और वस्तुएं मुद्रा के अधीन हैं। किंवा **मानव का श्रम भी मुद्रा के अधीन है। इसीलिए मुद्रा का संग्रहण मानव के हैसियत को पहचानने का प्रधान आधार बन गया।** इसी के साथ-साथ मुद्रा से बल और बलवान को, विद्या और विद्वान को, ज्ञान और ज्ञानवान को, पद और पदवान को, रूप और रूपवान को खरीदा जा सका है। इन पाँच में से ज्ञान और ज्ञानवान को खरीदने के, बेचने के संबंध में अभी भी वाद-विवाद के रूप में हिचकिचाते हैं। यथास्थिति के अनुसार निरीक्षण-परीक्षण करने पर पता लगता है इन पाँचों का व्यापार और व्यापार संस्थान बन चुका है। योग और ज्ञान, सम्मोहन कार्यक्रमों के आधार पर ज्ञान व्यापार को देखा जाता है। बाकी चारों के पक्ष में जो व्यापार कार्य है वह सर्वविदित है। व्यापार का मूल उद्देश्य लाभोन्माद ही है। कम देना-ज्यादा लेना मुद्रा के रूप में एवं वस्तु के रूप में भी। कुछ भी नहीं देना, आश्वासनों के आधार पर ही वस्तु और मुद्रा को एकत्रित कर लेना ही दुष्टतम ज्ञान व्यापार है। संसार को बुद्धू बनाने की कला इसमें समाहित रहती है।

उक्त पाँच प्रकार के व्यापार के अतिरिक्त वस्तु व्यापार मानव करता ही है। इसमें भी मुद्रा ही माध्यम है। मुद्रा में, मुद्रा से, मुद्रा के लिए वस्तुएं बिकता हुआ हर व्यक्ति देखता ही है। इसीलिए मुद्रा के प्रति सर्वाधिक लगाव हर मानव में देखने में आया। वस्तु व्यापार में मुख्य प्रक्रिया उत्पादक से वस्तु को खरीद करना, और उपभोक्ता को प्रस्तुत करना। हर व्यापारी अपने ढंग से अधिक लाभ के लिए प्रयत्नशील होना देखा गया है। ऐसे प्रयत्न क्रम में जो सफल हो जाते हैं वे अपने को धन्य मानते हैं जो असफल हो जाते हैं वे अपना

सिर कूटा करते हैं यह सर्वविदित है। वस्तु व्यापार के अनन्तर सातवां प्रक्रिया है, प्रौद्योगिकी व्यापार। उद्योगों में अनेक विद्वान और तकनीकी सम्पन्न व्यक्तियों को वेतन भोगियों के रूप में खरीदने की व्यवस्था बनी रहती है। हर उद्योगों में स्थापना दिवस से ही लाभाकांक्षा समाया रहता है। इसका आंकड़ा क्रम से एक-एक व्यक्ति की कार्यकलापों से उत्पादन, उसका तादात, गुणवत्ता, उसका प्रचलित पत्र-मुद्रा मूल्य, उस पर आयी संपूर्ण प्रकार का व्यय और उसका ब्याज पूर्णतया वापस होने के उपरांत लाभ का बिन्दु आरंभ होता है। वह कितने बड़े संख्या में यथा 1, 2, 3, 4, .., 10, 20, ... क्रम से हजारों, लाखों, करोड़ों संख्या में अंत विहीन होने के क्रम में सफलता, सामान्य सफलता, अल्प सफलता और असफलता मानी जाती है। ये सभी प्रौद्योगिकी संसार से सम्बद्ध हर व्यक्ति को विदित है।

सम्पूर्ण उत्पादनों को कृषि, पशुपालन और उद्योग के रूप में समझा गया है। कृषि व पशुपालन संबंधी उत्पादन कार्य भी लाभाकांक्षा में आना सहज रहा। बाकी सभी व्यापार कार्य में प्रसक्त हुए। फलत: कृषि भी लाभाकांक्षा से पीड़ित होता रहा। चाहे कृषि उपज हो अथवा प्रौद्योगिकी उपज हो, लाभाकांक्षा बनी ही है। इतना ही नहीं **शिक्षा और ज्ञान संबंधी आदान-प्रदान भी व्यापारोन्मुखी लाभाकांक्षी संग्रहवादी होने के कारण से भोगोन्मादी समाजशास्त्र का प्रचलन हुआ।** इस क्रम में मानव परंपरा भोगवादी-संग्रहवादी सभ्यता के लिए विवश होता गया। उल्लेखनीय तथ्य यही रहा **संग्रह का तृप्ति बिन्दु किसी भी देश काल में किसी एक व्यक्ति को भी नहीं मिल पाया।** इसका प्रभाव सभी वर्ग पर प्रभावित है। इसमें कुछ लोग ऐसे सोचते हैं कि अध्यात्मवादी विचार और भौतिकवादी विचार इन्हीं में कहीं संतुलन बिन्दु की आवश्यकता है। अध्यात्मवादी विचार के अनुसार अन्तरमुखी विचार होना पाया जाता है और भौतिकवादी विधि से बर्हिमुखी विचार होता है। बर्हिमुखी विचार से विज्ञान का अनुसंधान होता है और अर्न्तमुखी विचार से विज्ञान का विकास नहीं होता है। स्वान्त: सुख या शांति की संभावना बनती है इन कारणों के साथ-साथ मानव को कुछ देर अन्तर्मुखी, कुछ देर बहिर्मुखी रहना चाहिए ऐसी मान्यता पर कुछ लोग अपना मत व्यक्त करते हैं। इस विधि में हर वर्ग, हर तबका, हर जाति, हर संस्कृति यथास्थिति को बनाए रखने के लिए संभावनाओं पर बल देते हैं। इसका प्रबोधन अधिकांश रूप में विज्ञान व्यक्ति जो अपने संग्रह कार्य में जुटे रहते हैं। विद्यार्थियों को इन बातों के लिए प्रेरणा देते हैं। फलस्वरूप ऐसे प्रयासों का निरर्थक होना भावी हो जाता है। इसी क्रम में यह भी बताया करते हैं, ऐसा बैठो, ऐसा सोचो, ऐसा ध्यान करों, किसी एक भंगिमा-मुद्रा में कुछ देर बैठे रहने का अभ्यास होने पर किसी को ध्यान होना-करना मान लेते हैं। यह भी इसके साथ-साथ देखा गया है इन सभी प्रकार की साधनाएं अंतरतुष्टि का साधन मानी जाती है। **जबकि अंतरतुष्टि जागृति के रूप में ही होना पाया जाता है।**

जागृति मूलतः, आमूलतः अथवा सम्पूर्णतया सहज होना, प्रमाणित होना तब संभव हुआ जब अथवा जिस क्षण में जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में पारंगत और प्रमाणित हुए। सम्पूर्ण अस्तित्व ही सहअस्तित्व के रूप में प्रमाणित होना तभी संभव हो पाया जब जीवन में जागृति संभव हुई। जीवन का स्वरूप रचना, शक्ति, बल, लक्ष्य के संबंध में विभिन्न स्थली में स्पष्ट किया जा चुका है। **जीवन रचना, गठनपूर्ण परमाणु (चैतन्य इकाई) सभी मानव में समान है, इसी प्रकार जीवन शक्ति और बल अक्षय होने के कारण समान और जीवन का लक्ष्य केवल जागृति होने के कारण सभी नस्ल, रंग, जाति, वर्ग, मत, संप्रदाय, भाषा, देश में रहने वाले सभी मानव में समान होना पाया जाता है।** यही जीवन ज्ञान पर आधारित विचार है और शास्त्रों को प्रणयन और अवलोकन करने का आधार है। जीवन ज्ञान हर व्यक्ति में, से, के लिए; हर देश काल में संभव है। इसी आधार पर आवर्तनशील अर्थशास्त्र का प्रणयन भी संभव हुआ। अस्तु, जीवन ज्ञान और अस्तित्व दर्शन का सहज प्रमाण में ही आवर्तनशीलता को अर्थशास्त्र विधा में पहचानना सहज है। इस तारतम्य में यह भी ध्यान में रहना आवश्यक है कि आवर्तनशील अर्थशास्त्र और व्यवस्था को साक्षात्कार करने के लिए, दूसरे भाषा में देखने के लिए जीवन ज्ञान अथवा जीवन विद्या, अस्तित्व दर्शन में पारंगत होना, मानवीयता पूर्ण आचरण में प्रमाणित रहना आवश्यक है। इसी आधार पर जागृति प्रमाणित हो पाती है और जागृतिपूर्वक मानव आवर्तनशील अर्थशास्त्र में जीना हो पाता है। इसके लिए यह भी बल मिलता है इस प्रकार आवश्यकता भी समीचीन हो गया कि अभी तक किये गये ईंधन स्रोत, उत्पादन कार्य विधि और विपुल उत्पादन और लाभ और संग्रह का लक्ष्य आधार अब पुनर्विचार के योग्य हो चुके हैं। इसके मूल में लक्ष्य विहीन संग्रह ही राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा के आधार पर आधारित मूल्यांकन विधियों को पुनः परिशीलन करने का कार्य इस अर्थशास्त्र के इस अध्याय में एक प्रधान बिन्दु है। इसके परिशीलन क्रम में स्वाभाविक ही सहअस्तित्व विधिपूर्वक ईंधन योजना स्रोत, संप्राप्ति विधाओं में भी परिशीलन और विकल्पों को पहचानने की आवश्यकता बलवती होगी।

इस धरती के मानव जहाँ तक उत्पादन कार्यों में पारंगत हो पाये हैं इसके लिए जो यंत्र संपादन विधि हस्तगत किये हैं यह कोई अर्थशास्त्र में व्यतिरेक पद्धति नहीं हैं। सहअस्तित्ववादी अर्थव्यवस्था विरोधी उत्पादन केवल युद्ध सामग्री का निर्माण है। युद्ध मानसिकता सहअस्तित्व विरोधी, मानवीयतापूर्ण मानसिकता के विरोधी होने के कारण, युद्ध सामग्री संबंधी सभी प्रकार के साधन अमानवीय होना स्पष्ट है। दूसरे विधि से युद्ध मानसिकता-युद्धाभ्यास किसी संस्कृति-सभ्यता का आधार नहीं हो पाया। जबकि भक्ति और विरक्ति संबंधी मानसिकता से श्रेष्ठ संस्कृति की कल्पना करते हुये भी संभव नहीं हो पाया। संग्रह विधि से श्रेष्ठ संस्कृति की संभावना बनती ही नहीं है। मानव जाति अभी तक इतना ही कर पाया है। अर्थशास्त्र का सूझ-बूझ संग्रह और युद्ध को बरकरार रखने के आधार पर ही विकसित हुई है। इन तथ्यों के आधार

पर भी विचार करने पर पता लगता है लाभोन्मादी अर्थव्यवस्था के स्थान पर विकल्प की आवश्यकता है। अस्तु आवर्तनशील अर्थव्यवस्था को समझना एक स्वाभाविक एवं आवश्यकीय अध्ययन है।

आवर्तनशीलता हर मानव में समाहित जीवन शक्तियों का परावर्तन और प्रत्यावर्तन में जीवन बलों का पुष्टि कार्य है। मानव में तन-मन-धन के रूप में अर्थ की परिभाषा विद्यमान है इसे हर मानव में देखना संभव है। इसमें पारंगत बनाना शैक्षणिक विधि से सहज सुलभ है फलत: लोकव्यापीकरण होता है। प्रकारान्तर से भ्रमित मानव परावर्तन-प्रत्यावर्तन क्रिया करता ही है। इनमें निहित उद्देश्य ही संतुष्टि और असंतुष्टि का कारण बनता **है। भोग मानसिकता से जितने भी परावर्तन क्रिया करता है प्रत्यावर्तन में उसका असंतुष्टि बना ही रहती है। जैसे-पाँचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा कोई भी भोग-प्रक्रिया को सम्पादित करें, उसकी निरंतरता नहीं हो पाती। इसीलिए भोग में असंतुष्टि का होना भी पाया जाता है।** जबकि हर मानव हर समय संतुष्ट रहना चाहता है। संतुष्टि का इच्छुक हर व्यक्ति है। हर व्यक्ति के सम्मुख यह विचारणीय बिन्दु है कि क्या व्यक्ति सदा भोगवादी विधि से संतुष्ट रह सकता है? क्या असंतुष्ट रहना जरूरी है? क्या संतुष्टि की निरंतरता हो पाती है? क्या असंतुष्टि ही असंतुष्टि हाथ लगती है? इन प्रश्नों को परीशीलन करने के पहले हमें इन बातों का ध्यान रहना आवश्यक है कि मैं (मानव) जीवन और शरीर का संयुक्त रूप हूं। जीवन नित्य है, शरीर जीवन के लिए सामयिक घटना है। इस प्रकार शरीर यात्रा तक मानव कहलाता हूँ और शरीर यात्रा के अनन्तर जीवन रहता ही है। जीवन, शरीर यात्रा समय में अपने जागृति को प्रमाणित करना उद्देश्य है। इस आधार पर और मानसिकता से उक्त बिन्दुओं का विश्लेषण करना संभव है।

पहला विचारणीय पक्ष सदा-सदा मानव तृप्त हो सकता है? इसका उत्तर हाँ हो सकता है। इसके बाद इससे लगा पुन: प्रश्न होता है कैसे हो सकता है? इसके उत्तर में साफ-साफ मानव ही विश्लेषण की वस्तु के रूप में दिखाई पड़ती है। **हर मानव में संतुष्टि स्वीकृत है, असंतुष्टि स्वीकृत नहीं हैं।** संतुष्टि पाने के लिए ही मानव परंपरा में अर्पित रहता है भले ही वह छोटा सा समुदाय क्यों न हो? अभी तक मानव कुल विविध समुदाय में ही गण्य हो पाया है। इसीलिए हर मानव जन्म से मानव कुल में ही अर्थात् समुदाय में अर्पित होना दृष्टव्य है। मानव शरीर ही जीवन जागृति को व्यक्त करने योग्य रचना है। ऐसी शरीर रचना की परंपरा स्थापित है। हर समुदाय में भी ऐसे ही शरीर रचना होने के व्यवस्था बन चुकी है। मानव शरीर रचना में मुख्य अंग मेधस रचना ही है। मेधस रचना के साथ ही कार्य तंत्रणा और ज्ञान तंत्रणा विधि निहित है, जीवन ही इन तंत्रणा विधियों से ज्ञान तंत्रणा पूर्वक कर्म तंत्रणा सम्पन्न करता है। ज्ञान तंत्रणा को हम ज्ञानेन्द्रियों में पहचान सकते हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ शब्द स्पर्श, रूप, रस, गंधात्मक साक्ष्यों सहित प्रमाणित है। इन्हीं क्रियाओं के साथ ही मानव को जीवंत रहना प्रमाणित होता है। इन क्रियाओं के लुप्त होने के उपरान्त

ही मरणासन्न या मृत हो जाता है। इसमें मुख्य तथ्य यही है मेधस से जीवन में जुड़ी हुई ज्ञान तंत्रणा जब तक बनी रहती है अथवा सम्पादित हो पाती है तब तक शरीर यात्रा की सार्थकता मूल्यांकित होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन शक्तियाँ ज्ञान तंत्रणा पूर्वक परावर्तित होते हैं। यही परावर्तन व्यवहार, उत्पादन और उपयोग क्रियाकलापों में साक्षित होता है। जीवन शक्तियों का परावर्तन क्रियाकलापों में से उत्पादन कार्य भी एक आयाम होना पाया जाता है। उत्पादन कार्य में मानसिकतापूर्वक श्रम नियोजन होना स्पष्ट है। श्रम नियोजन का आधारभूत वस्तुएं प्राकृतिक ऐश्वर्य ही है। इस प्रकार प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन का स्वरूप ही उत्पादन का स्वरूप प्रदान करता है। सभी उत्पादन में उपयोगिता मूल्य और कला मूल्य मूल्यांकित हो पाता है। ऐसी श्रम का मूल स्रोत जीवन शक्ति ही होना स्पष्ट हो चुकी है। ऐसे जीवन शक्तियां प्रत्यावर्तन में समृद्धि का अनुभव करना ही उद्देश्य है। हर मानव समृद्ध होना चाहता है। इसकी संभावना सहज है। इसका स्वरूप स्वायत्त मानव और परिवार मानव के रूप में क्रियान्वयन होता है। फलस्वरूप परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन करना सहज हो जाता है और परिवार के सभी सदस्य समाधान के साथ समृद्धि का अनुभव करते हैं। **समाधान समृद्धि संतुष्टि का स्रोत है और इसकी निरंतरता होती है।**

मानव में किंवा स्वयं में इन तथ्यों को देखा गया है कि समृद्धि का स्वरूप आवश्यकता से अधिक उपयोगितावादी वस्तुओं का संप्राप्ति और उसका उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता से स्पष्ट होता है। यह भी स्पष्ट है कि संपूर्ण मूल्यांकन आशा, विचार, इच्छा सहित ही न्याय रूप में हो जाता **है। श्रम मूलक वस्तु, वस्तुमूलक उपयोगिता, उपयोगितामूलक मूल्यांकन यह वस्तुओं का मूल्य निर्धारण करने की विधि है** और आशा, विचार, इच्छा के अनुसार शरीर संचालन फलतः उत्पादन कार्य में श्रम नियोजन होना स्पष्ट है। यद्यपि जीवन शक्तियों को आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रमाण के रूप में आँकलित होना पाया जाता है। ज्ञानेन्द्रियों के सह सान्निध्य में ही कर्मेन्द्रियों का क्रियाकलाप सार्थक रूप में कार्य करता हुआ देखने को मिलता है। इससे यह भी पता लगता है कि ज्ञानेन्द्रियाँ ही कर्मेन्द्रियों को नियंत्रित करता है। यही हस्तलाघव का तात्पर्य है। हस्तलाघव का फलन कार्य व्यवहार, विन्यासों में चित्रित हो पाती है जैसे एक लेखक लिखता हुआ, एक शिल्पकार शिल्पिभित्ति को निर्मित करता हुआ, चित्रकार चित्र भित्ति को स्पष्ट करता हुआ, एक उत्पादक अपने उत्पादन कार्य को संपादित करता हुए, एक कृषक कृषि कार्य को सम्पादित करता हुआ देखने को मिलता है। इसी क्रम में मानव को गृह कार्य, अतिथि, आगन्तुक आदि स्थितियों में देखने को मिलता है। यह कार्य हर स्थिति मानव परंपरा में से यही प्रमाणित होता है कि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही कर्मेन्द्रियों को जीवन नियंत्रित करता हुआ कार्यकुशलता निपुणता और पाण्डित्य सभ्यता को प्रमाणित कर देता है अथवा प्रमाणित करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। जागृति पूर्वक प्रमाणित होना

सहज है। जागृति पर्यन्त प्रयत्नशील रहना स्वाभाविक है। इस प्रकार श्रम नियोजन शिष्टता, सभ्यता संबंधी संपूर्ण विन्यास ज्ञानेन्द्रियों-कर्मेन्द्रियों का संयुक्त कार्यकलापों में देखा जाता है। ज्ञानेन्द्रियों का नियंत्रण आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रमाण जैसी अक्षय शक्तियों से सम्पन्न होता हुआ देखने को मिलता है। आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा व प्रमाण शक्तियाँ क्रम से चयन, विश्लेषण, चित्रण, संकल्प और प्रामाणिकताएं सम्प्रेषित हो पाता है यही परावर्तन में क्रम से आस्वादन, तुलन, चिंतन, बोध और अनुभव प्रत्यावर्तन के रूप में कार्य करता हुआ स्पष्ट होता है। यह क्रियाकलाप को **आत्मा अनुभव के रूप में, बुद्धि बोध के रूप में, चित्त चिंतन के रूप में, वृत्ति तुलन के रूप में और मन आस्वादन के रूप में जीवन सहज अक्षय बल को प्रमाणित करते हैं। यही मानव में होने वाला मौलिक क्रियाकलाप है।** इसी के आधार पर आवश्यकता और संभावना, संपूर्ण शास्त्र को प्रमाणित करने के लिए हर व्यक्ति समीचीन है। इसके लिए नित्य स्रोत सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व अनुभूत प्रमाण ही है।

अस्तित्व में ही यह धरती अविभाज्य है। इस धरती में ही मानव अविभाज्य है। संपूर्ण मानव का उत्पादन कार्य स्रोत इस धरती में ही विद्यमान पदार्थ, प्राण, जीवावस्था सहज वस्तुएं इन्हीं में कहीं श्रम नियोजन करने का अवसर हर व्यक्ति में, से, के लिए रहता ही है। यह धरती अपने वातावरण सहित सम्पूर्ण होना पाया जाता है क्योंकि यह धरती सभी ओर से विभिन्न प्रकार के विरल वस्तुओं से घिरा रहना पाया जाता है। जहाँ तक ऐसे विरल वस्तुएं इस धरती के सभी ओर घिरे हुए है वहाँ तक इस धरती का वातावरण होना पाया जाता है। यही इस धरती का वातावरण रेखा भी है। प्रमुख रूप से श्रम कार्य का क्षेत्र इस धरती पर ही होना पाया जाता है।

समृद्धि सामान्य आकांक्षा और महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तुओं के आधार पर हो पाता है न कि मुद्रा के आधार पर। इसका दूसरा भी गवाही यही है सामान्य आकांक्षा और महत्वाकांक्षा के वस्तुओं से ही मानव का तृप्ति अथवा सर्वमानव का तृप्ति है न कि मुद्रा से। मुद्रा कितना भी होने पर वस्तु न होने की स्थिति बन सकती है। इसलिए **मुद्रा से तृप्ति की संप्रभुता देखने को नहीं मिलती है। जबकि वस्तु हो, स्वस्थ मानव, तृप्ति पाने की संप्रभुता प्रमाणित हो जाती है।** संप्रभुता का तात्पर्य निरंतर निश्चित फल प्रयोजन से है। ऐसा निश्चित फल प्रयोजन तृप्ति ही है। सभी शास्त्रों की चरितार्थता स्वस्थ मानव के अर्थ में ही अपेक्षा बन पाती है। संभावनाएं समीचीन रहता ही है। यह साधारण रूप में देखने को मिलता है कि जिनके पास वस्तुएं उपजती हैं, उन उन वस्तुओं का तृप्ति मानव को मिलता ही आया है।

तृप्ति का स्रोत संभावना और स्थिति को और प्रकार से देखा गया है कि प्रत्येक मानव में जीवन शक्तियाँ अक्षय है, क्योंकि आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रमाण को कितना भी परावर्तित करें और परावर्तन

के लिए यथावत् शक्तियाँ उर्मित रहता हुआ देखने को मिलता है। उर्मित रहने का तात्पर्य उदयशील रहने से है। उदयशीलता का तात्पर्य निरंतर उदितोदित रहने से है। उदितोदित का तात्पर्य नित्य वर्तमानता से है। इस प्रकार प्रत्येक मानव में जीवन शक्तियाँ और बल नित्य वर्तमान होना स्वाभाविक है। शरीर यात्रा के पहले भी जीवन यथावत् रहता ही है। शरीर यात्रा के अनन्तर जीवन रहता ही है। जीवन सहज रचना कार्य के संबंध में अध्ययन सहज विधि से स्पष्ट की जा चुकी है। यह सूत्र अस्तित्व न तो घटती न तो बढ़ती- न ही पुरानी होती है। यह अस्तित्व सहज अनन्त वस्तुओं में व्यापकता सहज सहअस्तित्व के आधार पर स्पष्ट है। अस्तित्व में चारों अवस्थाएं नियति सहज अभिव्यक्ति है। नियति सहज कृति का तात्पर्य उपयोगिता एवं पूरकता और विकास जागृति सहज अभिव्यक्ति से है। सहअस्तित्व स्वयं क्रमबद्ध प्रणाली होने के कारण सम्पूर्ण घटना और प्रयोजन पूर्व घटना-प्रयोजन से जुड़ी हुई होते हैं। फलस्वरूप मूल रूप से गुंथी हुई, जुड़ी हुई, स्पष्ट हो जाते हैं। मूल रूप सहअस्तित्व ही है। जो नित्य वर्तमान ही है। वर्तमान त्रिकालाबाध सत्य है। परम सत्य रूपी वर्तमान में प्रमाणित होना ही सत्य का तात्पर्य है। वर्तमान स्वयं सहअस्तित्व और उसकी निरंतरता होना देखने को मिलता है। मानव भी अस्तित्व में अविभाज्य वस्तु होते हुए दृष्टापद प्रतिष्ठावश जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने की संपदा सम्पन्न है। इसलिए सत्य में राहत पाना मानव का अभीप्सा बनी हुई है। अभीप्सा का तात्पर्य अभ्युदय पूर्ण इच्छा से है। अभ्युदय का तात्पर्य सर्वतोमुखी समाधान व उसकी निरंतरता से है। सर्वतोमुखी समाधान सहअस्तित्व सहज वर्तमान में मानव का दृष्टा, कर्ता व भोक्ता पद को प्रमाणित करने से हैं। इस प्रकार मानव अपने दृष्टा पद प्रतिष्ठा सहज रूप से ही मूल्यांकन कार्य को संपादित कर तृप्ति को पाता है। ऐसे मूल्यांकन के मूल में प्रत्येक उत्पादित वस्तु के उपयोगिता, सदुपयोगिता प्रयोजन का आधार और उसका मूल्यांकन संभव हो जाता है। इस प्रकार हम मानव परंपरा रूपी (गति-प्रयोजन विहिन) राष्ट्रीय कोष, अन्तर्राष्ट्रीय कोष, सुवर्ण द्रव्य मूलक मूल्यांकन से मुक्त होकर श्रम नियोजन, श्रम मूल्य और मूल्यांकन विनिमय प्रणाली पूर्णतया संभव है और समीचीन है। जागृतिपूर्वक उपयोगिता, सदुपयोगिता क्रम को मूल्यांकन के लिए पहचानना सहज है। इसी तारतम्य में तृप्ति और उसकी निरंतरता सर्वसुलभ होता है।

जीवन सहज कार्यकलाप के अनुसार आशा, विचार, इच्छा के साथ-साथ प्रिय-हित-लाभ रूपी नजरिया क्रियाशील रहना भ्रमित मानव का प्रकाशन है भ्रमित अवस्था की यही लम्बाई - चौड़ाई है। इन्हीं के विस्तार वांङ्मय के साथ-साथ भय और प्रलोभन का पुट देते हुए वांङ्मयों का निर्माण होता रहा है। ऐसे वांङ्मयों को (भय और प्रलोभनवादी परिकथाओं-कथाओं) बड़े सम्मान से लोक श्रवण स्वीकारता हुआ देखा गया। इससे स्पष्ट हो जाता है भय और प्रलोभन से चलकर आस्था तक पहुँचना जागृति क्रम में एक मंजिल मान लिया गया। आस्थावाद से ही अधिकाधिक आश्वासन, भय से राहत पाने का आश्वासन बना रहा है। कड़ी

के रूप में इन सबको सीढ़ी-दर-सीढ़ी में होना देखा गया है। यह अंतिम मंजिल नहीं है यह भी देखा गया है। इसी क्रम में अर्थशास्त्र को भी विचार रूप में लाभ को एक आवश्यकीय तत्व मानते हुए ही प्रस्तुत किया गया।

संग्रह का तृप्ति बिन्दु न होने के कारण सबको संग्रह सुलभ होना संभव नहीं हुआ। क्योंकि यह धरती सीमित है। वस्तुएं दो प्रकार से बंट गई। वस्तु और प्रतीक वस्तु, और प्रतीक वस्तु का प्रतीक वस्तु। जैसे सम्पूर्ण वस्तुओं का एक प्रतीक वस्तु सोना, सोना का प्रतीक वस्तु पत्र मुद्रा देखा गया।

सामान्य आकांक्षा, महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तुएं सर्वमानव के लिए आवश्यक है। यह सर्वविदित है। व्यापार विधि से इन वस्तुओं का आदान-प्रदान होता हुआ भी देखने में आता है। ऐसे लेन-देन के माध्यम में पत्र मुद्रा आदि मुद्राओं को देखा जाता है। यही प्रधानत: संग्रह का भी आधार हुआ। पूँजी के रूप में और स्पष्टतया प्रौद्योगिकी उत्पादन का मूल पूँजी प्रतीक मुद्रा मान लिया गया। प्रतीक मुद्रा का ही सर्वाधिक संग्रह होना देखा गया। इस प्रकार उत्पादन के मूल में भी मूल पूँजी को प्रतीक मुद्रा के रूप में स्वीकारा और कृत्रिम अभाव करने के लिए इसकी परमावश्यकता को मान लिया गया। जबकि कृत्रिम अभाव स्वयं लोगों का छलावा होना स्पष्ट है। और उत्पादन के मूल में पूँजी निवेश को प्रतीक मुद्रा ही प्रधान मान लिया। जबकि हर उद्योग उत्पादन, श्रम नियोजन पूर्वक ही सम्पन्न होना देखा गया। इस बात को देखते हुए भी पैसे के लिए मानव श्रम नियोजन करता है। श्रमिकों को पैसे से खरीदा जा सकता है। इसी मान्यता के आधार पर मुद्रा को मूल में रखकर श्रम को अथवा प्रतिभा को खरीदने-बेचने के कार्यक्रम को मानव करता रहा। इन क्रियाकलापों के आधार पर धन का अध्ययन को स्थापित कर लिया। पूँजी निवेश के मूल में लाभ एक अनिवार्य स्थिति बनी। उस अनिवार्यता को बनाए रखने के लिए ब्याज प्रथा और लाभ प्रथा को स्वीकारते हुए विविध प्रणालियों को निर्मित कर लिया। इससे अर्थात् लाभ से हर व्यक्ति सम्मोहित तो हुए। किन्तु लाभ सबको मिलने से रहा। यही आंकलन में मिला। प्रतीक मुद्रा का अथवा प्रतीक मूल्यों का अवमूल्यन क्रम में लाभ का आकार-प्रकार स्थापित हो चुका है जिसको शेयर बाजार कहा जाता है। व्यापार बाज़ार पूँजीनिवेश को मूल ध्रुव मानते हुए, कितना लाभ होना है, उसे पहले से ही स्वीकार करते हुए मूल पूँजी की स्थिति से लाभ पूँजी सहित अंश पूँजियों को व्याख्यायित करने पर क्रम से अंश पूँजी बढ़ता हुआ दिखाई देता है। यह दिखना संस्था के रूप में स्पष्ट है। उसी के साथ-साथ धन को वस्तु में परिणित कराने की स्थिति में हम यह पाते हैं कि किसी वस्तु को 50 वर्ष पूर्व की तुलना में किसी का 100 गुना, किसी का 50 गुना, 'प्रतीक मूल्य' बढ़ा हुआ दिखता है। यथा 50 वर्ष पहले एक बोरी सीमेंट का मूल्य 1 रुपए रहा। आज 100 रुपए हो गई। 50 वर्ष पहले सोना 40 रुपए था, अभी 4000 रुपए हो गया। 50 वर्ष पूर्व 1

रुपए में 5 किलो चावल मिलता था। अभी 5 रुपए में एक किलो चावल से 35 रुपए में एक किलो चावल मिलता है। चावल, सोना और सीमेंट उस समय भी उतना ही मूल्य वाहक रहा है, जितना आज है। परिवर्तन केवल प्रतीक मुद्रा का रहा है। इस प्रकार द्रव्य गुण अपने में, आदिकाल में भी वही रहे हैं। आधुनिक काल में भी उतना ही है। यंत्रगति बदलते आई, परिवर्तन होते आए, मानव का ध्यान गति की ओर गया तो दूरश्रवण, दूरदर्शन और दूरगम्य जैसे गतियाँ मानव को निकट लाने का कार्य किया। इसी क्रम में एक दूसरे की मानसिकता को भी पहचानने की आवश्यकता निर्मित होता रहा। विविध प्रकार से प्रक्रिया जारी रहा। अंततोगत्वा निरंतर बदलने वाली प्रतीक मुद्रा अथवा पत्र मुद्रा को पूँजी के रूप में स्वीकारने के लिए बाध्य हुए। **जो कुछ भी परिवर्तन होता है, मूल्यों में, प्रतीक मुद्रा का ही परिवर्तन होता है। वस्तुओं का कोई भी परिवर्तन नहीं होता।** सारे यंत्र पदार्थावस्था की वस्तुओं से बन पाई।

जब से प्राणावस्था के अन्न-वनस्पति-फल-फूल जल्दी और बड़ा, ज्यादा होने के उद्देश्यों से जितना भी प्रयत्न किया गया, जिसको बहुत गंभीर और जटिल प्रक्रिया मानते हुए उसे संरक्षित कर रखते हुए, इतना ही नहीं उसे विशेषज्ञता के खाते में अंकित करते हुए, उसके सम्मान से प्रलोभित होते हुए जो कुछ भी कर पाए। उन सबके परिणाम में यही देखने को मिला एक गुलाब के फूल को बड़ा बनाने के क्रम में बड़े से बड़े बनाते गए। उसके लिए अधिकाधिक हवा और पानी ग्रहण करने की प्रवृत्ति दिए। फलस्वरूप गुलाब का फूल बड़ा हो गया। उसके गुणवत्ता को नापा गया तब यह पता चला वह अपने स्वरूप में रहते समय जितना भी छोटा या बड़ा था, भौगोलिक और जलवायु के अनुसार, देखी गई थी, उसी के समान उसका गुणवत्ता मिला। इसी प्रकार अंगूर में, टमाटर में, फूलों में और अनाजों में देखा गया। सभी अनाज में पुष्टि तत्व, तैल तत्व प्रधान होना पाया जाता है। इसे कितना भी बड़ा बनाया जाए, मूल पुष्टि तत्व और तेल तत्व उतना का उतना ही रह जाता है। कुछ अनाजों में यह देखा गया है पहले जो सुगंध बनी रहती थी इन प्रक्रियाओं के साथ गुजरने से अपने-आप सुगंध समाप्त हो गई। इन सभी घटनाओं को ध्यान में रखने पर पता चलता है, हम क्रम से भ्रम के बाद भ्रम की ओर चल दिए। यही घटना कृषि के साथ भी हुई। **भ्रम का तात्पर्य ही होता है - अधिमूल्यन, अवमूल्यन, निर्मूल्यन। जैसे मानव को समझने के क्रम में निर्मूल्यन, प्रतीक मुद्राओं का अधिमूल्यन, उपयोगिता मूल्य का अवमूल्यन किया गया** एवम् मानव को समझने के मूल में जीव कोटि का मानते हुए झेल लिया। यही निर्मूल्यन होने के फलस्वरूप भ्रम के शिकंजे में कसता ही गया। नैसर्गिकता का अवमूल्यन - मानवेत्तर जीव कोटि, वन, खनिज के मूल्यों का नासमझी वश दुरुपयोग किया। वन और खनिज के दुरुपयोगिता क्रम में धरती का अवमूल्यन हुआ। मानव जब वैज्ञानिक युग में आया तब से धरती में निहित वन-खनिज संसार पर आक्रमण तेजी से बढ़ाया। उन-उन समय में इसको उपलब्धियाँ मान ली गई। इसके परिणाम में आज की स्थिति में परिवर्तन पाते हैं अथवा दुष्परिणामों को

पाते हैं। दूषित हवा, पानी, धरती, अनाज, धरती का वातावरण और दूषित इरादे। लाभोन्मादी, भोगान्मादी, कामोन्मादी शिक्षा तंत्र, प्रचार तंत्र और गति माध्यम का दुरुपयोग, ये सब साक्ष्य भ्रमित मानव मानस के उपक्रम के रूप में हम पाते हैं।

भ्रम-निर्भ्रमता को आंकलित करना, जीव चेतना एवं मानव चेतना के आधार पर है। जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान में पारंगत होने के उपरांत ही तुलनात्मक समझ संभव होना पाया गया। इन्हीं आधारों पर आवर्तनशील अर्थशास्त्र और व्यवस्था की भी संभावना स्पष्ट हुई है। यही रौशनी सहअस्तित्ववादी विश्व दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है। जीवन ज्ञान सम्पन्न होने के उपरान्त ही सहअस्तित्व में अविभाज्य मानव सहअस्तित्व को जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना संभव हुआ है। पहचानने, निर्वाह करने के क्रम में ही मानवीयतापूर्ण आचरण प्रमाणित होना पाया जाता है। **मानवीयता पूर्ण आचरण मूलतः तीनों आयाम में (मूल्य, चरित्र, नैतिकता) सम्पन्न होता है। मानवीयता पूर्ण चरित्र को स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य-व्यवहार के रूप में देखा गया है। चरित्र के साथ मूल्यों का स्वरुप को संबंधों की पहचान, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य का निर्वाह, मूल्यांकन पूर्वक उभयतृप्ति के रुप में होना देखा गया है। नैतिकता को तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा के रूप में देखा गया है। चरित्र के रूप में समाज मानव, मूल्य के रूप में परिवार मानव और नैतिकता के रूप में व्यवस्था मानव होना प्रमाणित है। यह मानवत्व रूपी मानव चेतना पूर्वक सार्थक होना पाया जाता है।**

मानवत्व मानव का 'स्वत्व' होने के आधार पर व्यवस्था का स्वरूप परिकल्पना जागृत मानव में बना ही रहा है। प्रकारान्तर से प्रयोग होता ही रहा है। मानवत्व मानव में स्वीकृत अथवा स्वीकार होने योग्य वस्तु है। यह सर्वसुलभ होने के लिए आवश्यकीय ज्ञान, विवेक, विज्ञान शिक्षा की आवश्यकता है। सहअस्तित्व ही शिक्षा का मूल सूत्र है जिसके समर्थन में विकास, जागृति, उपयोगिता-पूरकता और उदात्तीकरण क्रियाकलापों का अध्ययन है। इसी विधि से पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था ये सब परस्पर पूरक होना स्पष्ट होता है। फलस्वरूप मानव का व्यवस्था विधि से सम्पन्नता पूर्वक वैभवित होना दिखायी पड़ता है। प्राणावस्था के सम्पूर्ण ऐश्वर्य नियंत्रण प्रणाली से व्यवस्था को प्रमाणित करना सहज हैं। यह बीज-वृक्ष विधि से स्पष्ट हो जाती है। पदार्थावस्था नियम विधि से व्यवस्था के रूप में प्रमाणित है यह परिणामानुषंगी विधि से स्पष्ट है। जबकि मानव संस्कारानुषंगीय जागृति सहज विधि से परिवार रूपी व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी की आवश्यकता एवं संभावना समीचीन है। मुख्यतः मानव जीवन जागृति सहज समझ प्रधान संस्कारानुषंगीय अभिव्यक्ति होना, संपूर्ण जीव वंशानुषंगीय अभिव्यक्ति होना, संपूर्ण प्राणावस्था बीजानुषंगीय अभिव्यक्ति होना, सम्पूर्ण पदार्थावस्था परिणामानुषंगीय व्यवस्था होना देखा गया

है। अतएव सभी अवस्थाएँ अपने-अपने में मौलिक होना स्वाभाविक है। मानव भी अपने मौलिकता को पहचानने-निर्वाह करने, जानने-मानने के क्रम में झेलता ही रहा। भले ही भ्रमपूर्वक क्यों न हो भ्रम की पीड़ा से पीड़ित होने के उपरांत निर्भ्रमता समीचीन है ही। अतएव निर्भ्रमता प्रमाणों में से एक प्रमाण आवर्तनशील अर्थशास्त्र और व्यवस्था भी है। इसे हृदयंगम करने के उपरांत हर मानव परिवार में समृद्धि पूर्वक जीना सहज है। इस विधि से जागृति क्रम में मानव चलकर जागृति और उसकी निरंतरता के पद में संरक्षित, नियंत्रित हो पाना स्पष्ट हुआ। इससे मानव पूरकता विधि से मानवेत्तर प्रकृति के साथ सहअस्तित्वशील होने का स्वरूप अध्ययनगम्य होता है।

सम्पूर्ण अस्तित्व ही पूरक विधि में सहअस्तित्वशील होना स्वयं में आवर्तनशीलता का आधार है। मानव के हर क्रियाकलाप प्रधानत: दो विधा में पूरकता क्रम में स्वयं में आवर्तनशीलता को प्रमाणित करता है। जिसमें से पहली विधा नैसर्गिकता और धरती के साथ प्राकृतिक नियमों को जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना परमावश्यक तत्व है। प्राकृतिक नियम अपने आप में पदार्थ, प्राण, जीव, ज्ञानावस्था एक दूसरे के लिए पूरक होने के स्वरूप में देखने को मिलता है।

पदार्थावस्था, प्राणावस्था के लिए पूरक होना सर्वविदित तथ्य है। धरती पर ही सभी अन्न-वनस्पति-वन सम्पदा का होना देखा है। यही प्राणावस्था की वस्तुएं हैं और ये सभी निष्प्राणित होने के उपरांत इसी धरती में समाता हुआ हर मानव देखता है। इसके साथ-साथ और तथ्य भी जुड़े हुए होते हैं। यह धरती अपने-आप में अथक प्रयास और प्रक्रिया सहित ऋतु संतुलन व्यवस्था को प्राप्त किया। तभी इस धरती पर वर्षा, ठंडी, गर्मी की निश्चित दिनों का, मासों का गणना मानव में प्रचलित रूप में ज्ञातव्य है। ऋतु संतुलन की महिमा ही है इस धरती में सम्पूर्ण अन्न, वनस्पतियाँ स्वयं स्फूर्त विधि से अलंकृत, सुशोभित हुआ करते हैं। जैसे शिशिर ऋतु में पत्ते पक जाना, वसंत ऋतु में पल्लवित होना, कुसुमित होना, वर्षा ऋतु में अपने में परिपुष्ट होना देखा जाता है। इस विधि से वन सम्पदाएँ समृद्ध होता हुआ देखने को मिलता है। धरती पर अन्न का उपज मानव के संयोग से सम्पन्न हो पाता हैं। मानव, अपने लिए उपयुक्त आहार वस्तुओं को अनेकों प्रयासों के उपरांत पहचान पाया और उसकी उपज विधियों में अथवा उत्पादन विधियों में पारंगत होता आया है और परंपरा में कृषि कार्य की आवश्यकता, प्रवृत्ति, पारंगत होने की परम्परा परिवार, गाँवों में स्थापित होती हुई देखने को मिली। आज तमाम शहर, नगर का उदय होने के उपरांत भी कृषि कार्यों का सर्वाधिक धारक वाहकता गाँव में ही देखा जाता है। इस विधा में अन्नोपज में विपुलता को पाने के लिए वैज्ञानिक प्रवृत्तियाँ भी अनेक प्रयोगों को कर गुजरा। अन्न वनस्पतियाँ अपने आप में नैसर्गिक-प्राकृतिक विधि से जो गुणों को स्थापित कर ली थीं, वही गुण कितने भी मोटा, बड़ा, ऊँचा बनाने की क्रियाओं-स्थितियों

को देखा गया। जैसे गेहूँ को मोटा दाना बना दिया। पतले दाने के स्थान पर दाना मोटा तो हो गया, एक-एक दाने में जो पुष्टि तत्व नैसर्गिक विधि से प्राप्त था वह उतना ही मात्रा में विद्यमान रहता हुआ देखने को मिला। इन प्रयासों में विभिन्न प्रजाति के पराग सींचनों, रासायनिक उर्वरक विधियों, कृत्रिम पराग विधियों को भी अपनाकर स्तुषी संस्कार को स्थापित किये।

वैज्ञानिक युग के पहले जितने भी प्रजाति की अन्नोपज स्थापित हुई वे सब नैसर्गिक, भौगोलिक और जलवायु के आधार पर विकसित हुई। जितने भी अन्न प्रजातियों को मानव ने पहचाना है उन-उन भौगोलिक परिस्थितियों में अपने मूल रूप में प्रकृति प्रदत्त रहा। जैसे - जंगली धान को अनेक प्रयोगों सहित ही घरौआ बना पाया। आज भी मोटे-पतले जंगली धान प्रचलित हैं। इसी प्रकार अन्य अनाज तैलीय रूप को पहचानने के उपरान्त ही परिवार और ग्राम परंपरा में लाकर अभ्यस्त हो चुके थे। जो प्राकृतिक रूप में धान का पौधा मिलता है उसका संग्रहण, सहज न होने की स्थिति को झेलता हुआ आदमी उसे संग्रहण योग्य बनाने के कार्य को जैसे ही बाली में एक-एक दाना परिपक्व होने की स्थिति में बाली से गिर जाना देखा जाता है। जबकि घरेलू परंपरा में जो शामिल हो चुके हैं ये सब बाली को सम्पूर्ण दाना पकते तक, सुखते तक रहना, कोई प्रजाति का धान पकते तक रहना देखा जाता है। इसी क्रम में कृषक अपने ज्ञान-विवेक का प्रयोग करते तक सभी प्रकार के अनाजों का परंपरा बनाये रखा। यह परंपरा एक दूसरे को अंतरित होने में किसी भी प्रकार की दुराव-छुपाव नहीं रहा। इसका लोकव्यापीकरण करने में वंचना (इंटेलेक्चुअल प्रापर्टी राइट - बौद्धिक सम्पदा कानून) की प्रवृत्ति नहीं रही। आदि काल से भी जो ज्ञान-विवेक तकनीकि को सदा-सदा ही परंपरा में स्थापित करने का प्रयास बना ही रहा। यही लोकव्यापीकरण प्रवृत्ति को प्रमाणित करता है।

अभी जैसे ही अत्याधुनिक और जटिल विधियों से बीज-गुणन प्रक्रिया सम्पन्न करने का एकाधिकार कार्यक्रम के अनुसार कानून बनाने तक की प्रवृत्ति विज्ञान मानस में देखने को मिली। **इस प्रवृत्ति का अनुमोदन पृथ्वी सम्मेलन, विश्व बैंक के साथ में सम्पन्न होता गया किंवा इनके अनुमोदन सहित प्रस्तावित होता गया।** या इनको विदित ही है। इसमें दो विपदायें हैं। ये विपदायें सर्वाधिक कृषि कार्य करने वालों के लिये है। यदि हम तादात के रूप में गेहूँ, धान, मोटे फल और ज्यादा फल के आग्रह में आना अधिकांश लोगों में संभव है। इसी स्त्रोत को देखते हुए बीज-गुणन कार्यों में विशेषाधिकार, उनकी कानूनी सुरक्षा, उनके लिये प्रयास किसी देश की स्वीकृति, किसी देश की अस्वीकृति इस वर्तमान में देखा गया। यह वर्तमान 20वीं शताब्दी के दसवें दशक का मध्य भाग है। बीज जो विशेष प्रयासों, प्रक्रियों से प्राप्त किया रहता है वह प्राकृतिक रूप में हर देश, धरती में पुनः उत्पादन के उपरान्त पहले बीज के समान नहीं हो पाता। इसका कारण वह

जटिलतम संस्कार हर देश, धरती में सुलभ नहीं रहता है। इसमें यह भी देखा गया बीज गुणन का मूल रूप में जो बीज था और आरोपित संस्कार था वह बीज में स्वीकृत न रहकर क्षणिक रूप में कार्य करने योग्य कृत्रिम संस्कार से बनी हुई थी। फलस्वरूप हर बीजों में समायी हुई स्तुषी (अंकुर का मूल रूप) जिस पुष्टि का संग्रहण विधि उसी स्तुषी में संकेतित रहता ही है। इसी के साथ रचना स्वरूप का भी संकेत रहना पाया जाता है। इसका साक्ष्य ही है एक धान का बीज नैसर्गिकता को पाकर अर्थात् धरती, जल, वायु और उष्मा को पाकर धरती के उर्वरकता के अनुपात में पौधे की रचना, एक बीज अनेक बीज होने की प्रवृत्ति को प्रमाणित कर देता है। उसमें मूलत: पुष्टि, संग्रहण कार्य की समानता ही बीजों में स्थिरता का आधार होना देखा जाता है। पुष्टि संग्रहण का मूल तत्व रसायन द्रव्य है जो संयोग विधि से रसायन द्रव्य अपने आप से उत्कर्षित होना पाया जाता है। रसायन द्रव्य का मूल वस्तु भौतिक पदार्थ है। भौतिक पदार्थों का मूल रूप परमाणु और उसमें निहित परमाणु अंशों के संख्याओं में प्रभेद ही है। अस्तु, रसायन द्रव्यों का संगीतीकरण अर्थात् एक रसायनिक अणु से दूसरे रसायनिक अणु का नैसर्गिक और पूरक प्रवृत्ति विधि से एक दूसरे के साथ जुड़कर कार्य करता हुआ देखने को मिलता है। हर पौधे के साथ जल, वायु, उष्मा और धरती संतुलन क्रियाकलाप में धरती में अर्थात् भौतिक द्रव्य में रसायनिक क्रियाकलाप की प्रवृत्ति बनती ही रहती है और हर पौधा पेड़ मिट्टी में मिलकर धरती की उर्वरकता और उसकी समृद्धि कार्य में पूरक होना भी दृष्टव्य है। इस विधि से हर बीजों में पुष्टि संग्रहण और रचना विधि संकेत सम्पन्न स्तुषी का संस्कार तभी स्थिर हो पाता है। अर्थात् परम्परा के रूप में हो पाता है कि आरोपित पुष्टि संग्रहण न होकर, स्वीकृत पुष्टि संग्रहण संकेत युक्त होना अति आवश्यक है।

अभी तक जितने भी प्रकार से जटिल-जटिलतम प्रणालियों से जितने भी बीजगुणन कार्य वैज्ञानिक अनुसंधानशालाओं में सम्पन्न किया गया है, यह इस धरती पर प्रचलित परंपरा के रूप में स्थापित होना संभव नहीं हो पायी। इसमें व्यापारिक अनुशंसा और प्रवृत्ति ही इसका मूल कारण होना पाया जाता है।

अनुसंधान और लोकव्यापीकरण का संबंध अविभाज्य है। इस सहज धारा में विरोध, अवरोध और प्रतिरोधता ही विशेषज्ञता और बौद्धिक सम्पदा संरक्षण का गवाही है। उसके मूल तत्व में जीवन, उसकी प्रवृत्ति, उसी तृप्ति संबंध में प्रत्येक व्यक्ति अपने में मूल्यांकित करना एक आवश्यकता है। कम से कम विशेषज्ञता से आभूषित होने वाले, सम्पन्न होने वाले, घोषणा करने वाले व्यक्ति को यह मूल्यांकन अनिवार्य हैं। इसके अभाव में विशेषज्ञता व्यापार की वेदी में कत्लेआम होना ही है। क्योंकि व्यापार कम देकर ज्यादा लेने के पक्ष में है। यही लाभ प्रवृत्ति और संग्रह का द्योतक है। जीवन शक्तियों को किसी भी घर में, घाट में, तिजोरी में, बैंक में, अधिकोषों में, राज कोषों में, विश्वकोषों में जमा नहीं किया जा सकता। इसी तथ्य के आधार पर

बौद्धिक आरक्षण की निरर्थकता समझ में आती है। क्योंकि जीवन शक्ति और बल सतत ही अक्षय है। यह नित्य स्थिति और गति सम्पन्न है। स्थिति में बल, गति में शक्ति अथवा गति को शक्ति कहा जाता है। स्थिति गति का अविभाज्यता जीवन में चरितार्थ होना पाया जाता है। ऐसी शक्तियों को, बलों को जीवन ही जीवन से, जीवन के लिए जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना संभव है। यह हर मानव में निहित वर्तमान क्रियाकलाप है।

मानव में मानवीयता ही मौलिकता, श्रेष्ठ जिन्दगी अथवा बेहतरीन जिन्दगी का सूत्र है। मानव में मानवीयता पूर्ण परंपरा ही सर्वतोमुखी समाधान और व्यवस्था के रूप में होता है। इसी क्रम में आवर्तनशील अर्थव्यवस्था एक आयाम है जो स्वयं समाधान और उसकी निरंतरता का स्वरूप है। आवर्तनशील व्यवस्था में मानव सहज अपेक्षा रूपी अथवा समाधानपूर्ण अपेक्षा सहित समृद्धि सभी परिवार के लिए सुलभ हो जाता है। इसकी निरंतरता के लिए नैसर्गिकता के संतुलन को बनाए रखना अत्यावश्यक विधि बन जाती है। मानव अपने मौलिकता के साथ ही अर्थात् मानवीयता के साथ ही व्यवस्था को पहचानना-निर्वाह करना सहज हो जाता है। इसका कारण स्वयं व्यवस्था के रूप में जीना एक आवश्यकता बनती है। इसे सफल बनाने के लिए व्यवस्था के रूप में जीने देना अनिवार्यता होना पाया जाता है। इसी क्रम में मानव जीने देने और जीने का कार्यप्रणाली सफल होता है। यही विधि सर्वसुख प्रणाली को प्रमाणित करता है। सर्वसुख मानव मात्र से है। सर्वमानव सुखी रहना चाहता ही है। इसे सफल बनाना ही, चरितार्थ रूप देना ही सर्वसुखवाद है। यही सर्वतोमुखी समाधान, अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का ताना-बाना है। इसके मूल में प्रत्येक मानव में जागृति ही प्रधान सूत्र है। जागृति सहज सूत्र स्वयं में जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सहज स्वरूप है।

पूरकता स्वयं उद्देश्यपूर्ण अर्थात् जागृति सहज विधि से सहअस्तित्व को प्रकाशित करना ही है। यह प्रत्येक प्राण कोशाओं से रचित रचनाओं में अथवा अणु रचित रचनाओं में दृष्टव्य है। इसका प्रमाण यही है कि हर अणु में अनेक परमाणु और हरेक रचना में अनेकानेक अणुओं का होना और इसका निरंतर विद्यमानता का होना। इसी विधि से इस धरती में निहित सम्पूर्ण वस्तुओं को देखा जाना स्पष्ट है। देखने वाली इकाई मानव ही होना स्पष्ट है। भ्रमित मानव में देखने का गुण प्रिय, हित, लाभ; जागृत मानव में न्याय, धर्म और सत्य पूर्ण विधाओं के रूप में कार्यरत होना अध्ययन गम्य है। प्रिय, हित, लाभात्मक दृष्टियाँ क्रम से इंद्रिय सापेक्ष, शरीर (स्वास्थ्य) सापेक्ष, वस्तु (संग्रह) सापेक्ष होना सर्वविदित है। न्याय मूल्य मूलक व्यवहार प्रमाण, धर्म सार्वभौम व्यवस्था प्रमाण और सत्य जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान के रूप में आवर्तनशील है। प्रमाण सदा ही पूर्णता और उसकी निरंतरता उस के फलन रूप में तृप्ति

और उसकी निरंतरता होना पाया जाता है। **तृप्ति के स्रोत में न्याय, धर्म, सत्य को और अतृप्ति के स्रोत में प्रिय, हित, लाभ को देखा जा सकता है अथवा मिलता है।**

तृप्ति-अतृप्ति का कार्य रूप मानव में ही अध्ययन गम्य है। इसमें मुख्य बिन्दु हर व्यक्ति में तृप्ति का कार्य स्रोत होना ही जागृति है। ऐसा स्रोत जानने-मानने के रूप में देखा गया। यह हर व्यक्ति में निहित है। मूलत: जीवन सहज कार्य है। शरीर के द्वारा मानव परंपरा में यह सत्यापित हो पाता है। यह मुख्य बिन्दु पर मानव का जागृति ही सार्वभौमता का आधार है। सार्वभौमता मानव के अवगाहन, अवगाहन का तात्पर्य सर्वतोमुखी विधाओं में प्रमाणित करने की अर्हता से है। यद्यपि अवगाहन का परिभाषा आवश्यकता अनिवार्यता के रूप में ग्रहण किया हुआ को ध्वनित करता है। ऐसा आवश्यकता अनिवार्यता पूर्वक ग्रहण किया हुआ स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन योग्य होते ही हैं। क्योंकि जो जिसके पास रहता है, वह उसको बांटता है। मानव में होने वाले बंटन कार्य का तात्पर्य अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन ही है। इन्हीं तीनों प्रक्रियाओं में तन, मन (जीवन शक्तियाँ) और धन का सहज प्रवाह देखने को मिलता है। इस विधि से यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव अपने सार्वभौमता को स्थापित करने का अधिकार स्वत्व, स्वतंत्रता, न्याय, धर्म, सत्यपूर्ण विधियों से होना स्पष्ट हुआ। यह अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन और सहअस्तित्व विधि से ही प्रमाणित होना पाया जाता है। यही समग्रतावादी विश्व दृष्टिकोण और समग्र व्यवस्थावादी कार्यप्रणाली को जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने का सहज स्वरूप है। यही जागृति का द्योतक है। ऐसी जागृति मानव परंपरा में ही स्थापित, जीवित रहने की आवश्यकता और इसकी नित्य संभावना समीचीन रहता ही है। क्योंकि मानव अस्तित्व में होना सहज है। अस्तित्व नित्य वर्तमान होना सहज है।

मानव में जागृति की प्यास, आवश्यकता प्रकारांतर से बनी ही है। यह प्रकारांतर से हर मानव में निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण से इंगित होता है। शिशु काल से ही न्याय की अपेक्षा, सही कार्य-व्यवहार करने की इच्छा, सत्य बोलने की प्रवृत्तियाँ देखने को मिलता है। परंपरा का ही दमखम है अथवा गरिमा है कि इन आशाओं को सार्थक बना देना। अभी तक सापेक्षता विधियों से चलकर न तो शैशवकालीन आशयों पर ध्यान ही दे पाया। इन आशयों को देखने के विपरीत अबोध और अज्ञानी के आधारों पर सापेक्षवादी निर्णयों अथवा रहस्यमयी आस्थाओं को लादने वाली कार्यप्रणाली को अपनाया। फलस्वरूप जागृति की आवश्यकता बलवती अवश्य हुई। यही इसका उपकार माना जा सकता है। प्रमाण के रूप में कोई उपलब्धियाँ न होकर रिक्तता अथवा कुंठा ग्रसित हो गया। मानव कुल में द्रोह, विद्रोह, शोषण और युद्ध के रूप में पनपता हुआ इस कुंठा को देखा गया। ऐसी कुण्ठा ग्रसित परम्परा के चलते इस धरती का

शक्ल ही समृद्धि के स्थान पर वन-खनिज की रिक्तता के रूप में देखा गया। यह केवल सापेक्षता विधि को अपनाने का फल ही है। यह भी मानव कुल को बोध हो गया होगा कि सापेक्षता विधि से कोई शुभ होने वाला नहीं है। सापेक्षता विधि से बड़े-छोटे ज्यादा-कम की दूरियाँ बढ़ते ही जाना है। यह मानव कुल के लिए स्वीकार्य नहीं है। इसीलिए संतुष्टि बिन्दु की आवश्यकता है। इसका संतुष्टि बिन्दु सर्वमानव में एक ही स्वरूप में विद्यमान है। यह है जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना। यह ज्ञान, विज्ञान, विवेकपूर्ण विधि से अभिव्यक्ति संप्रेषणा प्रकाशन सूत्र बन जाते हैं जिससे मानव सहज रूप में किए जाने वाले कायिक, वाचिक, मानसिक; कृत, कारित, अनुमोदित और जागृत, स्वप्न, सुसुप्ति में भी समानता स्पष्ट हो जाती है।

जीवन सोता नहीं है, अपितु सतत कार्यरत रहता ही है। जीवन सहज अक्षय कार्य में से आंशिक कार्य ही शरीर के द्वारा प्रमाणित हो पाता है। जीवन जागृत होने के उपरांत भी जागृत, स्वप्न, सुसुप्ति अवस्थाओं में शरीर को जीवंत बनाए रखते हुए शरीर के दृष्टा पद में कार्यरत रहता ही है। इसमें जागृति के अनंतर शरीर को जीवन समझने वाला भ्रम दूर होता है। शरीर व्यवहार और अस्तित्व में दृष्टा पद स्वयं अनुभव सहज वैभव है। दृष्टा पद ही पूर्णता का द्योतक यही परंपरा से प्रमाण है। पूर्णता के अनंतर उसकी निरंतरता होना ही प्रमाण, महिमा है। इस विधि से मानव परंपरा जागृत होने के उपरांत ही मानव कुल में भाग लेने वाले हर जीवन का अपेक्षा जो शैशवकाल में ही सर्वेक्षित हो पाता है, उसका भरपाई नित्य वैभव के रूप में सम्पन्न होना पाया जाता है। इससे हम यह निष्कर्ष को पाते हैं कि शिशुकालीन अपेक्षाएँ, शोध-कार्य प्रवृत्ति, कार्यप्रणाली के शोध के लिए प्रेरक होता है। दूसरा, मानव कुल में व्याप्त कुण्ठा यथा द्रोह-विद्रोह-शोषण और युद्ध साथ ही द्वेष से ग्रसित परिवार, समुदाय अपने त्रासदी जागृति महिमावश भ्रम मुक्ति और शोध प्रवृत्ति की आवश्यकता को इंगित करता है। तीसरा, यह धरती का शक्ल सूरत ही बदल जाना, पर्यावरण में प्रदूषण अपने पराकाष्ठा तक पहुँचना पुन: प्रचलित सूझबूझ के स्थान पर (जिससे यह घटनाएँ हुईं) विकल्पात्मक सूझबूझ के शोध की आवश्यकता को स्पष्ट करता है।

अभी तक आर्थिक कार्यक्रमों को सभी समुदाय परंपराएँ झेलते हुए सदियों-युगों को बिताया है। प्रधानत: आर्थिक कार्यक्रम के आधार पर ही प्रदूषण और द्रोह-विद्रोह-शोषण-युद्ध स्थापित होते हुए आया है। इसके साथ अर्थात् आर्थिक मजबूती और कमजोरी (ज्यादा-कम) के आधार पर नस्ल, रंग, संप्रदायों का भी पुट लगाकर जिसको संस्कृति का नाम देते हुए परंपराएँ आर्थिक रूप में ऊंचाई को पाने की होड़ में ही चलता आया। इसी में वर्ग संघर्ष की अनिवार्यता को स्वीकारना हुआ। फलस्वरूप विभिन्न समुदायों ने अपने-अपने ढंग से विशेषकर युद्ध के आधार पर ही राज्य का नाम देने में बाध्य हुए। इस धरती में अधिकांश संख्या में मानव आर्थिक मजबूतियों पर संस्कृति को पहचानने की कोशिश की। इसी बीच एक सभ्यता को

भी पहचान लिया। संस्कृतियाँ जो आर्थिक आधार पर बनती आईं खाना, कपड़ा, नाच, गाना, विवाह आदि घटनाओं के तरीके के रूप में उपभोक्तावादी मानी गई। सभ्यता को विलासिता के आधार पर पहचाना गया। युद्धाभिलाषा से बनी हुई सौंपी गई कार्य विधाओं को, अधिकारों को निर्वाह करना। इन्हीं के तर्ज पर चलने वाले आदमी को भी सभ्य व्यक्ति माना गया। फलस्वरूप ऐसी सभ्यता संस्कृति पर आधारित साहित्य-कला पूर्णतया भय और प्रलोभन पर आधारित रहा। और भय को प्रदर्शित करने के लिए अपराधिक वर्णन प्रधान रहा। प्रलोभन के लिए श्रृंगार और कामुकता का वर्णन रहा है। ऐसी समुदाय परंपरा और देशों में जो ईश्वरवाद उदय हुआ, वह भी युद्ध विधा को स्वीकारा। आस्था केन्द्रों को निर्मित किया। अंततोगत्वा युद्ध प्रभावी-युद्धगामी मानसिकता से बनी संस्कृतियाँ यथावत् बनी रहीं। इसी बीच कुछ देशों में अध्यात्मवाद का बोलबाला हुआ। अध्यात्मवादी विधा में भी आस्थाएँ स्थापित हुईं। व्यक्तिगत उपासना कल्याण स्वान्त: सुख और स्वर्ग के आधार पर साधना क्रियाकलाप के उपदेशों की भरमार होती रही। आस्थाओं में भीगी हुई मानसिकताएँ अधिकांश रूप में युद्ध को नकारता रहा। द्रोह-विद्रोह-शोषण को अपराधी कार्य मानता रहा। ऐसे मानसिकता के लोग सदा ही बर्बरता से अर्थात् आक्रमण से, आक्रमणकारी रूख से दूर रहने की कोशिश करते रहे। फिर भी युद्ध घटना को नकार नहीं पाया। उसे एक भावी मानकर ही चलना पड़ा। इसमें संस्कृतियाँ विशेषकर आस्था, उपासना और अभ्यासपरक रही है। इनकी सभ्यताएँ आस्था और सेवा के आधार पर जन्मते आया। यह भी शनै:-शनै: वस्तु और वस्तुओं के विपुलता की ओर दिशागामी रहे। आस्थावाद भी अथवा अध्यात्मवाद भी समुदाय, श्रेष्ठता, अंतर्विरोध जैसी जकड़न में जकड़ते ही आया। ये साहित्य कला को भक्ति और विरक्ति प्रवृत्ति के आधार पर सर्जन किए। इसी भक्ति और विरक्ति में अभिभूत होने के लिए भक्ति रसोत्पादी मुद्रा, भंगिमा, भाषा, भाव, अंगहार क्रमों से संप्रेषणा विधाओं को परिकल्पित प्रदर्शित किए। यही क्रम से श्रृंगार, हास्यवादी रसों में चलकर वीर और वीभत्स विधाओं में पहुँच पाए। जो भौतिकवादी विधा से आद्यंत कला-साहित्य रहा। इस प्रकार अध्यात्मवादी चरित्र जो भक्ति और विरक्ति का छापा लेकर चली वह अपने कलाविधा में पहुँचकर यथास्थिति और व्यवहारिक प्रासंगिता अर्थात् यथास्थिति में जो व्यवहार गुजरी उसकी प्रासंगिकता को स्वीकारते हुए परिवर्तनों को स्वीकार लिए। ऐसे परिवर्तन सदा-सदा भय और प्रलोभन की ओर झुकता ही गया। भक्ति प्रदर्शन में भी भय और प्रलोभन का पुट रहा है। इस प्रकार मानव सभ्यता और संस्कृति अंततोगत्वा भय-प्रलोभन में डुबता ही रहा। विधि, व्यवस्थाएँ, भय और प्रलोभन से ही स्थापित रहा। क्योंकि सभी समुदायों, सभी देश, सभी राज्यों में भय और प्रलोभन का ही बोलबाला रहा।

प्रौद्योगिकी विधा से गुजरता हुआ आज का मानव भय-प्रलोभन के स्थान पर न्याय की आवश्यकता पर ध्यान देने योग्य हुआ। क्योंकि प्रौद्योगिकीय कार्यवाही क्रम में समृद्ध, संतुलित धरती का शक्ल बिगड़ गयी।

युद्ध संबंधी आतंक परस्पर समुदायों में पहले से ही रहा। उसी के साथ-साथ धरती और धरती के वातावरण संबंधी असंतुलन का भय और धीरे-धीरे गहराता जा रहा है। इसी के साथ-साथ जनसंख्या बहुलता, मानव चरित्र और प्रौद्योगिकी के योगफल में अनेकानेक रोग और विपदाओं का सामना करता हुआ वर्तमान में मानव कुछ प्रतिशत विद्वान, मनीषी विकल्प के पक्षधर हैं या आवश्यकता को अनुभव करते हैं। इसी बेला में विकल्प की सम्भावना समीचीन हो गया। ये तो सर्वविदित है कोई भी अनुसंधान-अध्ययन विधि पूर्वक प्रस्तुत होने पर शिक्षा संस्थाओं के माध्यम से लोकव्यापीकरण की आशा की जाती है। अध्ययनकारी विधि को इस प्रकार सोचा गया है कि तर्क संगत प्रणाली सत्य समझ में आने के विधि, संगीतीकरण की अपेक्षा अभी तक की अध्यवसायिक मन:पटल में आ चुकी है। यह भी मान्यता है सत्य है। सत्य क्या है? इसका उत्तर अभी तक शोध के गर्भ में ही निहित है। अतएव विकल्प के रूप में अस्तित्वमूलक, मानव केन्द्रित चिंतन प्रस्ताव के रूप में मानव सम्मुख प्रस्तुत हुआ है।

अर्थशास्त्र विधा में आवर्तनशीलता स्वयं में श्रम नियोजन और श्रम विनिमय प्रणाली, पद्धति, नीति है। श्रम नियोजन और श्रम विनिमय साधारणतया समझ में आने वाल तथ्य यह है कि श्रम का अपना स्वरूप जीवन शक्ति रूपी मन और तन का संयुक्त रूप में स्थिति में पाई जाती है। यह स्वाभाविक रूप में जीवन शक्ति रूपी तकनीकी अर्थात् निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य का नियोजन कार्य प्रणाली है। सम्पूर्ण निपुणता, कुशलता आशा, विचार इच्छा रूपी जीवन क्रियाकलापों का वैभव अथवा महिमा के रूप में विद्यमान रहना पाया जाता है। चित्त में से आवश्यकता के आधार पर चित्रण कार्यकलाप सहित विश्लेषण सम्मत विधि से कुशलता निपुणताएँ मन में विद्यमान रहते हैं। प्रत्येक क्रिया में उपयोगिता को स्थापित करने के लिए और सुन्दरता को स्थापित करने के लिए मूलत: चित्रण हर मानव के चित्त में उभर आना सहज है। यह तो पहले से ही हमें विदित है जागृत जीवन सहज पाँचों बल और पाँचों शक्तियाँ अक्षय रूप में कार्यरत रहते हैं। इनके नित्य कार्यरत रहने में अस्तित्व में कोई बाधक तत्व नहीं है। अपितु अस्तित्व में हर वस्तु जीवन शक्तियों के अक्षय कार्यकलाप के लिए अनुकूल रूप में ही विद्यमान रहते हैं। जैसे जागृत जीवन सहज कल्पना का अवरोधक तत्व कुछ भी नहीं है और अनुकूल तत्व सब जगह में है। अनुकूलता इस प्रकार से प्रमाणित होता है कि सभी शुभ कल्पनाएँ जागृतिपूर्वक सफल होना पाया जाता है। अजागृति पर्यन्त प्रमाणित होना संभव नहीं होता है। जैसे समृद्धि की कल्पना हर व्यक्ति में, हर परिवार में, हर समुदाय में निहित रहना पाया जाता है। यह आवश्यकता से अधिक उत्पादन कार्य से ही सफल होने की सत्यता में जागृत होने के उपरांत ही, समृद्धि सफल होता है। किसी मुद्दे में जागृति का दूसरा बिन्दु हर **मानव समृद्धि का इच्छुक है। अनुभव करना चाहता है। जबकि समृद्धि जागृत मानव परिवार में ही हो पाता है। एक परिवार समृद्ध होने के लिए एक से अधिक परिवार का समृद्ध रहना अनिवार्य है। इस क्रम में अकेले में**

समृद्ध होने की कल्पना और संग्रह विधि से अथवा संग्रह कार्यवाही से समृद्धि कल्पना दोनों भ्रम सिद्ध हुआ।

हर व्यक्ति में निपुणता, कुशलता, पांडित्य सहज धारक वाहकता संभव और समीचीन है। यह सर्ववांछा भी है। इनमें से निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य का प्रयोग और प्रमाण अकेले व्यक्ति या परिवार में नहीं होती। क्योंकि निपुणता, कुशलता, पांडित्य सम्पन्नता ओर उसका क्रियाकलाप अकेले में नहीं हो पाती और प्रमाणित नहीं होता। इसके विपरीत अकेले में प्रमाणित होने की सभी परिकल्पनाएँ भ्रम होना स्पष्ट है। इस प्रकार निपुणता, कुशलता, पांडित्य का उपार्जन एक से अधिक मानव (समुदाय) अथवा संस्थान में ही संभव होना पाया जाता है। जैसे कुछ भी स्वीकार्य योग्य संस्कारों को संस्कार ग्राही-संस्कार प्रदायी घटना के रूप में शिक्षा-शिक्षण कार्य में ग्राही-प्रदायी व्यक्तियों को अलग-अलग देखा जाता है। **इस क्रम में निपुणता, कुशलता, पांडित्य को प्रमाणित करने के लिए व्यवस्था प्रणाली जिसका स्वरूप स्वराज व्यवस्था प्रणाली है यह प्रमाणित होने के लिए 'परिवार समूह' का होना आवश्यक है।**

स्वराज्य का परिभाषा ही है स्वयं का वैभव को प्रमाणित करने का सम्पूर्ण दिशा, कोण, आयाम, काल, परिप्रेक्ष्य। वैभव का स्वरूप न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता, विनिमय सुलभता ही है। ऐसे वैभव का नित्य स्रोत मानव कुल में शिक्षा संस्कार, स्वास्थ्य संयम कार्यप्रणाली है। अस्तु, "स्वराज्य के अंगभूत विधि से ही आवर्तनशील अर्थशास्त्र का अध्ययन मानवीयतापूर्ण होना सहज है।" इतना ही नहीं अर्थात् केवल आवर्तनशील अर्थशास्त्र ही स्वराज्य का संपूर्ण सूत्र न होकर समाज शास्त्र, संविधान शास्त्र, मनोविज्ञान शास्त्र, उत्पादन कार्य शास्त्र ये सब स्वराज्य का अंगभूत होना पाया जाता है। इसी के साथ-साथ सटीक अध्ययन करने के लिए और दर्शन इन शास्त्रों की पुष्टि के लिए तर्कसंगत विचारों को पाना भी एक अनिवार्यता बना रहता है इसे प्रस्तावित किये है। न्याय और समाधानपूर्ण सहअस्तित्ववादी मानव इकाई का अध्ययन और साम्य ऊर्जा में संपृक्त प्रकृति रूपी अस्तित्व में से साम्य ऊर्जामयता को अध्यात्म, ईश्वर, परमात्मा, शून्य आदि के नामों से जानने की विधि में अनुभव अर्थात् मानव में होने वाली अनुभव और उसके प्रमाणों का अध्ययन आवश्यक है। यही तर्कसंगत विचारों का आधार भी होना पाया जाता है। जिससे उपर कहे शास्त्रों का पुष्टि होना देखा गया है। इस विचार के मूल में ही अनुभव रूपी दर्शन का महिमा देखा गया है जिसको इंगित करने के लिए, हृदयंगम करने के लिए मध्यस्थ दर्शन सहज रूप में ही मध्यस्थ सत्ता, मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ जीवन का प्रतिपादन के रूप में व्यवहार दर्शन, कर्म दर्शन, अभ्यास दर्शन और अनुभव दर्शन के रूप में समीचीन हुई अर्थात् उपलब्ध हो गई है। इस प्रकार परम सत्य को जानने-मानने के लिए दर्शन, उसे तर्कसंगत अर्थात् विज्ञान सम्मत विवेक, विवेक सम्मत विज्ञान विधि से संप्रेषित करने

के लिए विचार, सत्यमयता को तर्कसंगत विचार प्रणाली पूर्वक व्यवहार विधा में अर्थात् परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में प्रमाणित करने के क्रम में शास्त्रों का होना मानव परंपरा सहज आकांक्षा, आवश्यकता और उपलब्धियाँ हैं। इस प्रकार परम सत्य रूप में सहअस्तित्व है। अस्तित्व में मानव भी एक अविभाज्य इकाई है। इसी विधि से यह भी हम पाते हैं अस्तित्व में प्रत्येक एक अपने 'त्व' सहित व्यवस्था के रूप में होना सत्य है। इन्हीं दो (परम सत्य और सत्य) तथ्यों के आधार पर प्रत्येक एक का लक्ष्य आचरण और प्रमाण ही केवल व्यवस्था सहज आधार होना पाया जाता है। इस नजरिया से मानव मानवत्व सहित जीने की कला क्रम में, दूसरे भाषा से मानवत्व सहित प्रमाणित होने के क्रम में, सत्य को समझना परमावश्यक रहा है यही जागृति सहज प्रमाण हैं। अस्तित्व न तो रहस्य है न ही दुरुह-जटिल है। अस्तित्व को सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में हर व्यक्ति समझने योग्य है और अस्तित्व ही सहअस्तित्व होने के कारण पदार्थ, प्राण, जीव अवस्था के साथ-साथ ज्ञानावस्था में स्वयं को पहचान पाना सहज है। सहअस्तित्व में ही व्यवस्था सर्वत्र-सर्वदा वैभवित है।

मानव अपने परंपरा में व्यवस्था के रूप में जीने के लिए जागृत होना एक अनिवार्यता आवश्यकता बनी रही। परंपरा के रूप में जागृति का तात्पर्य सत्य परंपरा में प्रवाहित रहने से ही है। मानव परंपरा में सत्य प्रवाहित रहने का प्रमाण शिक्षा में परम-सत्य रूपी अस्तित्व ही सहअस्तित्व के रूप में व्याख्यायित होना और बोध अनिवार्य रहा। इसी के फलस्वरूप मानवीय संस्कार को परंपरा के रूप में वहन करना स्वाभाविक है। **मानवीय शिक्षा संस्कार की परिणति ही परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था और मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान सहज ही प्रवाहित होता है। इसीलिए शिक्षा संस्कार में सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान को परम दर्शन के रूप में, जीवन ज्ञान को परम ज्ञान के रूप में, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान को परम आचरण के रूप में वहन करना मानवीयतापूर्ण परंपरा की गरिमा और महिमा है।** महिमा का तात्पर्य समझदारी सहित जागृतिपूर्वक व्यवस्था के रूप में जीना और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करना ही है। गरिमा का तात्पर्य प्रामाणिकता और उसकी निरंतरता को बनाए रखने से है। यह भी इंगित किया जा चुका है न्याय सुलभता, विनिमय सुलभता और उत्पादन सुलभतापूर्वक ही मावीयतापूर्ण व्यवस्था को पहचाना जा सकता है। फलस्वरूप समग्र व्यवस्था में भागीदारी का सौभाग्य उदय होना पाया जाता है। यह भी स्पष्ट हो चुका है हर मानव जागृत होना चाहता है, प्रामाणिक होना चाहता है, व्यवस्था में ही जीना चाहता है। इस विधि से प्रत्येक व्यक्ति की साम्य-कामनाएँ मानव परंपरा का अथवा मानव पंरपरा सहज लक्ष्य का आधार है। अतएव मानव परंपरा में से के लिए परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था ही एकमात्र शरण है। ऐसी व्यवस्था में आवर्तनशील अर्थ व्यवस्था एक अनिवार्य आयाम है।

स्वायत्त मानव परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना सहज है। **स्वायत्त मानव का स्वरूप स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन और व्यवहार में सामाजिक और व्यवसाय में स्वावलंबन।** यह सब आवश्यकता के रूप में समीचीन रहता ही है। इसकी आपूर्ति अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान पूर्वक सम्पन्न होना पाया जाता है। फलस्वरूप परिवार मानव पद आवश्यंभावी होती है। ऐसा स्वायत्त मानव कम से कम दस संख्या में मिलकर साथ-साथ जीने की कला को जीने देकर जीने के रूप में प्रमाणित करता है। दूसरे विधि से हर परिवार जागृत मानव संबंधों को पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं, मूल्यांकन करते हैं और उभय तृप्ति पाते हैं। साथ ही परिवारगत उत्पादन-कार्य में एक दूसरे के लिए पूरक होते हैं, फलस्वरूप आवश्यकता से अधिक उत्पादन प्रमाणित होता जाता है। यही समृद्धि का आधार-सूत्र है। इस प्रकार जो दस व्यक्ति रहेंगे साथ में सभी उम्र के होंगे ही, ये सब स्वायत्ततापूर्ण, स्वयात्तशीलता के रूप में देखने को मिलता है। स्वायत्त मानव का परिवार मानव होना स्वाभाविक है। क्योंकि सहअस्तित्व में ही स्वायत्तता का प्रमाण होना स्वीकार्य रहता है। इसी क्रम और विधि से परिवार समूह, ग्राम, ग्राम समूह, क्षेत्र, मंडल, मंडल समूह, मुख्य राज्य, प्रधान राज्य और विश्व राज्य परिवार और व्यवस्था के रूप में स्वरूपित होना सहज है। इसकी आवश्यकता समीचीन है। परिवार को ही दूसरे भाषा में समाज कहा जाता है। मानव संबंध बोध विधि से ही मूल्य निर्वाह और मूल्यांकन, चरित्र और नैतिकतापूर्वक सम्पन्न होना मानव में ही देखा जाता है। इसी सत्यतावश आवर्तनशील अर्थव्यवस्था स्वाभाविक रूप में सार्थक होता है। मूल्य, चरित्र और नैतिकता क्रम में सर्वमानव वैभवित होना चाहता ही है। सफल होने में अभी तक जो अड़चन थी वह केवल व्यक्तिवादी एवं समुदाय चेतना, सामुदायिक श्रेष्ठता का भ्रम। फलस्वरूप समुदाय, वर्ग संघर्ष, प्राकृतिक देन-ईश्वरीय देन मान लेना ही रहा। अभी यह सौभाग्य समीचीन हो गया है कि मानव मानवीयता को सार्वभौम आचरण के रूप में पहचानना-निर्वाह करना, जानना और मानना सहज हो गया है। अतएव आवर्तनशील स्वरूप, कार्य और प्रयोजन को समझना और उसे प्रमाणित करना आवश्यक है ही। आवर्तनशीलता का स्वरूप मूलत: विभिन्न आयामों में, विभिन्न मूल्यों के आधार पर ही प्रयोजित होना पाया जाता है। जैसे सहअस्तित्व में जीवन मूल्य, मानव मूल्य आवर्तित होता है। प्रामाणिकता सहज विधि से जीवन मूल्य सफल होता हुआ देखा गया है। सार्वभौम व्यवस्था क्रम में मानव मूल्य सहज सार्थक होना स्पष्ट है और अखण्ड समाज में भागीदारी स्वयं समाज मूल्य यथा स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य, उपयोगिता मूल्य, कला मूल्य आवर्तनशील होना पाया जाता है। इसमें से उत्पादनपूर्वक यथा निपुणता, कुशलतापूर्ण जीवन शक्तियों को हस्त लाघव सहित (शरीर के द्वारा) प्राकृतिक ऐश्वर्य पर स्थापित करने की क्रियाकलाप को उत्पादन कार्य नाम है। यह प्रसिद्ध है। सबको विदित है। ऐसे उत्पादित वस्तुओं को दूसरे से उत्पादित किया गया वस्तु को पाने के क्रम में हस्तांतरित कर लेना अर्थात् लेन-देन

कर लेना मानव कुल में एक आवश्यकता है। यही मूलत: विनिमय के नाम से जाना जाता है। ऐसे विनिमय कार्य उत्पादन के लिए जो कुछ भी शक्तियों का नियोजन कर पाए वही वस्तुओं में उपयोगिता और कला मूल्य के रूप में पहचानने में आती है।

उपयोगिता और कला मूल्य का मूल्यांकन होना सहज है। इसी मूल्यांकन क्रिया को श्रम मूल्य का नाम दिया। उत्पादन क्रम में अनेक वस्तुएं होना पाया जाता है। यह महत्वाकांक्षा और सामान्य आकांक्षा के रूप में वर्गीकृत है। इनमें से सामान्य आकांक्षा संबंधी किसी वस्तु का उसमें भी किसी एक आहार वस्तु का मूल्यांकन सर्वप्रथम करना आवश्यक है। इस क्रिया को इस प्रकार किया जा सकता है कि जैसे गेहूँ को एक गाँव में कई परिस्थितियों में बोया जाता है। उत्पादन भी विभिन्न तादादों में होता है। उसका सामान्यीकरण उत्पादन तादातों के मध्य बिन्दु में सामान्य मूल्य रूप होना सहज है। जब एक वस्तु का उपयोगिता व कला मूल्य का मूल्यांकन हो जाता है, उसी प्रकार गाँव में उत्पादित हर वस्तु का मूल्यांकन हर स्वायत्त मानव से सम्पन्न होना स्वाभाविक है। ऐसे स्वायत्त मानव ही परिवार मानव और विश्व परिवार मानव तक अपने वर्चस्व को अथवा अपने वैभव को प्रमाणित करना संभव होने के कारण परिवार समूह, ग्राम परिवार तक एक गाँव में ही मूल्यांकन क्रिया का ध्रुवीकरण हो पाता है। फलस्वरूप ग्राम में उत्पादित वस्तुओं का विनिमय गाँव में होने में कोई अड़चन नहीं रह जाती है। परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का प्रमाण कम से कम एक गाँव से ही होना संभव है। इसीलिए परिवार मूलक विधि से ही यह सफल होना एक निश्चित विधि है। परिवार सफलता के लिए अर्थात् परिवार स्वायत्तता के लिए स्वायत्त मानव का स्वरूप, उसकी सार्वभौमता अनिवार्य है। स्वायत्त मानव का स्वरूप प्रदान करने का प्रेरक तत्व ही मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार परंपरा है। मानवीयता पूर्ण शिक्षा-संस्कार परम्परा का मूल वस्तु अथवा सम्पूर्ण वस्तु जीवन-ज्ञान, अस्तित्व दर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण ही है। आज की स्थिति में भय और आस्था दोनों प्रलोभन के चक्कर में आकर अस्वीकृत होते जा रहे हैं। प्रलोभन की आपूर्ति का स्रोत और संभावना दोनों न होने के कारण, दूसरा उसकी तृप्ति बिन्दु न होने के कारण पागलपन छा जाना आवश्यंभावी रही है। अतएव इससे मुक्ति पाने के लिए कुछ लोग इच्छा रखते हैं। अधिकांश लोग निराशा, कुण्ठा ग्रसित हो चुके हैं। ऐसी स्थिति में हर मोड़-मुद्दे में विकल्प की आवश्यकता है ही। यहाँ की प्रासंगिकता आवर्तनशील अर्थशास्त्र और कार्यक्रम से यह सारी परेशानियाँ दूर होकर स्वस्थ अर्थात् समाधानित, समृद्ध, अभय, सहअस्तित्वशील परिवार को साकार कर लेना संभव हो गया है।

परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था को कम से कम एक गाँव में प्रमाणित करना ही होगा। ग्राम परिवार का स्वरूप दस परिवार समूह सभा से निर्वाचित सदस्यों से सम्पन्न होना देख सकते हैं। ऐसा एक-एक परिवार

समूह दस-दस परिवारों से निर्वाचित एक-एक व्यक्ति, दस व्यक्तियों का सभा होना पाया जाता है। हर परिवार दस व्यक्तियों का स्वरूप में गण्य होना, यही स्वायत्त परिवार सभा के रूप में देखने को मिलना सहज है। परिवार सभा में भागीदारी निर्वाह करने वाले सभी व्यक्तियों में से निर्वाचित एक व्यक्ति उस परिवार का प्रधान होगा। इस प्रकार स्वयं स्फूर्त संरचना ग्राम परिवार सभा तक प्रमाणित होने के उपरांत उस ग्राम सभा में भागीदारी निर्वाह करने वाले दस सदस्यों में से एक सदस्य उस सभा का प्रधान निश्चित काल के लिए निश्चयन कर लेना भी सहज है। ग्राम सभा का निर्वाचन आवश्यकता पड़ने पर पुन: निर्वाचन कार्य को यथावत् किया जा सकता है। इसका विचार और सम्मति का स्वतंत्रता हर परिवार, परिवार समूह में भी रहेगा। अंततोगत्वा परिवारों की आवश्यकता के आधार पर ही पुनर्निवाचन की प्रक्रिया समीचीन रहेगा।

परिवार मूलक ग्राम स्वराज्य सभा अपने ही ग्राम के व्यक्तियों में से 5 समितियों को गठित करेगा। यह प्रधानत :- (1) न्याय-सुरक्षा करेगा अथवा न्याय सुरक्षा को संतुलित बनाए रखेगा, (2) उत्पादन-कार्यकलाप को संतुलित बनाए रखेगा, (3) विनिमय-कोष कार्यों को संतुलित बनाए रखेगा, (4) शिक्षा-संस्कार कार्य को संतुलित बनाए रखेगा और (5) स्वास्थ्य-संयम कार्यों को संतुलित बनाए रखेगा। इन्हीं कार्यकलापों के आधार पर क्रमश: (1) न्याय-सुरक्षा समिति (2) उत्पादन-कार्य समिति (3) विनिमय-कोष समिति (4) शिक्षा-संस्कार समिति और (5) स्वास्थ्य-संयम समिति नामकरण होगा। कार्य और नाम से यह सुस्पष्ट है कि इस स्वरूप के साथ मानव प्रयोजन, आवश्यकता और अनिवार्यता को अनुभव कर सकता है। इसी क्रम में विश्व परिवार सभा तक 5-5 समितियों का गठन होना सहज है। और हर समिति हर स्तरीय समिति एक दूसरे के साथ संचार और अनुप्राणन संबंध को बनाए रखेंगे। इसमें से विनिमय कोष समिति के द्वारा विनिमय कार्यों को गाँव में और एक-दूसरे गाँव के साथ सार्थक होगी। गाँव में ग्राम सभा ही वस्तु मूल्यों का मूल्यांकन, उसका ध्रुवीकरण क्रियाकलापों की विधि पर निर्णय लेगा।

अध्याय - 5

उत्पादन और मूल्य

उत्पादन की परिभाषा : समृद्धि के अर्थ में प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम पूर्वक स्थापित उपयोगिता एवं कला मूल्य ही उत्पादन है।

मानव परंपरा में केवल वस्तु मूल्यों के साथ ही जीना संभव नहीं है। जबकि भ्रमवश सर्वाधिक लोग वस्तुओं के साथ ही जीकर सुखी होने का प्रयास कर रहे हैं, किए हैं किन्तु सुखी होने का साक्ष्य मिलता नहीं है। सुखी होने की अभिलाषा हर व्यक्ति में समीचीन है अथवा हर व्यक्ति में बनी हुई है। सुख का स्वरूप मानवीयतापूर्ण आचरण है। मानवीयतापूर्ण आचरण में मूल्य, चरित्र और नैतिकता आवर्तनशीलता और उसका संतुलन ही तृप्ति और सुख है। मूल्यों का स्वरूप जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य और वस्तु मूल्य के रूप में है।

इन सभी मूल्यों के चरितार्थता के प्रमाण में समाज लक्ष्य दिखाई पड़ता है। मानव अखण्ड समाज के रूप में चरितार्थ होना ही सार्वभौम लक्ष्य है। तभी समाधान, समृद्धि, अभय और सहअस्तित्व रूपी साम्य लक्ष्य सर्वसुलभ होने की संभावना बनती है। इन लक्ष्यों में से सहअस्तित्व, अस्तित्व सहज लक्ष्य के रूप में है। अभय, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य निर्वाह सहज उपलब्धि के रूप में अखण्ड समाज वर्तमान होना समीचीन है। समृद्धि, पूरकता और उदात्तीकरण क्रियाकलाप सहित वस्तु मूल्यों का सदुपयोग-सुरक्षा के रूप में होना देखा जाता है। समाधान को मानव मूल्य और जीवन मूल्य के चरितार्थ रूप में होना पाया जाता है। यही दूसरे विधि से देखने पर प्रामाणिकता पूर्वक सहअस्तित्व का निर्वाह होता है। फलस्वरूप जीवन मूल्य का अनुभव होता है। अखण्ड समाज में परिवार मानव से विश्व परिवार मानव के रूप में जीने की कला से अभय अर्थात् परस्पर विश्वास देखने को मिलता है। परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन, लाभ-हानि मुक्त प्रणाली से हर परिवार में समृद्धि का अनुभव होता है। **सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी को मानवीयतापूर्ण आचरण करने मात्र से सर्वतोमुखी समाधान सहज रूप में अनुभव होना पाया जाता है।** इस प्रकार सार्वभौम मानवीयता पूर्ण उद्देश्य और प्रक्रियाओं का संयोग स्पष्ट होता है। फलस्वरूप ही सफलताओं को देखना बनता है।

मानव में यह देखा गया है इस धरती की अधिकाधिक हर वस्तु को उपभोग करने के क्रम में धरती का शोषण पूर्वक व्यवसाय किया। दोहन, संग्रहण क्रम में लाभ के आधार पर मानव ही मानव को बेचकर

संग्रह, संघर्ष, भोगाभिलाषाओं को पूरा करने के लिए सुदूर विगत से प्रयत्न किया। ये अभिलाषाएँ कहीं अपने तृप्ति बिन्दु तक पहुँच नहीं पायी। तृप्ति सर्वसुलभ होने की स्थिति बन नहीं पायी। इससे सुस्पष्ट है मानव-मानव को, अस्तित्व को, जीवन को, जागृति को न समझते हुए भी विद्वता का अर्थात् ज्ञानी-विज्ञानी होने को स्वीकार करता रहा। उक्त चारों मुद्दों से इंगित तथ्य अभी तक न तो शिक्षा में आया है, न तो शिक्षा में प्रचलित है, न ही व्यवहार में मूल्यांकित है, इतना ही नहीं राज्य संविधानों में और धर्म संविधानों में उल्लेखित नहीं हो पाया है। व्याख्यायित-सूत्रीत नहीं हो पाया है। इन गवाही के साथ उपर किया गया समीक्षा स्पष्ट हो जाता है। जीवन, जीवन जागृति, सहअस्तित्व और मानव के अध्ययन के उपरान्त ही जीवन और जागृति सर्वमानव में, से, के लिए समानता का तथ्य लोकव्यापारीकरण होना दिखाई पड़ती है। यहाँ समझने का तात्पर्य समझाने योग्य परंपरा से ही है। शिक्षा-संस्कार परंपरा ही इसके लिए प्रधान रूप में उत्तरदायी है।

आवर्तनशीलता सहज अध्ययन क्रम में निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य सम्पन्न अथवा पारंगत मानसिकता पूर्वक शरीर के अंग-अवयव संयोजन पूर्वक प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन के क्रियाकलापों को देखते आ रहे हैं। इसी का मूल्यांकन क्रम में उपयोगिता मूल्य, कला मूल्य का स्वरूप स्थापित होना और उसका मूल्यांकन होने की अनिवार्यता है। क्योंकि वस्तुओं के उत्पादन में यही क्रियाकलाप, प्रणाली, पद्धति हर मानव से संपादित होना देखने को मिलती है। उत्पादित सभी वस्तुएं मानव के संदर्भ में उपयोगी है।

सम्पूर्ण वनस्पति संसार पुष्टि धर्म होना पाया जाता है। इसी क्रम में पुष्टि द्रव्यों को और उसके संरक्षण द्रव्यों को मानव अपने अध्यवसायिक और प्रयोगशील विधियों से पहचानते आया है, पहचान रहा है, आगे भी मानव परंपरा में इस प्रकार की पहचान कार्यकलाप अक्षुण्ण रहेगी। **मानव का अध्यवसायिक अभिलाषा अर्थात् अध्ययन करने की अभिलाषा सहज रूप में ही सभी वस्तुओं को उस-उसके स्वरूप में, से, के लिए जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने की प्रवृत्ति और प्रयास मानव में देखने को मिलता है।**

मानव अपने शोध-अनुसंधान और प्रयोग क्रम में पुष्टि संरक्षण और विपुलीकरण कार्यों को पहचानने के लिए मूल आधार बीज-वृक्ष विधि को पहचानता है और इसका अंतर्संबन्धों को पहचानने के क्रम में इस क्रियाकलाप अर्थात् एक बीज-वृक्ष में होने की क्रियाकलाप के क्रम में धरती, जल, वायु, ऊष्मा के संयोग को पहचानना सहज है। ऐसे संयोग के साथ-साथ धरती में उर्वरक शक्ति की आवश्यकता, अनुपात और उसकी आपूर्ति विधि स्वाभाविक रूप में हमें पता लगता है। इस मुद्दे पर मानव पूरकता को उर्वरक संग्रहण विनियोजन कार्य के रूप में देखा जाता है। मानव के द्वारा उर्वरक संपादन क्रम में वनस्पति संसार के अवशेषों द्वारा, संग्रहण करने का कार्य और विनियोजन करने का कार्य सदा-सदा काल से ही देखने को

मिलता रहा। इस कार्य में जब मानव अपना परिश्रम, पुरुषार्थ को छुपाने लगा, इसके विपरीत आलस्य, प्रमाद और सुविधा, लिप्सा के साथ जुड़ गया या परिकल्पना किया तब रासायनिक (खनिज जन्य) उर्वरक, अर्थात् वनस्पतियों के लिए पुष्टिकारी द्रव्य का उपयोग शुरू किया। यह तो उपयोग करने वालो की विडम्बना रही। दूसरे भाग में जो इसका उत्पादन कार्य कर रहे हैं, उनकी प्रवृत्ति लाभ से ग्रसित रहना स्पष्ट दिखाई पड़ता है। लाभ मानसिकता पहले से ही परिभाषित है, कम देकर अधिक लेना। दूसरी ओर यांत्रिक विधि से जोतने-काटने-गहाने का कार्य संपन्न होने के कारण वश हल बैल की आवश्कताएं गौण होती गई। कम हो गई। यही मुख्य रूप में फल है अस्तित्व में पूरकता सहज उर्वरक कार्य और विधान के साथ भ्रम होना।

रासायनिक उर्वरक विधि से कृषि उत्पादन तादाद के साथ होना देखा गया। सामान्य मानव जो कृषक वर्ग में गिने जाते हैं, कृत्रिम उर्वरकता विधि से अनजान रहते हैं, ये सब उत्पादन के तादाद को देखकर कृत्रिम उर्वरक विधि को अपना लिए। इसीलिए यह रासायनिक खाद प्रचलित हुए। **इसी के साथ-साथ कुछ ही वर्षों बाद यह भी भासने लगा कि रासायनिक खाद से धरती बरबाद हो जाएगी जैसे अम्लाधिक, क्षाराधिक व्याधि से धरती ग्रसित हो जाएगी।** यहाँ तक यह ज्ञानार्जन तिथि तक वनस्पतिजन्य उर्वरक संग्रहण के लिए अनुकूल और प्रयोजनकारी पशुओं का क्षय हुआ रहना विवशता का आधार बनता गया यही प्रधान रूप में कृषि, धरती, कृषक, कृषि कार्यों के बीच में बनी हुई विसंगतियाँ है।

अनाजों की गुणवत्ता जो पुष्टि के रूप में पहचानी जाती है। ऐसे पुष्टि का प्रयोजन मानव और जीव शरीर के लिए पुष्टिदायी होने के रूप में देखा जाता है। यह सर्वविदित भी है। **रासायनिक उर्वरकों से पुष्टि की मात्रा घटती गई तादात की मात्रा बढ़ती गई।** जैसे शक्कर को आटे में मिला देने पर शक्कर की तादात उस मात्रा में नही रहता है जो मात्रा आटा सहित दिखती है। इसी प्रकार हर अनाज वस्तुओं में पुष्टि का जो सघनीकरण है वह इन कृत्रिम उर्वरक संयोग से विरल हो गई। यह तो एक भ्रमात्मक विपदा मानव जाति को जटिल अनुसंधान के उपहार के रूप में प्राप्त है और इसी के साथ और सर्वाधिक क्षतिकारी परिणाम कीटनाशक द्रव्यों से है। ये कीटनाशक शनै:-शनै: हर अनाज में स्थापित हो चुकी है। जड़ से जो द्रव्य मिलता है उसको जल संयोग से हर पौधा ग्रहण कर पाता है और पत्ते फूल में जो द्रव्य पहुँचती है उसे पत्तों के द्वारा विशेषकर हवा, अनुपातिक उष्मा के साथ-साथ ग्रहण कर लेता है। पत्ती तने में जो पुष्टि तत्व संग्रहित होता है, वही बीज के रूप में अनाज के रूप मिल पाता है। इस क्रम में अधिक तादाद रूपी अनाज में घुली हुई कीटनाशक जहरों की धारा जुड़ जाती है।

विज्ञान विशेषज्ञता से ग्रसित है। सम्पूर्णता के साथ कुछ जिम्मेदारियाँ अनदेखी अथवा नासमझी रह जाती है फलस्वरूप कीट मार कार्यक्रम कृषि का एक अंग होना पाया जाता है। वह सम्पूर्णता से जुड़ी हुई होती

ही है। विशेषज्ञता के आधार पर यह बात गले से उतरती नहीं है। अतएव विशेषज्ञता से जुड़ी हुई अधिकांश छोर सहअस्तित्व विरोधी होना पाया जाता है। हर विशेषज्ञ यह मानकर ही चलता है कि अनेक पुर्जों से एक इकाई की रचना है। इस तथ्य को पदार्थावस्था से बनी हुई यंत्रों में प्रमाणित किया गया। इसी तर्क को प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था में प्रमाणित करने के लिए अनेकानेक अनुसंधान कार्य बीजानुषंगीय और वंशानुषंगीय सिद्धांत के आधार पर सम्पन्न होते आये। बीजानुगत वनस्पति संसार द्दष्टव्य है। वंशानुगत विधि से जीव शरीर और मानव शरीर की रचना होना देखा जाता है। यहाँ मुख्य तत्व प्राणावस्था की रचना, बीजानुषंगीय विधि को लेकर विश्लेषण और निष्कर्ष निकालने का आशय है। इसी क्रम में विशेषज्ञता अन्न, वनस्पतियों के विपुलीकरण और पुष्टिवर्धन विधियों को अनुसंधान करने की कार्यक्रमों को सम्पन्न करते आये। इस क्रियाकलाप के मूल में व्यापार मानसिकता प्रधान रही। इस व्यापार विधि से बीज गुणन कार्यों के लिए रासायनिक उर्वरकता और कीटनाशक द्रव्यों मानव और जीव शरीरों के लिए प्रतिकूल को वनस्पतियों में संग्रहण करने के लिए प्रस्तुत करना एक आवश्यकता बनी। इन्हीं द्रव्यों के चलते तादात बढ़ी। जबकि घोषणाएं बीजगुणन की रही है जो बीजों में गुण रहती है। उसको विपुल बनाने के लिए सारे आश्वासन और प्रक्रिया को स्थापित किया गया। इस मुद्दे पर पूर्णतया विफल होने के उपरान्त भी बीजगुणन का नारा रसायन खाद का भरमार उत्पादन, इन रासायनिक खादों से धरती का अम्लीय और क्षारीय उन्माद को बढ़ाने का कारण तत्व को स्वीकारने के बावजूद भी अनेक उर्वरक कारखाने स्वचालित विधि से प्रक्रिया कराने के लिए तत्पर हो गये। मानव में लाभोन्माद होने के कारण विनाशकारी अनिष्टकारी कार्यों को छोड़ना बन नहीं पा रहा है। इस व्यापारिक अर्थात् लाभोन्मादी विधि से स्थापित यंत्रीकरण विधि भी व्यापार आधारित रहा। इस प्रकार कृषि के सभी ओर व्यापारीक मानसिकताएं इस त्रासदी का आधार बन चुका है।

ऊपर कहे गये **अत्याधुनिक प्रणालियों से किये जाने वाले सभी कृषि कार्य पराधीनता के साथ जुड़ चुकी है। यथा बीज, खाद, जोत, गहाई, मिसाई, बोआई, इन सभी विधाओं में स्वायत्तता के स्थान पर पराधीनता ही स्थापित हुई।** जबकि कृषि, गोपालन, कुटीर उद्योग, ग्राम शिल्प, ग्रामोद्योग में स्वायत्तता प्रधान तत्व है। जागृत मानव प्रकृति सहज स्वतंत्रता और स्वराज्य स्वायत्तता विधि से ही प्रमाणित हुए है, यहाँ तक यहीं देखने में मिलता है, जीवन ज्ञान रूपी विद्या, सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान एवं मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान से मानव स्वायत्त हो जाता है। फलत: परिवार मानव होना सहज है, तभी वैर विहीन परिवार मानव विधा से विश्व परिवार मानव विधाओं तक स्वयं एक व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने योग्य होता है। यह सभी वैभव स्वायत्त मानव होने का ही संप्रभुता और उसकी अक्षुण्णता है। **स्वायत्त मानव की पहली सीढ़ी स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, दूसरे सीढ़ी में प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, तीसरी सीढ़ी में व्यवहार में सामाजिक व्यवसाय में स्वावलंबी होने योग्य अपने में समृद्धि को पा लेना ही स्वायत्त**

मानव का स्थिति रूप है। जो स्वयं में ज्ञान, विज्ञान दर्शन और तर्क संगत विधि से सम्पन्न होना और मानवीयतापूर्ण आचरण में दृढ़ रहना ही स्वायत्त मानव का स्थिति रूप है। ऐसे प्रत्येक मानव ही परिवार मानव के रूप में परिवार की परिभाषा को चरितार्थ रूप दे पाता है। मानव परिवार की परिभाषा और व्याख्या इस प्रकार होना देखा गया है कि कम से कम 10 व्यक्ति परस्परता में संबंधों को पहचानते हैं, स्थापित और शिष्ट मूल्यों को निर्वाह करते हैं, मूल्यांकन करते हैं और उभयतृप्ति पाते हैं। इसी के साथ परिवारगत उत्पादन कार्य में एक दूसरे के पूरक हो पाते हैं। फलत: परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर लेते हैं। इस प्रकार समाधान और समृद्धि का स्रोत परिवार से प्रचलित होना संभव हो जाता है।

वस्तु को उपयोगिता क्रम में महत्वाकांक्षा, सामान्याकांक्षा वर्गीकरण होना पहले से ही स्पष्ट है। सामान्य आकांक्षा संबंधी वस्तुओं के प्रति हर ग्राम स्वायत्त होना आवश्यक है। किसी एक गाँव में 2-4 सामान्य आकांक्षावादी वस्तुओं का उत्पादन नहीं करते हों, ऐसी स्थिति में 10 गावों की परस्परता में अथवा 100 ग्राम की परस्परता में इसकी आपूर्ति की संभावना बन जाती है। स्वायत्तता विधि से ही विश्व मानव परिवार सम्पूर्ण गलती, अपराध और युद्ध से मुक्त होकर सहअस्तित्व, शांति (अभय), समृद्धि, सर्वतोमुखी समाधानपूर्वक जीना संभव हो पाता है। अर्थ का स्वरूप मानव कुल में तन, मन, धन के रूप में ही आवर्तनशील होना सुस्पष्ट है। इन्हीं आवर्तनशीलता क्रम में उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता का तथ्य स्पष्ट होता है। हम इस तन, मन, धन की उपयोगिता को उत्पादन में देखते ही हैं। और मानव का शरीर पोषण, संरक्षण के रूप में उपयोगिता को पहचाना जाता है। यही तन, मन, धन व्यवस्था के रूप में जीने समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने में प्रायोजित हो पाता है। तभी यह सदुपयोग होना ख्यात हो पाता है। यही तन, मन, धन प्रामाणिकता और उसकी निरंतरता में प्रयोजित होता रहता है। इसी क्रियाकलाप को प्रयोजनशील नाम दिया है। प्रयोजनों का स्वरूप जागृति और उसकी परंपरा ही है। प्रयोजन ही मानव के उद्देश्यों के रूप में सुस्पष्ट होते हैं। यह प्रयोजन अर्थात् मानव परंपरा का प्रयोजन समाधान, समृद्धि, अभय और सहअस्तित्व है। सहअस्तित्व में प्रमाणित होना ही है।

गलती, अपराध, शोषण, द्रोह, विद्रोह और युद्ध मानव के और मानव परंपरा के लिए अवांछनीय होना स्वीकृत है। भ्रम मुक्ति पाकर वांछित लक्ष्य अर्थात् मानव लक्ष्य परंपरा में संक्रमित होने की आवश्यकता है। इसके लिए अर्थव्यवस्था, स्वराज्य व्यवस्था में ही समाहित रहना सहज है। इसी स्वराज व्यवस्था में अखण्ड समाज व्यवस्था में सार्वभौम न्याय व्यवस्था समायी हुई है। विनिमय विधि में सार्वभौमता को पाने के लिए भी तन, मन, धन का सदुपयोग प्रणाली ही प्रधान ध्रुव है न कि भोग, बहुभोग और अतिभोग।

आवश्यकता के आधार पर हर जागृत मानव परिवार में उत्पादन कार्य सहज है। ऐसे उत्पादन का हर परिवार मानव सदुपयोग सुरक्षा चाहता ही है। हर परिवार मानव समृद्धिपूर्ण विधि से व्यक्त होना चाहता है अथवा समृद्धि सहित व्यक्त होना चाहता है। यही दो आधार हर जागृत मानव में प्रमाणित होता है और अन्य जागृत होने के क्रम में दोनों आधारों को स्वीकारे रहते हैं। इस प्रकार सर्वमानव अर्थ का सदुपयोग, सुरक्षा स्वीकारे ही है। ऐसी ज्वलंत सत्य सामने रहते हुए भी पूर्ववर्ती अर्थशास्त्र विद इस ओर ध्यान नहीं दे पाए। इसका दो ही कारण स्पष्ट हैं। पहला मानव और मानव परंपरा की मौलिकता, उसकी अखण्डता, सार्वभौमता और उसके अक्षुण्णता को पहचानना संभव नहीं हुआ था। उसका मूल कारण जीवन का रचना, स्वरूप, कार्य, लक्ष्य और उसका प्रमाणीकरण की विधियों में अनजान रहे। दूसरा यह भी प्रलोभन व्यापार संग्रह और भोगवाद से जुड़ी हुई मानसिकता से ही पूर्ववर्ती अर्थशास्त्रों का प्रणयण हुई। यही वर्गवाद, समुदायवाद का भी कारक रहा। इस प्रकार पूर्ववर्ती आर्थिक विचार, शास्त्र और तंत्रणाएँ समीक्षित हैं, जबकि आवर्तनशील अर्थ-विचार, शास्त्र, तंत्र पूर्णतया परिवार मूलक स्वराज्य स्वरूपत: अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में अंगभूत विधि से होना स्पष्ट है। आज भी, आदिकाल से भी और भविष्य में भी सम्पूर्ण उत्पादित वस्तुएं मानव श्रम के फलन में ही होना देखा गया और संभाव्य भी है। यह तथ्य भी सहज रूप में पहचानने-योग्य रहते हुए अर्थशास्त्र के मूल पूँजी के रूप में पूर्ववर्ती सभी विचार मुद्रा को ही पूँजी मानते हुए सभी ओर विचारों को फैलाया। सहअस्तित्व सहज आवर्तनशीलता क्रम में सर्वमानव में निपुणता, कुशलता, पांडित्यपूर्ण मानसिकता और इसे पूर्णतया परावर्तित करने योग्य स्वस्थ शरीर के संयोग से ही सम्पूर्ण उत्पादन सम्पन्न होना पाया जाता है। सम्पूर्ण प्रकार से नियोजित करने वाले श्रम का प्रयोजन प्राकृतिक ऐश्वर्य पर ही सार्थक होना पाया जाता है। जैसे आहार, आवास, अलंकार संबंधी वस्तुओं के लिए जितने भी श्रम नियोजन होती है, वह सब धरती, जलवायु, जंगल, वनस्पतियों के साथ ही अनुशीलन क्रम में सार्थक होना देखा गया। आहार के संदर्भ में धरती ही सम्पूर्ण आधार है। आहार वस्तुओं को इस धरती से ही पाया जाना देखा गया। चाहे किसी प्रकार से भी आहार द्रव्य को प्राप्त करें। (चाहे शाकाहार हो, चाहे मांसाहार)। आवास द्रव्य भी इस धरती से ही श्रम नियोजनपूर्वक उपलब्ध किया जाना देखा गया है और इसी प्रकार अलंकार द्रव्य भी इसी धरती के मूल वस्तु के रूप में देखना बनता है। विविध उपयोगिताएँ मानव द्वारा स्थापित किया गया श्रम नियोजन का ही यह महिमा होना त्रिकालाबाध रूप में स्पष्ट है। महत्वाकांक्षा संबंधी - दूरश्रवण, दूरदर्शन और दूरगमन कार्यों में आने वाली सम्पूर्ण यंत्र भी मानव का श्रम नियोजन पूर्वक प्राप्त द्रव्य और यंत्र हैं। यह भी सर्वमानव में, से, के लिए सुस्पष्ट है। यह सब अवलोकन इसीलिए आवश्यक समझा जब कि वास्तविक रूप में मूल धन श्रम शक्ति के रूप में मानव में ही निहित है। ऐसे मूल पूँजी सदा-सदा ही केवल मानव का ही स्वत्व है। इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

मानव में ही श्रम पूँजी का विस्तार बहुआयामी प्रयोजन रूप में नियोजित होता हुआ आंकलित होता है। मानव निर्मित वस्तुएँ, इसी धरती में निहित द्रव्यों का ही वैभव को उजागर करने के क्रम में स्पष्ट है। एक सुई से लेकर महल तक, एक चक्के की गाड़ी से लेकर कई चक्के से चलने वाली यांत्रिकता को हाथ-पैर के दबावों से लुढ़कती हुई, चलती हुई क्रिया को, पानी, तेल, उष्मा के दबावों के सहारे चलने योग्य दूसरे नाम से गतिशील होने के योग्य तंत्रणाओं और बारूद से चलकर परमाणु तत्वों के दबाव से चलने वाले यान-वाहनों को मानव ने उपलब्ध किया। इसी यंत्र-तंत्रणा विधियों से चुम्बकीय विद्युत गति सूर्य ऊर्जा से परावर्तित उष्मा का संग्रहण और निश्चित धातु पदार्थ द्वारा यही सूर्य उष्मा का विद्युतीकरण के साथ-साथ हवा के दबाव प्रपात शक्ति का उपयोग विधि से विद्युतीकरण अथवा यंत्रीकरण विधियों से हम प्राप्त कर चुके हैं। इसी क्रम में दूरदर्शन, दूरश्रवण, दूरगमन यंत्रों जैसी उपलब्धियाँ मानव को उपलब्ध हो गया है। इन सबका उपयोग, सदुपयोग क्रम, भोग और बहुभोग क्रम मानव सम्मुख प्रस्तुत हो गया है। जिसमें से भोग और बहुभोग क्रम व्यापार और संग्रहण क्रम, शोषण और युद्ध क्रम के लिए मानव जाति सर्वाधिक रूप में दुरुपयोग करता हुआ देखा गया है। आंशिक रूप में सम्पर्क सूत्र समाचार गति के लिए भी ये सब उपयोगी सिद्ध हुए। इन सभी का सार्थकता व्यवस्था के अर्थ में उपयोग-सदुपयोग करना ही एकमात्र उपाए है। शासन गति के स्थान पर व्यवस्था गति, अ-सहअस्तित्ववादी शोषण गति से पोषण गति के लिए प्रयुक्त होना सदुपयोग है। एक ग्राम, ग्राम परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक और विश्व परिवार सभा से एक ग्राम परिवार सभा तक आवश्कतानुसार आदान-प्रदान गति को बनाए रखने के लिए यह सभी साधन उपयोगी, सदुपयोगी होना दिखाई पड़ती है। इसी नजरिया से ही यह निर्णय होता है संग्रहवाद और युद्धवाद के लिए सभी उपयोग मानव के अर्थ में, नैसर्गिकता के अर्थ में, पर्यावरण के अर्थ में निरर्थक होना समीक्षित होती है। यह निरर्थकता कई बार मनीषियों के मन में उद्गारों के रूप में आ चुकी है। इसका विकल्प न होने की स्थिति में यथास्थिति बनते ही आया।

तीनों प्रकार के वर्णित महत्वाकांक्षा संबंधी यंत्रों से व्यवस्था गति के रूप में ही नियतिक्रम स्वीकृति स्पष्ट होता है। नियति सहअस्तित्व सहज रूप में बनी हुई अथवा प्रकाशित स्वरूप है। ऐसे अनंत स्वरूप में से यह धरती भी एक स्वरूप है। इसी धरती में मानव भी एक स्वरूप है। यह तो मानव को भले प्रकार से पता लग चुकी है या स्पष्ट हो चुकी है कि मानव ही भ्रमित होकर धरती, जलवायु के प्रति अत्याचार करता है। इसका प्रमाण में यह देखने को मिला है कि पर्यावरण संतुलन के लिए उद्गार और आवाज योजनाओं के रूप में भी कुछ नौकरी करने वाले आदमी या नौकरी नहीं करने वाले मनीषी विशेषकर योजना के स्थल पर चर्चा करते हैं। उन सभी चर्चा का सार तत्व प्रदूषण को रोकने की न होकर कितना ज्यादा प्रदूषण में आदमी जी सकता है, इसका खोज किया जा रहा है। ऐसी नौकरशाही प्रदूषण नियंत्रण कार्य के मूल में भी

व्यापार और शोषण ही निहित है। इस विधि से गम्य स्थली अनिश्चित है। अतएव ऊर्जा स्रोतों में से जो सर्वाधिक प्रदूषण कार्य है, उसका शोषण और उपयोग विधियों से मुक्ति पाना आवश्यक है। इसके लिए विकल्पात्मक ऊर्जा स्रोतों से ही सम्पन्न होना आवश्यक है। इस मुद्दे पर आगे सुस्पष्ट विधि से देख पाएंगे।

सम्पूर्ण उत्पादन के साथ श्रम नियोजन अनिवार्यत: निहित रहता ही है। उत्पादन की सार्थकता भी सुनिश्चित है। यह निश्चयन महत्वाकांक्षा, सामान्याकांक्षा के रूप में सूत्रित है। उत्पादन, उपयोग, सदुपयोग और प्रयोजनों के रूप में मूल्यांकित हो पाता है, तभी हर वस्तुओं का उपयोगिता मूल्य स्पष्ट होती है। उत्पादित सम्पूर्ण वस्तुओं की उपयोगिता पोषण, संरक्षण और समाज गति के रूप में गण्य है। इन्हीं कार्यों में सामान्य आकांक्षा, महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तु, द्रव्य, यंत्र और उपकरण, उपयोगी होना भी सुस्पष्ट है। इसी क्रम में हम दोनों विधा से संबंधित उत्पादनों का मूल्यांकन और उसके उपयोग, सदुपयोग का मूल्यांकन कर पाना सहज है। सम्पूर्ण आहार आदि वस्तुएँ व्यवस्था क्रम में समृद्धि के रूप में ही संभाव्य है। क्योंकि **उत्पादन के अनंतर ही उपयोग की आवश्यकता समीचीन होता है 'जो उत्पादन में भागीदार नहीं है उन्हें उपयोग, सदुपयोग संबंधी जागृति होती ही नहीं।' उत्पादन कार्य में भागीदार नहीं है मानवीयतापूर्ण मानव के रूप में प्रमाणित होना संभव नहीं।** जो उत्पादन कार्य में लगे रहते हैं वे संग्रह नहीं कर पाते हैं एवं जो संग्रह करते हैं वे सब उत्पादन कार्य में शिथिल होने की ओर है। इससे यह स्पष्ट हो गई मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञानदर्शन सम्पन्न होने के पहले अभी तक मानव व्यवस्था में जीने और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित नहीं कर पाए। जबकि इसकी मानव मानस में नितांत आवश्यकता है।

परिवार मानव का परिवार व्यवस्था में निष्णात और प्रवृत्त रहना स्वाभाविक है। परिवार व्यवस्था में परिवार गत उत्पादन कार्य एक दूसरे का पूरक होता ही है। फलस्वरूप ही आवश्यकता से अधिक उत्पादन हो पाता है। परिवार का हर सदस्य उत्पादन में भागीदार होने का फल ही है। उत्पादित सभी प्रकार की वस्तुओं को उपयोग, सदुपयोग करना सहज है।

आज भी यह सर्वेक्षित तथ्य है स्वायत्त विधि से जो-जो उत्पादन करते हैं वे सब अपने से उत्पादित वस्तु का सर्वाधिक सुरक्षा करते हैं, सदुपयोग करना चाहते हैं। सदुपयोग का ख्याति, यश न होने के फलस्वरूप कुंठित रहते हैं। आज की स्थिति में सदुपयोग का ख्याति न होने का एक ही कारण है व्यवस्था के स्थान पर शासन मानसिकता पूर्वक जीना। शासन मानसिकता सुविधावादी मानसिकता को कहा जाता है। हर परिवार में सर्वेक्षण से यह पता लगता है **'उत्पादन में जो सर्वाधिक पारंगत है परिवार में अपने को सुविधावादी, सुविधासेवी के रूप में प्रस्तुत करते हैं।'** क्योंकि भ्रमित परंपरा में इनके सम्मुख आदर्श शासन और सुविधा ही देखने को मिला रहता है। इसी क्रम में परिवार प्रधान उत्पादन कार्य में सक्रिय रहने की

स्थिति में सुविधा और शासक के रूप में अपने को पाकर प्रसन्न होने का रास्ता मान लेता है। इसको दोनों विधियों से देखा गया है। महिलाएँ जिन परिवारों में उत्पादन कार्य में ज्यादा से ज्यादा प्रसक्त रहते हैं, सुविधा और शासन कार्य में उनका वर्चस्व रहता है। कोई-कोई इसको अनुशासन भी कहते हैं। जहाँ परिवार में पुरुष अधिकाधिक उत्पादन कार्य में सक्रिय रहता है, वहाँ का शासन, सुविधा में पुरूषों का वर्चस्व बना रहता है। तीसरी स्थिति यह भी देखी गई कि जिस परिवार में उत्पादन कार्य से भागीदारी का संबंध नहीं रह जाती है ऐसे परिवार में शासन और सुविधा का समानाधिकार की प्रवृत्ति उभरी हुई मिलती है। यह भी देखा गया है अधिकाधिक परिवार जो केवल संग्रह और भोगलिप्सा में रत रहते हैं इन्हीं मुद्दों (शासन और सुविधा) को लेकर कटुता, वितंडावाद, विरोध, विद्रोह बना रहता है। इस प्रकार दोनों स्थितियों में कुण्ठाएँ दिखाई पड़ती हैं। चौथे स्थिति में प्रौद्योगिकीय क्षेत्र में वेतन भोगी अथवा मजदूरी विधि से जो कार्यरत रहते हैं वे सब नौकरी लगते तक, मजदूरी में लगते तक कार्य करने में स्वीकृति बनी रहती है। परन्तु जब कार्यरत होते हैं, अर्थात् मजदूर, वेतनभोगी जब नियमित होते हैं उसके उपरांत अधिकांश लोगों में कार्य में शिथिलता होना देखा गया है। जो वेतनमान और मजदूरी पाते हैं उनमें विपुलता की चाह बढ़ जाती है। उद्योग का नियंत्रण, लाभाकांक्षा से पीड़ित रहना, जिसको हम मैनेजमेंट कहते हैं, दूसरे भाषा से उद्योगपति भी कहते हैं, सफल उद्योग का तात्पर्य ही है अधिकाधिक लाभ प्राप्त होते रहें। लाभ का और संग्रह का कहीं तृप्ति बिन्दु ही न होना सबको विदित है। इस विधि से उद्योग में भागीदारी करने वाले निरंतर व्यथित रहना, असंतुष्ट रहना ही हाथ लग पाता है। इस बीच भय और प्रलोभन के आधार पर ही उद्योग व्यवस्था को सफल बनाने का प्रयत्न प्रौद्योगिकी के आरंभ काल से ही जुड़ा हुआ देखा गया।

इस तथ्य को भले प्रकार से देखा गया है कि हर उत्पादन श्रम नियोजन का प्रतिफलन के रूप में ही होना पाया जाता है। प्रतिफलन श्रम नियोजन का ही होता है। प्रतिफलन का तात्पर्य यही है कि मानव के प्रखर प्रज्ञा रूपी निपुणता, कुशलता, पांडित्य का फल। मानव का प्रखर प्रज्ञा, मानवीयतापूर्ण प्रज्ञा ही होना पाया जाता है। ऐसा मानवीयतापूर्ण प्रज्ञा का सम्पूर्ण स्वरूप जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन और मानवीयता पूर्ण आचरण ही है। प्रतिफलन विधि से आबंटन क्रिया ही दूसरे विधि से विनिमय कार्य ही सर्वशुभ हो पाता है। प्रतिफलन विधि से लाभ की परिकल्पना मानव में होना संभव नहीं है। **विनिमय के अनंतर भी उतना ही प्रतिफल बना रहता है, जितना उत्पादन किया रहता है। यही विनिमय विधि का तृप्ति बिंदु भी है।** श्रम नियोजन क्रियाकलाप में न लाभ होता है न हानि होती है। कम उत्पादन भी एक कर्माभ्यास है। अधिक उत्पादन भी एक कर्माभ्यास ही है। यह अवश्य मानव में होने वाली प्रवृत्ति है- आवश्यकता से अधिक उत्पादन। इस प्रवृत्ति वश ही हर मानव अपने को कर्माभ्यास विधि से प्रस्तुत कर पाता है अथवा आगे बढ़ता है। इन सभी तथ्यों से यह सुस्पष्ट हो गई अस्तित्व सहज सहअस्तित्व विधि से, परमाणु में विकास सहज

गठनपूर्णता, जीवन पद, जीवनी क्रम (जीवावस्था का आचरण) विधि से और जीवन जागृति विधि से लाभ-हानि का कोई स्थान नहीं है। इतना ही नहीं विकास क्रम सहज प्राणावस्था में, से, के लिए होने वाले पूरकता उदात्तीकरण, रासायनिक भौतिक रचना-विरचना विधियों से भी संग्रह का भी कोई स्थान नहीं है। इस धरती में जितने भी रासायनिक भौतिक रचनाएँ सम्पन्न होते हैं, वह सब इसी धरती का समृद्धि के रूप में होना पाया जाता है।

अस्तित्व में कहीं लाभ-हानि का स्थान है या नहीं, इस तथ्य का परिशीलन किया गया। इस परिशीलन से विदित है अस्तित्व में, सहअस्तित्व में, विकास और संक्रमण में, जीवन और जीवन जागृति में, रासायनिक भौतिक रचना और विरचनाओं में लाभ-हानि का संकेत या प्रमाण न होकर अस्तित्व सहज रूप में ही सहअस्तित्व, समृद्धि सुस्पष्ट रूप में दिखाई पड़ती है। क्योंकि परमाणु समृद्ध होकर ही गठनपूर्ण होता है और संक्रमित होता है। फलस्वरूप चैतन्य इकाई के रूप में जीवन अणुबंधन-भारबंधन से मुक्त होकर आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रामाणिकता को व्यक्त, अभिव्यक्त, सम्प्रेषित, प्रकाशित करने योग्य हो पाता है। यह भी जीवन समृद्धि का ही द्योतक है। अर्थात् जीवन जागृति, जीवन समृद्धि का ही द्योतक है। यह भी सहअस्तित्व में ही सम्पन्न होना देखा जाता है। विकास क्रम में कार्यरत सभी रासायनिक, भौतिक वस्तु और द्रव्य सहअस्तित्व में ही अणु समृद्धि फलत: रासायनिक उर्मि के रूप में उदात्तीकरण और रचना-विरचनाएँ सम्पन्न होता हुआ देखने को मिलती है। यह भी समृद्धि, पूरकता और सहअस्तित्व के रूप में ही स्पष्ट है और अपने को व्याख्यायित करता है। इस प्रकार अस्तित्व सहज रूप में सहअस्तित्व और समृद्धि स्थापित है ही। मानव ही एक इकाई ज्ञानावस्था में वैभवित है। यह सहअस्तित्व सहज प्रतिष्ठा है। इस प्रतिष्ठा तक अस्तित्व में मानव के पुरुषार्थ-परमार्थ का, तकनीकी ज्ञान-विज्ञान के प्रयुक्ति के बिना ही यह प्रतिष्ठा स्थापित है ही। मानव का जो कुछ भी नियोजन-प्रयोजन, कार्य-व्यवहार है यह सब उक्त कहे पाँचों प्रकार से ही सम्पन्न होना देखा गया है। पुरुषार्थ का तात्पर्य उत्पादन कार्य से है। परमार्थ का तात्पर्य जागृतिपूर्णता से है। तकनीकी का तात्पर्य मानव सहज सामान्य आकांक्षा, महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तुओं को उत्पादन करने की विधि विहित चित्रण, विश्लेषण सहित मानसिकता से है। ज्ञान का तात्पर्य जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने से है। विज्ञान का तात्पर्य तर्कसंगत विधि से ज्ञान को प्रवाहित करने का विचार है। तात्विक विधि से-कालवादी, क्रियावादी, निर्णयवादी (प्रमाणित और परिमाणित करने वाला) विचार विधि ही विज्ञान है। इससे सुस्पष्ट है मानव कृतियों का जो कुछ भी अक्षय बल है, शक्ति है वह जागृतिपूर्वक व्यक्त होने की स्थिति में इन्हीं पाँचों रूपों में कर्ता-भोक्ता के रूप में प्रमाणित हो पाता है। उक्त पाँचों प्रकारों से प्रमाणित होने वाली क्षमता ही स्वयं में दृष्टा पद का प्रमाण है। यह भी समृद्धि का ही द्योतक होना पाया जाता है और सहअस्तित्व में ही जागृति सम्पन्न होता है। इस विधि से मानव ही जागृत

होने के उपरांत जो स्वरूप स्पष्ट हो पाती है, उसमें भी कहीं लाभ का स्थान न होकर सहअस्तित्व और समृद्धि ही दिखाई पड़ती है।

मानव ने जो कुछ भी लाभोन्माद, भोगोन्माद, कामोन्माद में ग्रसित होने का परंपरा बना लिया है इसके मूल में ईश्वरवाद और वस्तुवाद दोनों का अंतिम बिंदु कार्य-व्यवहार के रूप में भय और प्रलोभन ही रहा। प्रिय, हित, लाभात्मक दृष्टियाँ जागृति क्रम में क्रियाशील रहता रहा। न्याय, धर्म और सत्य के प्रति जागृत होने का प्रमाण प्राप्त नहीं हो पाया। इस विधि से मानव अपने कृतियों को कुछ भी कर पाया इन्हीं प्रिय, हित, लाभपूर्वक किया। इसके मूल में भय से मुक्ति, प्रलोभन से अनुरक्ति और आस्थाओं (न जानते हुए मानने के) के आधार पर रहस्यमूलक विधि से विरक्ति का भी चर्चा किए। कार्य-व्यवहार में भय और प्रलोभन ही हाथ लगता रहा। इसमें से मानव भय को नकारता रहा, प्रलोभनों को स्वीकारता रहा। फलस्वरूप तीनों उन्मादों से ग्रसित होना परंपरा में स्वीकार हुआ। इसी के साथ-साथ तृप्ति बिन्दु और आगे और आगे होता ही गया, जैसा मृगतृष्णा मरीचिका में होता है। इससे सुस्पष्ट हो गया है कि हम मानव उन्माद से कैसे ग्रसित हुए।

विचारणीय बिन्दु विश्व मानव के सम्मुख है खनिज तेल खनिज कोयला और खनिज वस्तु क्या इन वस्तुओं का मानव उत्पादन करता है? शोषण करता है? अपहरण करता है? और वन और वनोपज संबंध में भी विचार करना आवश्यक है। उक्त मुद्दे के संबंध में सर्वाधिक विचारशील मेधावी इस बात को स्वीकारते हैं कि खनिज तेल और कोयले से सर्वाधिक प्रदूषण होता है। स्वीकारते हुए इसको बनाए क्यों रखते हैं इसको पूछने पर यही उत्तर मिलता है हम विवश हैं, लोगों की आवश्यकता है, उद्योग बंद हो जाएंगे। अंतिम चोट में यही उद्गार आते हैं कि इसकी आवश्यकता है ही। इतने लोगों की आजीवका चलती है। यह सब बंद कर दें तो इतने लोगों को आजीविका कहाँ मिलेगी। इस प्रकार इस जटिल तर्क में आकर तेल और कोयले के उत्पादन को लक्ष्य बनाते हैं। तेल और कोयले की अवस्थिति जैसा भी धरती में समायी हुई है। उसको निकालने के क्रियाकलापों को देखने पर धरती का पेट फाड़कर इन चीजों को निकाला करते हैं।

यह तो सर्वविदित है कि यह धरती अपने में समृद्धि होने के क्रम में जितने भी प्रकार के खनिज पदार्थ हैं, उसे उन-उन स्तरों में बनाए रखने की जरूरत थी। उसी के अनुसार धरती अपने में समृद्धि हुई। इसमें मानव का कोई प्रखर प्रज्ञा का नियोजन नहीं रहा। यह भी इसके साथ देखने को मिलता है कि हर विकास बिन्दु में एक संतुलन प्रमाणित होता ही रहता है। इसी क्रम में यह धरती संतुलित रहते हुए अपने में समृद्ध हुई। समृद्ध होने के उपरांत ही अर्थात् पदार्थावस्था से प्राणावस्था, प्राणावस्था से जीवावस्था से सम्पन्न होने के उपरांत ही ज्ञानावस्था का मानव अपने को बनाए रखने के लिए कार्यक्रमों को आरंभ किया। इसी क्रम

में श्रम नियोजन विधि प्रभावित रहा, जिससे मानवकृतियाँ प्रमाणित होती रही। आज के मानव में इस तथ्य को भी स्वीकारना-समझना संभव हो गया है कि ग्रह, गोल अपने वातारवण सहित अपने ही संपूर्ण रूप में विद्यमान हैं। इसी विधि से यह धरती भी अपने वातावरण सहित अपने संपूर्णता में कार्यरत रहता आया। जैसे ही धरती का पेट फाड़कर पेट में रहने योग्य वस्तु को बाहर कर दिया, इससे धरती का पेट बिगड़ना तो बना ही है। इसके साथ-साथ वातावरण का शक्ल भी बिगड़ता ही रहा। इतना ही नहीं जंगलों को अनानुपाती विधि से नष्ट कर दिया गया। और भी धरती का शक्ल बदलना हुआ। उल्लेखनीय तथ्य यह है इस **धरती में निहित निश्चित अनुपाती खनिज वनस्पतियों के अनुपाती विधि से ही ऋतुकाल का नियंत्रण बनी रहती है।** ऋतुकालों में प्रधानत: वर्षा, ग्रीष्म और शीतकाल के रूप में निश्चित माह की अवधियों को मानव ने स्वीकारा और इसका संतुलन से ही वनस्पतियों, जीव और मानव का अवस्थिति इस धरती पर सुखद सुन्दर होना देखा जाता है।

धरती का सौंदर्य विधान विकासक्रम में अथक श्रमपूर्वक सज-धज कर तैयार हुआ है। इसको ऐसा देखा जाता है कि पदार्थावस्था अपने अथक श्रम कार्य और सहअस्तित्व प्रभाव के संयोगवश ही ठोस, तरल, वायु के रूप में और भौतिक रासायनिक रचना-विरचना के रूप में दृष्टव्य है। इसका कोई काल गणना ही नहीं है। काल गणना का जो कुछ भी प्रयोजन, नियोजन मानव में, से, के लिए है। जीव कोटि में भी इस बात को उनके दिनचर्या के रूप में देखा जाता है। विकसित धरती के आचरण को ऋतुमान के रूप में देखा जाता है। यह तभी घटित हुआ है जबसे इस धरती में रासायनिक-भौतिक रचनाएँ-विरचनाओं परंपराओं के रूप में स्थापित हो चुकी हैं। आवर्तनशीलता का स्वरूप यह धरती के ऋतुकाल के रूप में है। जीवों में जीव शरीरों और मानव शरीरों के रचनाएँ-विरचना की आवर्तनशीलताएँ वंशानुषंगीयता के रूप में, सम्पूर्ण वनस्पति जगत में आवर्तनशील परंपराएँ बीजानुषंगीय विधियों से होना और सम्पूर्ण पदार्थ संसार परिणामानुषंगीय विधि से अपने-अपने व्यवस्थाओं को बनाए रखना देखा जाता है।

विज्ञान युग आने के उपरांत उन्माद त्रय का लोकव्यापीकरण कार्यों में शिक्षा और युद्ध एवं व्यापार तंत्र का सहायक होना देखा गया। यही मुख्य रूप में धरती को तंग करने में सर्वाधिक लोगों के सम्मतशील होने में प्रेरक सूत्र रहा। यह समीक्षीत होता है कि सर्वाधिक मानव मानस वन, खनिज अपहरण कार्य में सम्मत रहा। तभी यह घटना सम्पन्न हो पाया। यहाँ इस बात को स्मरण में लाने के उद्देश्य से ही जन मानस की ओर ध्यान दिलाना उचित समझा गया कि धरती का पेट फाड़ने की क्रिया को मानव ने ही सम्पन्न किया। इस धरती का या हरेक धरती का दो ध्रुव होना आंकलन गम्य है। मानव इस मुद्दे को पहचानता है। इस धरती के दो ध्रुवों को मानव भले प्रकार से समझ चुका है। इसी को दक्षिणी ध्रुव-उत्तरी ध्रुव कहा जाता है।

इसे पहचानने के क्रम में धरती के सम्पूर्ण द्रव्यों और वस्तुओं के साथ-साथ उत्तर के ओर चुम्बकीय धारा प्रवाह और प्रभाव बना ही रहती है। ये धारा प्रवाह धरती ठोस होने का आधार बिन्दु है। क्योंकि परमाणु में ही भार बंधन, अणु-बंधन के कार्य को देखा जाता है। यही क्रम से ठोस होने के कार्यकलापों को सम्पादित कर लेता है। शरीर रचना में सभी अंग-अवयव एक साथ रचना क्रम में समृद्ध होकर सर्वांग सुन्दर हो पाता है। इसी क्रम में अपने आप में सर्वांग सुन्दर होने के कार्यकलाप क्रिया को यह धरती स्पष्ट कर चुकी है। इसके प्रमाण में ठोस, तरल, विरल और रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना धरती के सतह में नित्य प्रसवन के रूप में सम्पन्न होता हुआ देखा जाता है। यह भी हमें पता है यह धरती के पेट में से जो कुछ भी बाहर करना होता है वह स्वयं प्रयास से ही अथवा स्वयं के निश्चित कार्यकलाप के प्रणालीबद्ध विधि से भूकम्प एवं ज्वालामुखी बाहर कर देता है। इससे हमें यह मालूम होता है कि धरती के लिए आवश्यकीय सभी खनिज वस्तु धरती के पेट में ही समायी रहती है। यह अपने सम्पूर्ण तंदुरस्ती को व्यक्त करने के क्रम में धरती पर अथवा धरती की सतह पर रासायनिक-भौतिक रचना-विरचनाएँ सम्पन्न हो पाती है। प्राणावस्था के अनंतर ही इस धरती पर ऋतुक्रम का प्रभाव, उसी क्रम में जीवावस्था और ज्ञानावस्था का शरीर रचना क्रमशः रचना क्रम में श्रेष्ठताएँ स्थापित हुई। **जीवन किसी निश्चित सहअस्तित्व विधिपूर्ण वातावरण को पाकर ही गठनपूर्णता सम्पन्न होने की क्रिया भी प्राकृतिक विधि से स्थापित है।** परमाणु में विकासपूर्णता और उसकी निरंतरता ही जीवनपद है। यही चैतन्य इकाई है। यह अणुबंधन-भारबंधन से मुक्त रहने के कारण एवं आशा, विचार, इच्छा बंधन से संयुक्त रहने के कारण भ्रम-मुक्ति की अपेक्षा बने रहने के कारण मानव परंपरा में जीवन शरीर को संचालित करना सहअस्तित्व सहज प्रभाव और उद्देश्य भी है।

जीवन में ही आशा, विचार, इच्छा बंधन से ही भ्रमित होकर उन्मादत्रय विधि से जो कुछ भी धरती के साथ मानव कर बैठा है वह इस प्रकार से अलंकारिक स्वरूप में है कि सर्वांग सुन्दर मानव के आंतों को अथवा गुर्दों को, अथवा हृदयतंत्र को बाहर करने के उपरान्त सटीक शरीर व्यवस्था चलने की अपेक्षा करना जितना मूर्खता भरी होती है वैसे ही धरती के आन्त्र तंत्रों को अर्थात् भीतर की तंत्रण द्रव्यों को बाहर करने के उपरान्त स्वस्थ्य धरती की अपेक्षा रखना भी उतनी ही मूर्खता है। ये सब कहानियों के मूल में सार संक्षेप यही है मानव **"उन्मादत्रय, तकनीकी, ह्रासविधि ज्ञान रूपी विज्ञान" के संयुक्त रूप में जो कुछ भी क्रियाकलाप कर पाया वह सब सर्वप्रथम धरती के सर्वांग सुन्दरता और स्वस्थता के विपरीत होना आकलित हो चुकी हैं।**

धरती का ठोस होने के क्रम में दो ध्रुव स्थापित होना, परमाणुओं का भारबल सहअस्तित्व प्रभावी अणु संघटन क्रिया कलाप में यह धरती अपने ठोस रूप को बनाए रखा है। ऐसी सर्वांग सुन्दर धरती में छेद

करते-करते एक से एक गइराई में पहुँचकर चीजें निकालने की हविस पूरा किया जा रहा है। हविस का तात्पर्य शेखचिल्ली विधि से है। इन सभी कार्यों के परिणाम स्वरूप जितने भी खतरे ज्ञात हो चुके हैं, उससे अधिक भी हो सकते है, इस तथ्य को स्वीकारा जा सकता है। धरती ठोस होने के क्रम में भारबंधन सूत्र से सूत्रित होने के क्रम में सतह पर उसका प्रभाव स्थापित रहना सहज है। ऐसी चुम्बकीय धारा का मध्यबिन्दु, इस धरती के मध्य में ही होना स्वाभाविक है। तभी ध्रुव स्थापना का होना पाया जाता है। इस धरती में दोनों ध्रुव बिन्दु है। इसीलिए चुम्बकीय धारा का मध्य बिन्दु ध्रुव से ध्रुव तक स्थिर रहना आवश्यक है। इसी ध्रुवतावश ही यह धरती अपने सर्वांगसुन्दर स्वस्थता को बनाए रखने में सक्षम, समृद्ध होने में तत्पर रही ही है। विज्ञान युग के अनन्तर ही सर्वाधिक स्थान पर धरती का पेट फाड़ने का कार्यक्रम सम्पन्न होता आया। इसी क्रम में धरती के मध्य बिन्दु में जो चुम्बकीय धारा ध्रुव रूप में स्थित है वह विचलित होने की स्थिति में यह धरती अपने में ही बिखर जाने में देर नहीं लगेगी। इस खतरे के संदर्भ में भी मानव अपने ही करकमलों से किये जाने वाले कार्यों के प्रति सजग होने की आवश्यकता है। दूसरे प्रकार के खतरे की ओर ध्यान जाना भी आवश्यक है। पहले वाला करतूत से संबंधित है तो दूसरा खतरा परिणाम से है।

इस धरती के मानव अभी तक इस बात को तो पहचान चुके है कि इस धरती के वातावरण में प्रौद्योगिकी विधि से विसर्जनीय तत्वों के परिणाम स्वरूप जल, वायु, धरती प्रदूषित विकृत हो चुकी है। यह होते ही रहेगा। इसी क्रम में धरती के वातावरण में उथल-पुथल पैदा हो चुकी है। यह भी ज्ञात हो चुका है प्राण रक्षक विरल पदार्थों का, द्रव्यों की क्षति हो रही है। वनस्पति संसार भी सेवन करने में और उसे प्राणवायु के रूप में परिवर्तित करने में अड़चन, अवरोध पैदा होता जा रहा है। इसी क्रम में धरती के वातावरण में स्थित वायुमंडल में विकार पैदा हो चुकी है और ऊपरी हिस्सा क्षतिग्रस्त हो चुकी है। इसका क्षतिपूर्ति अभी जैसा ही मानव संसार रासायनिक उद्योगों के पीछे लाभ के आधार पर पागल है और खनिज तेल और कोयला का उपयोग करने के आधार पर प्रदूषण और धरती का वातावरण में क्षतिपूर्ति की कोई विधि नहीं है। यह भी पता लग चुका है। इसके बावजूद उन्मादवश प्रवाहित होते ही जाना बन रहा है। इस क्रम में एक सम्भावना के रूप में एक खतरा अथवा अवर्णनीय खतरा दिखाई पड़ती है। वह है, इस धरती में जब कभी भी पानी का उदय हुआ है, रासायनिक प्रक्रिया की शुभ बेला ही रही है। पानी बनने के अनन्तर ही यह धरती रासायनिक रचना-विरचना क्रम को बनाए रखने में सक्षम हुई है। यह संयोग ब्रह्माण्डीय किरणों के संयोग से ही सम्पन्न होना सहज रहा है। इस विधि से समझने पर धरती के वातावरण में जो विरल वस्तु का अभावीकरण हो चुका है या होता जा रहा है, वही विशेषकर ब्रह्माण्डीय किरणों को और सूर्य किरणों को धरती में पचने का रूप प्रदान कर देता है। इसी विधि से ब्रहाण्डीय किरणों के संयोगवश पानी का उदय हुआ, वह निकल जाने के उपरान्त अथवा और कुछ वातावरण में विकार के उपरान्त यदि वही

ब्रह्माण्डीय किरण, सूर्य किरण पानी में सहज रूप में होने वाली रसायनिक गठन के विपरीत इसे विघटित करने वाली ब्रह्माण्डीय किरणों का प्रभाव पड़ना आरंभ हो जाए उस स्थिति को रोकने के लिए विज्ञान के पास कौन सा उपचार है? इसके उत्तर में नहीं-नहीं की ही ध्वनि बनी हुई है। तीसरा खतरा जो कुछ लोगों को पता है, वह है यह धरती गर्म होते जाए, ध्रुव प्रदेशों में संतुलन के लिए बनी हुई बर्फ राशियाँ गलने लग जाए तब क्या करेंगे? तब विज्ञान का एक ध्वनि इसका उपचार के लिए दबे हुए स्वर से निकलता है- बर्फ बनने वाली बम डाल देंगे। इस ध्वनि के बाद जब प्रश्न बनती है, कब तक डालेंगे? कितना डालेंगे? उस स्थिति में अनिश्चयता का शरण लेना बनता है। इन सभी कथा-विश्लेषण समीक्षा का आशय ही है **हम सभी मानव उन्मादत्रय से मुक्त होना चाहते हैं, मुक्त होना एक आवश्यकता है, इस आशय से धरती के सतह में समृद्धि, समाधान, अभय, सहअस्तित्वपूर्वक जीने की कला को विकसित करना आवश्यक है।** यही सर्वोपरि बेहतरीन जिन्दगी का शक्ल है। इसमें मानव कुल से द्रोह, विद्रोह, शोषण और युद्ध सर्वथा विसर्जनीय है।

द्रोह का मूल रूप को इस प्रकार पहचाना जाता है पहला- सत्ता संघर्ष इसके स्थान पर सार्वभौम व्यवस्था और ऐसी व्यवस्था में भागीदारी को अपनाना विकल्प है और आवश्यकता है। मानव मानस में व्यवस्था का स्थान आज की स्थिति में भी बनी हुई है। **सत्ता शक्ति और केन्द्रित शासन असहअस्तित्व दिशावाही है। जबकि सार्वभौम व्यवस्था समाधान, समृद्धि वर्तमान में विश्वास सहअस्तित्व दिशावाही है।** सहअस्तित्व, अस्तित्व सहज रूप में नित्य प्रभावी है। इसलिए सार्वभौम व्यवस्था जीवन सहज रूप में मानव में स्वीकृत है।

द्रोह का विद्रोह सदा ही मानव मानस में बना रहता है। यही अन्तर्विरोध का तात्पर्य है। यही अन्तर्विरोध किसी स्तरीय शासन के विपरीत कार्यकलापों को प्रवृत्तियों को प्रकाशित कर पाता है। उसी क्षण से विद्रोह रूप में परिणत होता है। ऐसे सभी विद्रोह पुन: शासन प्रतिष्ठा दिशा-वाही होना देखा गया है। इसी विधि से शासन परिवर्तन की घटनाएँ इस धरती के छाती पर गुजर चुकी है। इससे यह स्पष्ट हो चुकी है कि शक्ति केन्द्रित शासन और शासन संघर्ष परिवर्तन के लिए विद्रोह यह सभी प्रक्रियाएँ मानसिकताएँ शक्ति केन्द्रित शासन के धारा से ही दिशा से ही विवश है। अतएव विद्रोह का विकल्प भी सार्वभौम व्यवस्था ऐसी व्यवस्था में भागीदारी की मानसिकता विचार प्रक्रिया ही है। ऐसी मानसिकता जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयतापूर्ण आचरण में प्रतिबद्धता पूर्वक प्रमाणित होती है।

शोषण का सम्पूर्ण स्वरूप धरती का ही शोषण है। धरती में खनिज, वन, वन्य प्राणी और मानव ही शोषित होने का वस्तु है। उल्लेखनीय तथ्य है कि इसमें से **मानव शोषित भी होता है एवं शोषण करता भी है।**

मानव इकाई में से कुछ लोग जिनको ज्यादा शक्तिशाली कहा जाता है, वे ही शोषण करने वालों की संख्या में गण्य है। अन्य सभी शोषित होते हैं। आदिकाल से यह आंकलित तथ्य है कि शक्ति केन्द्रित शासन ही इसका मूल तत्व है और ऐसे शासनाधिकार प्राप्त मुट्ठी भर लोग ही इसके धारक-वाहक है। यही धारक-वाहक शक्ति केन्द्रित शासन को सर्वोपरि होने की मान्यता के आधार पर शोषण कार्य को बुलंद करते जाते हैं। इसको देखने पर पता चलता है कि शासन अपने स्वरूप में जड़ रूप में एक वांङ्गमय के रूप में सभी राज्यों का संविधान दिखाई पड़ती है। यह गलती को गलती से, अपराध को अपराध से और युद्ध को युद्ध से रोकने के आशय सम्पन्न होना सर्वविदित है। दूसरे भाषा से इसी तत्व को इस प्रकार से कह सकते हैं कि गलती, अपराध और युद्ध को रोकना राज्य के लिए सर्वोपरि आवश्यकता और सम्मान है। इसलिए सभी संविधान शक्ति केन्द्रित शासन के ध्वनि में लिप्त है। इसी क्रम में अधिकारों का बंटवारा, केन्द्रीय अधिकार से सूत्रित रहने के क्रम में शासन-व्यवस्था का ताना-बाना का होना देखा गया है। इस प्रकार शासन मानसिकता शक्ति प्रयोग अधिकार सम्पन्नता के साथ ही अधिकारी व्यक्तियों को देखने को मिलता है। इस विधि से अर्थात् शक्ति प्रयोग विधि से प्रताड़ित क्षुब्ध जन मानस में विद्रोहवादी उर्मियाँ अथवा प्रवृत्तियाँ प्रवाहित होना देखा गया है। यही संघर्ष का मूल तत्व है। यह वंशानुषंगीय एकाधिकार प्राप्त राजा के रूप में शासन अर्थात् शक्ति केन्द्रित शासन में और बहुमत प्राप्त अथवा जनादेश प्राप्त जन-प्रतिनिधियों के हाथों शक्ति केन्द्रित शासन संचालन में भी देखा गया है। **इन सभी में सुविधा संग्रह आशातीत आश्वासन और सत्ता-संघर्ष, द्रोह-विद्रोह का प्रकटन बना ही है।**

शक्ति केन्द्रित आधारों पर पंचायती राज्यों, ग्राम पंचायतों, ग्राम समितियों के नाम से, रूप से सोचा गया है। यह सूझबूझ भी यथावत् शक्ति केन्द्रित होने के कारण शासन संघर्ष, द्रोह-विद्रोह प्रकट होना देखा गया। अतएव इन सब का विकल्प सार्वभौम व्यवस्था मानसिकता ज्ञान विवेक विज्ञान पूर्वक सम्पन्न होना ही एक मात्र शरण है। ऐसी शरणस्थली को पाना, सम्पन्न होना, समृद्धि होना, इसका धारक वाहकता में हर व्यक्ति का भागीदार होना ही इसका गति है। ऐसी गति सम्पन्नता ही मानवाधिकार कहलाता है। यही चेतना विकास मूल्य शिक्षा पूर्वक सफल होने का प्रस्ताव है।

मानवाधिकार की चर्चा-परिचर्चा अंतर्राष्ट्रीय अथवा विश्व मंच पर होता हुआ देखने को मिलता है। यह सारे चर्चा पुन: पैसे पर ही आधारित होना देखा गया। दुखी देश समुदाय खासकर परेशानी से घिर जाने पर उन्हें राहत देने, पहुँचाने की कार्य करना चर्चा का प्रधान मुद्दा है। इसके लिए सभी देश सम्मत होते भी हैं। इसी के साथ यह भी चर्चाएँ मानवाधिकार के मंच पर गुजरती हुई देखी जाती है। लोकमानस के पटल पर ही कुछ तथ्यों को ज्ञापित करने का कार्य भी करते हैं। हर देश की सीमाएँ जो बहुदेशों से स्वीकृत रहता है,

उस सीमा रेखाएँ उन्हीं-उन्हीं देशों का संप्रभुता, प्रभुसत्ता प्रभावित देश मानी जाती है। इसका उल्लंघन भी मानवाधिकार का खिलाफ मानी जाती है। कुल मिलकार मानवाधिकार संस्था विपदा-आपदाग्रस्त समुदायों, देशों के निवासियों को राहत पहुँचाने की मंशा और क्रियाकलापों को सम्पन्न करता हुआ देखा जाता है।

आपदा-विपदाएँ सभी देशों में प्रकारांतर से गुजरती ही रहती है। जैसे भूकम्प, असाध्य रोग दरिद्रता, शरीर व्यवस्था दोष (एड्स), युद्ध, बाढ़, चक्रवात और तूफान। ऐसे विपदाओं से घिरे हुए लोगों को आहार, वस्त्र, आवास संबंधी और दवाईयों को उपलब्ध कराने के कार्यक्रम मानवाधिकार का प्रमाण मानी गई है। यथासंभव यह सब कार्यों को सम्पन्न करते भी हैं। इसके लिए सभी देश दान मानसिकता को रखने वाले सभी संस्थाएँ इसमें वित्त सहायता का स्रोत बना हुआ देखने को मिलता है।

मानवाधिकार का हकदार हर मानव का होना ध्वनित होता है। इसके लिए आशय के रूप में सुख-सुविधा के साथ जीना हर मानव को स्वीकृत है। अभी तक सभी देश, सभी समुदायों में यही वादग्रस्त होकर रह गया है। सुविधा के मुद्दे पर हर देश और समुदायों के बीच और हर देश-समुदाय में विविध मानसिकता सम्पन्न व्यक्तियों में सभी का सुविधा और सुख का निश्चयन नहीं हो पाया। यद्यापि विद्वानों के मंचों में चर्चा के रूप में और सभाओं में भाषण के रूप में सुख-सुविधा की बात सुनने को मिलती है कि सबको उपलब्ध होना चाहिए। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक सुख-सुविधा में प्रमाणित स्वरूप और मानसिकता सुस्पष्ट रूप में कहीं भी, किसी भी व्यक्ति में प्रमाणित नहीं हो पाती। इसका तात्पर्य यही हुआ अभी तक हम एक **'सार्वभौम मानव'** जो समाधान, समृद्धि, अभय और सहअस्तित्व को प्रमाणित करता है, उनको पाकर उनके जैसा हर व्यक्ति मानवाधिकार सम्पन्न स्वरूप से ख्यात होना संभव नहीं हो पाया। इसकी आवश्यकता को प्रकारांतर से परिकल्पना में लाते ही रहे और इस मान्यता से शुभेच्छा सम्पन्न संस्थाएँ काम करते रहे हैं कि यथा स्थितियाँ सुख-चैन का आधार है। यथा स्थितियों में जो विविधता है इसके कारणों को कुछ लोग नैसर्गिक मानते है, कुछ लोग इसको कर्मों का फल मानते हैं, कुछ लोग इन घटनाओं को पाप-पुण्य मानते हैं और कुछ लोग इसे राजनैतिक मंशा मानते हैं।

नैसर्गिकता को मानव जागृतिपूर्वक देखने की स्थिति में पता लगता है कि ब्रह्मांडीय किरणों सहित यह धरती ही प्रत्येक व्यक्ति के लिए नैसर्गिक है। ब्रह्मांडीय किरण क्रम में अनंत ग्रह-गोल, सौर व्यूह का परस्पर आदान-प्रदान अथवा परस्परता में प्रतिबिम्ब रहता ही है। हर बिम्ब का प्रतिबिम्ब रहता ही है। प्रतिबिम्ब अपने अस्तित्व को प्रस्तुत करता है। अस्तित्व नित्य वर्तमान, स्थिर और विकास और जागृति निश्चित होने के आधार पर सभी बिम्ब अपने-अपने आकार-प्रकार, वातावरण सहित अर्थात् हर वस्तु का अपना प्रभाव क्षेत्र बना रहता है। इसी आधार पर हर व्यक्ति अपने प्रभाव सीमा सहित एक-दूसरे पर प्रतिबिंबित रहता

ही है। जैसे सूरज, चांद, तारागण इस धरती पर प्रतिबिम्बित रहते हैं और यह धरती इन सब पर प्रतिबिम्बित रहता ही है। हर बिम्ब का सभी ओर प्रतिबिम्बित रहना पाया जाता है। इसी क्रम में उन-उन ग्रह गोलों के प्रभाव के आधार पर आदान-प्रदान क्रम बना रहता ही है। यही ब्रह्मांडीय किरणों का तात्पर्य है। इस धरती पर चारों अवस्था की इकाईयाँ एक-दूसरे के नैसर्गिकता में होना देखा जाता है। **नैसर्गिकता का तात्पर्य निरंतर साथ-साथ रहने-होने के तथ्य को निर्देशित करता है। इस धरती में चारों अवस्थाएँ साथ-साथ हैं।** यह तथ्य स्पष्ट हो चुकी है। इसमें सहअस्तित्व सूत्र निहित है ही। इन्हीं सहअस्तित्व सूत्र के अनुरूप मानव (ज्ञानावस्था की इकाई) जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने की आवश्यकता बनी ही रही है। यह जीवन ज्ञान, अस्तित्वदर्शन विधि से प्रमाणित हो जाती है।

पूर्ववर्ती प्राचीन-अर्वाचीन काल में नैसर्गिकता में भय का ही परिकल्पना कर पाए और वैज्ञानिक विधि से नैसर्गिकता प्रकृति पर विजय पाने की रही। इसका कारण भी उसके पहले रहे आयी भय ही रहा। कोई मानव भय को स्वीकारता नहीं। इसका अभिव्यक्ति भय पर काबू पाने की, अधिकार करने की मंशा से शोषण की ओर गतिशील हो गई। फलत: मानव जाति निर्मम रूप से वन, खनिज का शोषण किया। फलस्वरूप धरती का संतुलन प्रश्नचिन्ह के काँटा पर चढ़ गया।

मानव ही जागृतिपूर्वक धरती का संतुलन को बनाए रख पाता है। भ्रमित होकर धरती के साथ सारा अत्याचार किया। **भय और प्रलोभन दोनों भ्रम का ही द्योतक है।** भय और प्रलोभन से अधिकांश लोग पीड़ित हैं साथ ही सर्वाधिक लोग ग्रसित हैं। यह अन्तर्विरोध का कारण बनी हुई है। इसके आगे आस्थाएँ मानव परिकल्पना में आयी, वह भी भय और प्रलोभन में चक्कर काटता हुआ देखने को मिली। दूसरे भाषा में इसका प्रमाण परंपरा स्थापित नहीं हो पाया। इसीलिए आस्था के नाम से कितने भी प्रयास हुए उनका अंतिम परिणाम भय और प्रलोभन के रूप में गण्य हुआ। इन सभी घटनाओं के चलते मानव में मानवीयता का अनुसंधान अपेक्षित रहा। यह जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान सहज रूप में प्रत्येक मानव के स्वीकृति सहज रूप में विवेक-विज्ञान पूर्वक व्यवहार में प्रमाणित होता है। इस क्रम में मानवीयतापूर्ण आचरण ही मानव का शरण है, गरिमा-महिमा है, जागृति को प्रमाणित करने के लिए परमावश्यक है। प्रत्येक मानव में जीवन ज्ञान पूर्वक अस्तित्व दर्शन ही है। यही सम्पूर्ण ज्ञान, विवेक और विज्ञान सम्मत तर्क विधि से मानवीयतापूर्ण आचरण में निरंतर प्रवर्तित करना पाया जाता है। मानव के सर्वेक्षण से पता लगता है प्रत्येक मानव जागृत होना चाहता है। इस क्रम में मानवीय शिक्षा द्वारा ही इन ज्ञान-विज्ञान विवेक का लोकव्यापीकरण सहज है और आवश्यकता भी है। इन्हीं तथ्यों पर आधारित आवर्तनशील अर्थशास्त्र मानवीयतापूर्ण परंपरा में, से, के लिए प्रस्तुत है। इसी से अथवा इसी विधि से

मानवीयतावूर्ण आचरण, विचारपूर्वक समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व का अनुभव सर्वसुलभ होना भावी और समीचीन है।

विविधता का अर्थात् धनी-निर्धनी, विद्वान-मूर्ख, बली-दुबर्ली, ज्ञानी-अज्ञानी, इन चारों विधाओं में मान्य विविधताएँ कर्मों के फल के कारण है, ऐसा मानना देखा गया है। ऐसी मान्यता विशेषकर रहस्यमयी आदर्शवादी विचारों परिकथाओं के रूप में देखने को मिली। यह परंपरा में स्थान बनाए रखा था।

हर वस्तु जब क्रियाशील है, मानव को निष्क्रिय रहना संभव है ही नहीं। मानव भी क्रियाशील है। मानव में कर्मठता को देखने के लिए ऊपर कहे चार रूपों में एक-दूसरे को देखने की इच्छा सदा बना ही रहता है। इसे मानवाभिलाषा भी कहा जा सकता है। क्योंकि हर व्यक्ति समृद्धि, समाधान, अभय, सहअस्तित्वशील रहना चाहता ही है। यही सर्व जनमानस का शुभेच्छा है। इन शुभेच्छाओं के आधार पर ही एक दूसरे से अपेक्षा भी करता है। इन चारों प्रकार से आशित शुभेच्छाएँ सर्व मानव में प्रमाणित होने पर्यन्त अनुसंधान स्रोत प्रभावित रहना पाया जाता है। सर्व मानव में अभी प्रमाणित होने की आवश्यकता बलवती हुई है। इसका कारण सब पहले से ज्ञात कर चुके हैं।

अभी तक विविध प्रकार की परंपराएँ स्थापित रहते हुए भी सार्वभौम शुभ किसी परंपरा में स्थापित नहीं हुई। इसलिए किसी परम्परा को मानवीयतापूर्ण परम्परा में ध्यान देने की आवश्यकता समीचीन हुई। हर परम्परा प्रकारान्तर से भ्रमित रहने के उपरांत ही असमानताएँ भ्रमात्मक कर्मों का प्रेरणा और प्रभाव शिक्षा, संस्कार, संविधान, व्यवस्था और प्रचार तंत्र के मंशा पर आधारित रहती है। अंततोगत्वा संग्रह और भोग ही मानव परंपरा को हाथ लगी। इन दोनों मुद्दों पर ज्यादा और कम की बात प्रभावित होता ही है। इन दोनों विधाओं में तृप्ति बिन्दु कहीं मिलता नहीं है। यही तथ्य परंपरागत उक्त पाँचों प्रकार के प्रयास भ्रमात्मक होने का प्रमाण है। उल्लेखनीय घटना यही है सर्वमानव शुभ चाहते हुए भी भ्रम से ग्रसित हो जाता है। इसी भ्रमवश ज्यादा और कम वाला भूत भय और प्रलोभन के आधार पर ही बन बैठा है। इसका निराकरण, तृप्ति स्थली को परम्परा में पहचानना ही है, निर्वाह करना ही है। जानना-मानना ही है।

इसके तृप्ति स्थली को हर मानव इस प्रकार देख सकता है और जी सकता है कि स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवसाय (उत्पादन) में स्वावलंबी, व्यवहार में सामाजिक होने के उपरांत व्यक्ति स्वायत्त होता है और परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होता है। यही वांछित, आवश्यकीय, सार्वभौम मानव का स्वरूप और गति स्पष्ट हो जाती है। **परिवार मानव में राग-द्वेष का पूर्णतया उन्मूलन हो जाता है। समझदारी का स्रोत मानवीयता पूर्ण शिक्षा-संस्कार ही है। जागृति के अनन्तर भ्रम का प्रभाव निष्प्रभावी होना स्वाभाविक है। भ्रमवश ही राग द्वेष से मानव पीड़ित रहता है।** इस बात का

सम्मति प्राचीन काल से भी स्वीकृत है। भ्रम निवारण की अथवा जागृति के लिए मार्ग प्रशस्त न होने के फलस्वरूप निषेधनी को बताकर ज्ञान होने की आशा बंधाए रखे थे। ऐसी आशा के अनुरूप घटनाएँ घटित नहीं हो पाई, क्योंकि जागृति की आवश्यकता रही।

सम्पूर्ण भ्रम का विकल्प अनुसंधान-शोध क्रम में ही समीचीन रहा है। प्रत्येक मानव अस्तित्व में होते हुए अस्तित्व ज्ञान ही न हो पाना, अर्थात् अस्तित्व समझ में न आना, न आने का प्रमाण परंपरा में ख्यात, प्रख्यात प्रमाणित न हो पाना। हर मानव वर्तमान में होते हुए नित्य वर्तमानता को स्वीकार नहीं पाना, जीवन हर मानव में कार्यरत रहते हुए जीवन ज्ञान सम्पन्न नहीं हो पाना प्रधानत: यह तीन बिन्दुएँ स्पष्ट नहीं हो पाना ही सम्पूर्ण प्रकार के परम्परा में भ्रम का कारण रहा। मानव का ही अपेक्षा के अनुरूप अब हम जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान पूर्वक जागृति का प्रमाणित कर सकेंगे। जागृति का प्रमाण मानवीयतापूर्ण आचरण ही है। मानवत्व का प्रमाण भी यही है। मानव परंपरा का सूत्र भी यही है। मानव में मानवीयतापूर्ण सूत्र ही परिवारमूलक स्वराज्य में वैभवित होना अति समीचीन हो गई है। इसके लिए भी यही ज्ञान, दर्शन और आचरण यह सभी उपलब्धियाँ अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित विधि से सहज सुलभ हुआ है।

परिवार मानव का स्वरूप उसका गति के संबंध में हम स्पष्ट हुए हैं। परिवार मानव का स्वभाव-गति परिवार में प्रमाणित होना ही है। परिवार में प्रमाणित होने का तात्पर्य परिवार में सहअस्तित्व, परिवार में समाधान, समृद्धि सम्पन्न रहने से है। इसके फलस्वरूप परिवार में समाहित सभी व्यक्तियों के साथ परस्पर पूर्ण विश्वास ही परिवार का स्वरूप है। ऐसा स्वरूप अपने आप में एक गति का आधार बनना विकास-सहज है। परिवार का गति एक ग्राम परिवार का स्वरूप प्रदान करता है, फलस्वरूप सम्पूर्ण ग्राम वासियों बनाम परिवारों में, से, के लिए उक्त चारों प्रकार का शुभ बहने लगती है। इससे यह भी पता लगता है, शुभ रूप में ही नित्य वैभव एवं गति है। इसके विपरीत भ्रमित प्रयास कुण्ठित, निराशित, प्रताड़ित होना अवश्यंभावी है। यह घटना पूर्ववर्ती भ्रमित परम्पराओं के चलते मानव जाति भुगत गया है।

यह समीक्षा उक्त प्रकार से शुभ की स्थिति-गति क्रम विश्व परिवार तक संभाव्य है और आवश्यकता भी है। तभी इस धरती का संतुलन विधि, सहअस्तित्व विधि, अखण्ड समाज विधि, सार्वभौम व्यवस्था विधि, उक्त शुभ परंपरा में सार्थक होना स्पष्टतया विदित होता है।

परिवार और व्यवस्था अविभाज्य है। परिवार हो, व्यवस्था नहीं हो और व्यवस्था हो परिवार नहीं हो, ये दोनों स्थितियाँ भ्रम का द्योतक है। पूर्ववर्ती आदर्शवादी और भौतिकवादी विचारों के आधार पर सभी शक्ति केन्द्रित शासन अवधारणाएँ परिवार के साथ सूत्रित होना संभव नहीं हो पाई। हर परिवार में कुछ संख्यात्मक

व्यक्तियों को और उनके परस्परता में सेवा, आज्ञा पालन, वचनबद्धता को पालन करता हुआ, निर्वाह किया हुआ भी उल्लेखित है, द्रष्टव्य है। इनमें श्रेष्ठता की ऊचाइयाँ भी उल्लेखों में दिखाई पड़ती है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इनमें से किसी आदर्श का गति अनेक नहीं हो पायी। यही बिन्दु में हम और एक तथ्य पर नजर डाल सकते हैं। बहुतायत रूप में अच्छे आदमी हुए हैं और अच्छी परम्परा नहीं हो पायी। क्योंकि जबसे मानव समुदायों में राज्य और धर्म की दावा समायी है तब से अभी तक शक्ति केन्द्रित शासन ही रहा है। इसकी गवाहियाँ धर्म संविधान और राज्य संविधान ही है। ऐसे धर्म और राज्य संविधान की मंशा के बारे में हम पहले से स्पष्ट हो चुके हैं। इन दोनों प्रकार संविधानों के प्रभावित रहते भय और प्रलोभन का ही प्रचार होना समीचीन प्रवर्तन रहा है। कला, साहित्य, शास्त्र, विचार, दर्शन सभी भय और प्रलोभन से भरे पड़े हैं अथवा इसी के परस्त होकर बैठ गए हैं। इन स्मरणों के साथ साथ उल्लेखनीय तथ्य इतना ही है कि इस धरती पर स्थित मानव परंपरा में भय और प्रलोभन के रहते, इस धरती का संतुलन-ज्ञान सम्पन्न होना, मानव द्वेष विहीन अथवा राग द्वेष विहीन परिवार का होना, अखण्ड समाज होना, सार्वभौम व्यवस्था होना सर्वथा संभव नहीं है। इसके स्थान पर इसी के पीछे विद्वता का परिकल्पना ज्ञान-रसायन, कर्मों का दुहाई, पाप-पुण्य का नारा ही हाथ लगा रहेगा अथवा सभी मानव मन में घर किया रहेगा। फलस्वरूप शुभ के स्थान पर अशुभ घटनाएँ दुहराते ही रहेगा। **इस ढंग से परम्परा भ्रमित रहने के आधार पर मानव अपने में से जागृत होने का रास्ता समाप्त प्राय होता है। यह सब स्थितियाँ रहते हुए भी कोई न काई मानव चिंतन को आगे बढ़ाने, विकल्प को प्रस्तुत करने का यत्न-प्रयत्न करता है। इसका प्रमाण यही है आदर्शवाद का विकल्प भौतिकवाद के रूप में आयी।** आदर्शवाद और भौतिकवाद का मूल तत्व व्यवस्था के रूप में शक्ति केन्द्रित शासन ही रहा है। **अतएव इन दोनों के विकल्प के रूप में अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ही सहअस्तित्ववादी, सर्वतोमुखी समाधानपूर्ण व्यवस्था को अध्ययनगम्य होने के लिए प्रस्तुत है और मानवीयतापूर्ण आचार संहिता रूपी संविधान को समाधान केन्द्रित व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया है।** अतएव कर्मों के आधार पर मानव का विविधताएँ पाप-पुण्य, स्वर्ग-नर्क शक्ति केन्द्रित शासन में भागीदारी, रहस्यमूलक, लक्षणात्मक धर्म संविधान वह भी शक्ति केन्द्रित विधि से कल्पित ढांचा-खांचा में भागीदारी, व्यापार जैसा शोषण में भागीदारी, भ्रमात्मक साहित्य कला में भागीदारी, भ्रमात्मक आस्थाओं में भागीदारी, लाभोन्मादी उत्पादन कार्यों में भागीदारियों के आधार पर पाप-पुण्य का व्याख्या करते रहे हैं। इसी के साथ-साथ रहस्य में छुपी हुई सत्य, ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, देवी-देवता जैसी कल्पनाओं में प्रमाणित होने के लिए प्रकल्पित भांति-भांति साधना, अभ्यास, योग, यज्ञ, जप, तप, पूजा, पाठ, प्रार्थना, गायन क्रियाकलापों को भक्ति और विरक्ति के परिकल्पित रेखा सहित किए जाने वाले जितने भी कार्यकलाप हैं, ये सबको पुण्यशील कर्म मान लिया गया है। जानने की क्रिया अभी तक शेष है। इसी के साथ यह भी

निर्देशन अथवा इंगित तथ्य यही है ऐसी पुण्यशीलों के सेवा-सुश्रुषा, अपर्ण-समपर्ण से भी पुण्य मिलेगा और पुण्यशीलों से पुण्य बंटती है, ऐसे उल्लेख और आश्वासनों को पूर्ववर्ती शास्त्र, धर्मशास्त्र परिकथाओं में उल्लेख किया है।

यहाँ **ध्यानाकर्षण का तथ्य यह है कि सहअस्तित्व ही परम सत्य है। अस्तित्व स्वयं में व्यापक सत्ता में संपृक्त प्रकृति है। अस्तित्व ही सहअस्तित्व के रूप में नित्य वैभव है। सहअस्तित्व में ही नित्य समाधान है।** यह सम्पूर्ण ज्ञान और दर्शन इन बिन्दुओं पर देखा गया है सहअस्तित्व में जीवन ज्ञान, और सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान। इसी के फलस्वरूप मानवीयतापूर्ण आचरण सर्वसुलभ होना, दूसरे भाषा में चेतना विकास मूल्य शिक्षा संस्कारपूर्वक लोकव्यापीकरण होना सहज है। **जीवन ज्ञान के पश्चात् प्रत्येक मानव जीवन का अमरता को, नित्यता को पहचान पाता है।** फलस्वरूप जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव परंपरा को होना प्रमाणित हो जाता है। इसी क्रम में शरीर रचना भौतिक-रासायनिक द्रव्यों से सम्पन्न होना देखा जाता है। इसी आधार पर शरीर की भंगुरता अथवा विरचना स्वीकृत हो जाता है। और जीवन ही दृष्टा, कर्ता, भोक्ता होने का तथ्य हर मानव में सुदृढ़ होता है। फलस्वरूप सर्वतोमुखी समाधान स्रोत और कारण जागृत जीवन ही होना स्पष्ट होता है अथवा **सर्वतोमुखी समाधान का धारक वाहक जीवन ही होना स्पष्ट हो जाता है। यह सर्वसुलभ होना ही जागृत परंपरा का द्योतक है।** इस प्रकार जीवन की नित्यता समझ में आने के फलस्वरूप शरीर को छोड़कर जीवन ही अपने स्वरूप में देवी-देवता, भूत-प्रेत आदि नामों से जाने जायेंगे। यह देवी-देवता संबंधी रहस्य उन्मूलन होने का सहज विधि फलस्वरूप तत्सम्बन्धी भ्रम से मुक्त होने का सुख स्वाभाविक रूप में समीचीन है। मानव सहज रूप में रहस्य से मुक्त होने की अभिलाषाएँ होना पाया जाता है।

सत्तामयता में ही सम्पृक्त प्रकृति डूबा, भीगा और घिरा हुआ है। यह अविभाज्य रूप में नित्य वर्तमान है। यही परम सत्य सहज स्वरूप है। सत्तामयता व्यापक, पारगामी, पारदर्शी के रूप में नित्य विद्यमान है। यही ब्रह्म, ईश्वर, शून्य, असीम अवकाश, विस्तार आदि नामों से भी इंगित होता है। यह वस्तु सर्वत्र समान रूप में विद्यमान होना दिखाई पड़ती है। यह हर परस्परता में, एक-एक के परस्परता के मध्य में, और प्रत्येक एक के सभी ओर दिखाई पड़ती है। यह नित्य सत्ता संबंधी रहस्य और भ्रम समाप्त होना पाया जाता है। अतएव अस्तित्व स्वयं में नित्य वर्तमान, विद्यमान, विकास, जागृति, रचना, विरचना के रूपों में दृष्टव्य है। अस्तित्व में दृष्टा पद में जागृत जीवन ही है। सत्ता व्यापक पद में, प्रकृति चार पद में दृष्टव्य है। इन सबका दृष्टा जागृत जीवन पूर्वक जीने वाला मानव ही है। **अस्तु हर मानव जागृत परंपरा में अर्पित होकर**

स्वयं जागृत होना स्वाभाविक है। परंपरा जब तक भ्रमित रहेगी तब तक परंपरा में अर्पित हर मानव संतान भ्रमित रहेगा ही।

हर परंपराएँ शिक्षा विधा में, संस्कार विधा में, संविधान विधा में और व्यवस्था विधा में अपने को निर्भय अथवा श्रेष्ठ मानते हुए चलते हैं जबकि ऐसा हुआ नहीं रहता है। इसका साक्ष्य अंतर्विरोध और बाह्य विरोध है, मतभेद और वाद-विवाद ही है। इससे मुक्त होने की अपेक्षा सब में है। अर्थात् वाद-विवाद आदि विसंगतियों से किंवा युद्ध से भी, शोषण से भी मुक्ति चाहते हैं। खूबी यही है कि ऐसा शुभ चाहने वाले हर समुदाय अपने को शुभ का आधार मान लेते हैं, उन्हीं-उन्हीं के अनुसार शुभ घटित हो ऐसा सोचते हैं। जैसे युद्ध तंत्र में बुलंदी पर पहुँचा हुआ देश युद्ध न करने का उपदेश देता है। बाकी सब यह सोचते हैं यह हम पर शासन करना चाहता है या हमको धर दबोचना चाहता है। संग्रह में पारंगत और संग्रह में लिप्त, भ्रष्टाचार में लिप्त व्यक्ति क्रम से संग्रह भ्रष्टाचार विरोधी भाषण करते हैं और संग्रह के पक्ष में मन, वचन, कार्यों को बुलंद किए रहते हैं। इसी प्रकार भ्रष्टाचार में सराबोर धर्माध्यक्ष, राज्याध्यक्ष, राष्ट्राध्यक्ष, शिक्षाध्यक्ष, ज्ञानाध्यक्ष जैसे लोग सदा संग्रह में लिप्त रहते ही हैं। और संसार को कड़ी मेहनत, ईमानदारी का पाठ सुनाते हैं और त्याग और वैराग्य का उपदेश देते फिरते हैं। जबकि गहराई से सोचने पर कितनी विडम्बना की बात है कि व्यापार तंत्र में अमोघ सफलता प्राप्त चोटी की संग्रह समर्थ व्यापारी विद्वान संग्रह की निरर्थकता को बयान करते रहते हैं। कायिक, वाचिक, मानसिक रूप में संग्रह को दिन में दूनी रात में चौगुनी बनाने की सार्थक तिकड़म, तिकड़म का तात्पर्य अपने दूषित मानसिकता को सफल बनाने के तरीकों, जिसको वह स्वयं विरोध करता है, में लगे रहते हैं। शिक्षाविद भी संग्रह तंत्र से जकड़ चुके हैं। यह अपने समय को बेचकर आजीविका चलाने के लिए तत्पर हो गए हैं। इस प्रकार शिक्षा-व्यापार, धर्म-व्यापार, राज्य-व्यापार, वस्तु-व्यापार और व्यापार में अधिकार प्राप्त पारंगत सभी व्यक्ति संग्रह के चंगुल में ही जकड़े हुए दिखाई देते हैं। अपवाद रूप में कोई-कोई संग्रह समर्थ न हो पाए हो। ऐसे लोगों का खास आदर्श कम से कम लोगों में अंकित हुआ हो सकता है। सर्वाधिक लोगों का मन में सर्वाधिक संग्रह समर्थ लोगों का ही कार्य चित्र बसता ही जा रहा है। कलाकारों को कहना ही क्या है? भिखारी से भिखारी का अभिनय करने को तैयार है और ज्यादा से ज्यादा पैसा-धन चाहिए। इन कलाकारों से मार-कूट, दहाड़-विध्वंस, व्यापार-प्यार में पागल होने वाले गाने, जितने भी द्रोह-विद्रोह का अभिनय, त्याग, तपस्या का अभिनय एक ही व्यक्ति से करा ली जाए, उनको सिर्फ पैसा चाहिए। इनके संग्रह जब तक धर्म, राज्य, वस्तु, व्यापारियों, बिचौलियों से संग्रह शिखर उपर नहीं गया तब तक ये चैन से कोई अभिनय नहीं कर पाते हैं और आगे की बेचैनी बनी ही रहती है। अतएव सभी आयामों में कार्यरत व्यक्ति का आदर्श उन्नीसवीं शताब्दी से संग्रह युग सर्वाधिक प्रचुर होता आया और बीसवीं शताब्दी से प्रखर होता हुआ देखा गया। उसके पहले राजगद्दी और धर्मगद्दी

में कोष संग्रह की बात रही। इन दोनों में से सर्वाधिक संग्रह राजकोष में होना पाया जाता रहा। बीसवीं शताब्दी में वस्तु व्यापार, बिचौलियों का संग्रह बुलंद हुआ। बीसवीं शताब्दी के मध्य से ही बिचौलियों और कलाविदों का तेवर ज्यादा संग्रह की ओर तीव्रता से बढ़ा। इसी के साथ-साथ विश्व सुन्दरियों की मानसिकताएँ संग्रह समर्थता की ओर प्रवृत्तशील होना देखा गया। ये सब कहानी कहने के मूल में एक ही बात है जो-जो स्मरणीय तबके ख्यात होने वाले पद में आसीन व्यक्ति कुल मिलाकर संग्रह के चक्कर में ही चक्कर काटता हुआ दिखाई पड़ते हैं। अन्य सामान्य सभी व्यक्ति इन्हीं का लक्ष्यों, रहन-सहन, भोग-बहुभोग आदि क्रियाकलापों से प्रभावित प्रवृत्त होना पाया गया। इसी विधि से सर्वाधिक जन मानस में संग्रह और भोगेच्छाएँ तीव्रता से प्रभावित हुई। इससे यह तथ्य को स्मरण कराना रहा कि प्रकारान्तर से कोई भी संग्रह करे इसी धरती का वस्तु या वस्तु का प्रतीक पत्र मुद्रा को ही होना देखा गया। संग्रह के साथ-साथ द्रोह-विद्रोह-शोषण-युद्ध मानसिकता बना ही रहता है। यह मानसिकता कितने भी ऊँचाई तक पहुँच गई हो पर अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र व्याख्या नहीं बन पाई। जबकि सार्वभौम शुभेच्छा और अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था की प्यास बना ही है। इसलिए लाभोन्मादी अर्थशास्त्र के विकल्प को अवगाहन करना आवश्यक होगा।

मानवीय शिक्षा-संस्कार से स्वायत्त मानव, स्वायत्त मानवों से स्वायत्त परिवार, स्वायत्त परिवार व्यवस्था से स्वाायत्त ग्राम परिवार व्यवस्था, ग्राम समूह परिवार व्यवस्था क्रम में विश्व परिवार व्यवस्था को पाना सहज है। मानवीयतापूर्ण शिक्षा की संपूर्णता अपने आप में जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान ही है। अपने आप का तात्पर्य मानव अपना ही निरीक्षण-परीक्षणपूर्वक ज्ञान सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, आचरण सम्पन्न होने से है। दूसरी विधि से अस्तित्व सहज सहअस्तित्व में परमाणु में विकास, गठनपूर्णता, जीवनी क्रम, जीवन का कार्यकलाप, जीवन जागृति क्रम, जीवन जागृति, क्रियापूर्णता उसकी निरंतरता और प्रामाणिकता (जागृति पूर्णता) उसकी निरंतरता दृष्टापद से है। इस प्रकार मानवीय शिक्षा का तथ्य अथ से इति तक समझ में आता है। इसी समझदारी के आधार पर हर मानव अपने में परीक्षण, निरीक्षण करने में समर्थ होता है। फलस्वरूप स्वायत्त परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक हम अच्छी तरह से सार्वभौमता, अक्षुण्णता को अनुभव कर सकते हैं। इस विधि से सेवा, व्यवस्था के अंगभूत कर्तव्य के रूप में, व्यवस्था दायित्व के रूप में, उत्पादन आवश्यकता, उपयोगिता, सदुपयोगिता के रूप में, परिवार व्यवहार संबंध, मूल्य, मूल्यांकन अर्पण, समर्पण और उभयतृप्ति के रूप में वर्तमान होना पाया जाता है। यह अधिकांश मानव में अपेक्षा भी है। इसी विधि से धरती की संपदा संतुलन विधि से सदुपयोग होना स्वाभाविक है, अर्थ का सदुपयोग होना ही आवर्तनशीलता है।

व्यवस्था क्रम में ही परिवार और समाज अपने अखण्डता को पूर्ण विश्वास, सहअस्तित्व, समृद्धि, समाधान सहित प्रमाणित कर पाता है। उपर कहे हुए सम्पूर्ण सभाओं के स्वरूप और विस्तार के आधार पर कर्तव्य और दायित्व, परिवार व्यवहार परंपराएँ मानवीयतापूर्ण विधि से निर्वाह होना स्वाभाविक है। निर्धारित होना, स्वीकृत होना जागृति के आधार पर होता है। जागृति का स्रोत जागृत मानव परंपरा ही होना निश्चित है। इसी से अर्थात् इस जागृत परंपरा विधि से ही संग्रह, द्वेष, भोग-लिप्सा, शोषण, घूसखोरी, बिचौलियापन, प्रदूषण, जनसंख्या वृद्धि सभी विधाओं से आंकलित असमानताएँ सर्वथा दूर होकर मानवत्व के आधार पर हर मानव के साथ सम्पूर्ण मानव का समानता, स्वायत्त परिवार के आधार पर समाधान, समृद्धि सहज तृप्ति में समानता, विश्व मानव परिवार में भागीदारी के आधार पर सहअस्तित्व और वर्तमान में विश्वास, सार्थक हो जा जाता है। फलत: ग्राम और क्षेत्रादि धरती, उससे होने वाली सम्पूर्ण साधन स्रोतों का निर्धारण के आधार पर कितने संख्या में जीने योग्य ग्राम और क्षेत्र हैं अथवा समृद्धि पूर्वक जीने योग्य ग्राम और क्षेत्र हैं, यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। इसी के साथ-साथ जन बल पर और तकनीकी बल पर आधारित युद्ध विचार का उन्मूलन होगा, अभयता पूर्ण अर्थात् वर्तमान में विश्वासपूर्ण विधि से सर्वमानव जीने देने और जीने की विधि समीचीन है।

उपयोग और सदुपयोग, महत्वाकाँक्षा और सामान्य आकाँक्षा संबंधी वस्तुओं का नियोजन ही है व्यवस्था का प्रमाण। यह सार्वभौम व्यवस्था क्रम में होने वाली नित्य प्रमाण है। यही अखण्ड समाज और परिवार मानव विधि से अर्पण-समर्पण विधि से देखा गया है। **सम्पूर्ण अर्पण-समर्पण क्रम से शिष्ट मूल्यों में वस्तु मूल्यों को, स्थापित मूल्य में शिष्ट मूल्यों को, मानव मूल्यों में स्थापित मूल्यों को, जीवन मूल्यों में मानव मूल्यों को अर्पित-समर्पित होता हुआ क्रम में देखा गया है।** इसे हर व्यक्ति देख सकता है। जीवन मूल्य का स्वरूप सुख, शांति, संतोष और आनंद है। यह मन और वृत्ति के सामरस्यता में सुख, वृत्ति और चित्त में सामरस्यता का स्वरूप शांति, चित्त और बुद्धि में सामरस्यता का स्वरूप संतोष तथा बुद्धि और आत्मा में सामरस्यता का स्वरूप ही आनंद सहज नामों से जाना जाता है। अनुभवमूलक बोध को आनंद के रूप में पहचाना गया है। इसी क्रम में अनुभवमूलक क्रम में किया गया चिंतन, तुलन, सहज रूप में ही जीवन के अंर्तसंबंधों में सामरस्यता फलस्वरूप आनंद, संतोष, शांति और सुख जीवन मूल्यों के रूप में वैभवित होना पाया जाता है। यही जीवन मूल्य व्यवहार में मानव लक्ष्य के रूप में समाधान, समृद्धि, अभय और सहअस्तित्व में अनुभव सहज प्रमाण के रूप में प्रमाणित होना पाया गया है। यही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र है।

उपयोगिता सहज प्रवृत्ति, कार्य और प्रयोजन ऊपर कहे हुए तथ्यों के आधार पर स्पष्ट हो चुकी है और उक्त विश्लेषणों से और तथ्यों को निर्देशित करने के प्रयासों से यह भी स्पष्ट हुई है कि मानव में, से, के लिए अर्थशास्त्र का अध्ययन है। मानव का सार्थक स्वरूप समाधान, समृद्धि, अभय और सहअस्तित्व एवं उसकी निरंतर गति ही है। मानव परंपरा का नित्य गरिमा और महिमा स्वरूप अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था ही है। इन्हीं में भागीदारी प्रत्येक व्यक्ति में, से, के लिए दायित्व और कर्तव्य रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। यही प्रत्येक मानव वर्तमान में विश्वासपूर्वक जीने की कला है। अतएव यही निष्कर्ष सुस्पष्ट है **स्वयं व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के क्रम में ही अर्थशास्त्र का चिंतन होना, अध्ययन होना और जिसका लोकव्यापीकरण होना मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा के लिए अनिवार्य स्थिति है।** मानव से सम्पादित होने वाली अर्थात अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन के रूप में व्यक्त होने वाले संपूर्ण व्यवहार कार्यकलाप, जीने की कला है। ऐसे जीने की कला में उपयोगिताएं आवश्यकता के आधार पर प्रसवित होता है। प्रसवित होने का तात्पर्य स्वयं से, स्वयं में, स्वयं के लिए स्फूर्त होने की क्रिया से है।

संपूर्ण आवश्यकतायें परस्परता क्रम में ही आशा, विचार, इच्छा ऋतम्भरा और प्रामाणिकता के रूप में प्रमाणित होती है। अभी तक जितने भी आवश्यकताओं का बोध हुआ है सकारात्मक पक्ष में आहार, आवास, अलंकार, दूरश्रवण, दूरदर्शन, एवं दूरगमन संबंधी वस्तुएं हैं। यही सब अथ से इति तक मात्रा और गुणवत्ता सहित उत्पादन का सूत्र है। इसके लिए सम्पूर्ण सूत्र मानव से ही प्रतिपादित हुई है। वस्तुओं को संग्रह, भोग, अतिभोग की ओर प्रयोग करने का कार्य मानव विगत कई शताब्दियों से करता आया है। इसके लिए **लाभोन्मादी अर्थ चिंतन को 'धन का विज्ञान' के नाम से लोक व्यापीकरण किया। ऐसा लाभोन्मादी अर्थ चिंतन समाज-रचना और व्यवस्था का आधार बिन्दु नहीं बना अपितु संघर्ष का आधार बना।** संघर्ष विधि से संपूर्ण वस्तुओं का अपव्यय होना भावी हो गया। इसी कारणवश मानव शुभ चाहते हुए अशुभ के लिए प्रवर्तनशील होने विवश रहा। और संघर्ष को अपना लिया।

भ्रमित रहने की विवशता फलस्वरूप लाभोन्मादी, भोगोन्मादी और कामोन्मादी प्रवृत्तियों में ग्रसित होना पाया जाता है। इन्हीं उन्मादों की ओर प्रवर्तित करने की क्रियाकलापों को विद्वता, कलाकारी, किंवा नेतृत्व भी मान लिया गया है। अस्तु, व्यक्ति में अंतर्विरोध, उसका स्रोत सुस्पष्ट होने के उपरान्त परिवार में अंतर्विरोध, मतभेद और द्वेष के रूप में; समुदायों की परस्परता में मतभेद विवाद और संघर्ष में ग्रसित रहना हम देख चुके हैं, सर्वविदित है। इसीलिए उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनशील विधियों का अध्ययन आवश्यक और अनिवार्य बन चुकी है।

उपयोगिता-सदुपयोगिता-प्रयोजनशीलता का चित्रण

वस्तुएं :

1. **उत्पादित वस्तु की परिभाषा:** समय बद्ध विधि से निपुणता कुशलता व पांडित्य पूर्वक प्राकृतिक ऐश्वर्य पर किया गया श्रम नियोजन पूर्वक पाया गया फलन-उपयोगिता सुंदरता सम्पन्न वस्तुयें।
2. **पांडित्य की परिभाषा:** जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयतापूर्ण आचरण में पारंगत प्रतिष्ठा।
3. **समयबद्ध नियोजन की परिभाषा:** निश्चित समय में पहचाना गया प्राकृतिक ऐश्वर्य पर निपुणता, कुशलता का नियोजन करना।
4. **समय -** क्रिया की अवधि = काल = समय

क्रिया का गणना कार्य को मानव में, से, के लिए किया जाना देखा। इस प्रकार उत्पादन में भागीदारी मानव में, से, के लिए होना स्पष्ट है।

उपयोगिता - शरीर पोषण, संरक्षण समाज गति में तन, मन, धन का नियोजन।

सदुपयोग - अखण्ड समाज गति में अर्थात् संस्कृति-सभ्यता गति में नियोजन-प्रयोजन। व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी में किया गया तन-मन-धन रूपी अर्थ का नियोजन।

परिवार मानव के रूप में जीने देकर जीने की कला में वस्तुओं का सटीक उपयोग समझ में आता है। कोई भी वस्तु का उपयोग तन, मन के बिना होना संभव होता नहीं है। **अतएव उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशील विधि में तन, मन, धन की अविभाज्यता होना आवश्यक है।**

सदुपयोगिता को इस प्रकार से देखा गया है कि हम परिवार मानव के रूप में मानव संस्कृति-सभ्यता में नियोजित अर्थ सदुपयोग है, जी सकते हैं अर्थात् व्यवस्था में जीना बनता है, समग्र व्यवस्था में भागीदारी की आवश्यकता बना ही रहता है। क्योंकि अखण्ड समाज रूप, संरचना क्रम में ही सार्वभौम व्यवस्था समीचीन होना पाया जाता है यथा ग्राम परिवार और सभा। सभा का कार्यक्रम व्यवस्था के रूप में गण्य हो पाता है। उसमें संपूर्ण परिवार के भागीदारी का सूत्र स्थापित हुआ रहता है। इसी क्रम में विश्व परिवार सभा तक पहुंचना सम्भव है। स्वराज अर्थात् मानव अपने मानवीयतापूर्ण वैभव को प्रमाणित करने का कार्यक्रम और उसकी निरंतरता क्रम में ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था को पाना संभव है।

प्रयोजनशीलता स्वरूप पीढ़ी से पीढ़ी में परम त्रय को प्रमाणित करने के क्रम में कार्यक्रम के साथ-साथ अथवा प्रमाण गति क्रम में, तन, मन, धन का नियोजन परम प्रयोजन है।

इस प्रकार उपयोगिता सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता पूर्वक कार्य स्वरूप प्रयोजन स्पष्ट है।

उक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो चुका है कि मानव मानवीयतापूर्वक ही तन, मन, धन रूपी अर्थ का उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता के अर्थ में नियोजित कर पायेगा। मानव ही अमानवीयता पूर्वक भोग, अतिभोग, बहुभोग पूर्वक तन, मन, धन का अपव्यय करता है। इतना ही नहीं संग्रह-द्वेष, शोषण, युद्ध के लिए मानव अपने तन, मन, धन रूपी अर्थ का अपव्यय करता ही है।

मानवीयतापूर्ण विधि से स्वायत्त मानव अपने स्वरूप में ही सद्व्ययता और उसके प्रमाणों का धारक-वाहक होना बनता है। इसका मूल तत्व स्वयं पर विश्वास होना ही देखा गया है। स्वयं पर विश्वास होने के मूल में जीवन ज्ञान और अस्तित्व दर्शन ही आधार बिन्दु के रूप में दो ध्रुव स्पष्ट हो जाते हैं क्योंकि अस्तित्व ही स्थिरता के रूप में परमाणु में विकास और जागृति निश्चित है। इसमें अर्थात् मानवीयतापूर्ण विधि में मानव का वर्चस्व अर्थात् गरिमा-महिमा का स्रोत जागृति ही है। जागृति का प्रमाण अस्तित्व में प्रत्येक-एक व्यवस्था के रूप में कार्यरत रहने और समग्र व्यवस्था में भागीदारी सूत्र में सूत्रित रहने की सत्य में जानना-मानना-पहचानना-निर्वाह करना ही है। अस्तित्व में इस तथ्य के प्रति तभी संभव होना पाया गया कि जीवन ज्ञान स्पष्टतया हमें अनुभवमूलक विधि से प्रमाणित होने के रूप में देखा गया। इस प्रकार जागृति का तात्पर्य सहअस्तित्व में अनुभव मूलक मानसिकता भी होना स्पष्ट है। जबकि अनुभव मूलक विधि से यह स्पष्ट है कि जीवन के मूल बलों का नाम आत्मा, बुद्धि, चित्त, वृत्ति और मन है। इनका स्थिति कार्य रूप अनुभव-प्रमाण, बोध, चिंतन, तुलन और आस्वादन क्रियाएं हैं। यह प्रत्येक मानव में प्रमाणित होने का स्रोत और व्यवस्था है। यही तथ्य मानव अपने में जागृति को आंकलित करने का स्रोत जागृत मानव परंपरा ही है। यही अनुभव सम्मुच्चय का भी स्वरूप है। मन वृत्ति का, वृत्ति चित्त का, चित्त बुद्धि का, बुद्धि आत्मा का अनुभव करता है। क्योंकि **हर आस्वादन तुलन के कसौटी में, हर तुलन चिंतन (साक्षात्कार) के कसौटी में, संपूर्ण साक्षात्कार, बोध के कसौटी में, समग्र बोध अनुभव के कसौटी में, संपूर्ण अनुभव अस्तित्व सहज सहअस्तित्व के कसौटी में संतुलित, नियंत्रित होने की जीवन सहज कार्यकलाप को देखा जाता है। यही प्रत्येक व्यक्ति में स्वनियंत्रण का और संतुलन का सूत्र है।**

अध्याय - 6

प्रमाण का आधार : मानव

प्रत्येक व्यक्ति जीवन्तता पूर्वक ही अपने को प्रमाणित करना चाहता है। प्रमाणित करने का संपूर्ण स्वरूप समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, और भागीदारी (कारीगिरी) ही है। कारीगिरी का स्वरूप व्यवहार-व्यवसाय (उत्पादन कार्य) और विनिमय के रूप में दृष्टव्य है। इसमें से व्यवहार कार्य 'मानव जाति एक, कर्म अनेक; मानव धर्म एक, मत अनेक; धरती एक, मानव कृत सीमाएं अनेक; ईश्वर (सत्ता-व्यापक) एक, देवताएं (जागृतिपूर्ण जीवन) अनेक;' होने, नित्य वर्तमान होने के आधारों और स्वीकृतियों के साथ मानव में, से, के लिए किये जाने वाले सम्पूर्ण (कायिक, वाचिक, मानसिक व कृत, कारित, अनुमोदित) व्यवहार मानवीयतापूर्ण होना पाया जाता है। यहाँ उल्लेखनीय बात यही है हर स्वायत्त मानव परिवार मानव होने, हर परिवार मानव समाधान, समृद्धि का धारक वाहक होता है। दूसरे विधि से हर परिवार मानव व्यवस्था में भागीदार होने के प्रमाण (समाधान, समृद्धि) को प्रमाणित करता है। फलस्वरूप तन, मन, धन रूपी अर्थ के सदुपयोग और सुरक्षा का सूत्र अपने आप मानवीयता पूर्ण परिवार में प्रमाणित होता है। मानवीयता पूर्ण परिवार में भागीदारी को निर्वाह करना ही परिवार मानव का वैभव और प्रमाण है। यहाँ यह भी स्मरणीय तथ्य है कि प्रत्येक परंपराएं अपने स्वरूप में "मौलिक" हैं। अवस्थाओं के आधार पर ही परंपरा को पहचाना जाता है। जैसे - पदार्थावस्था में तात्विक रूप से रचना तक की सम्पूर्ण प्रजातियाँ अपने-अपने स्वरूप में मौलिक है। यथा दो अंश से या अनेक अंशों से गठित परमाणुएँ और ऐसे परमाणुओं से रचित अणु, अणु रचित रचनाएं, मृत पाषाण, मणि, धातुओं के रूप में दिखती हैं। यही मौलिकता है। इसमें प्रत्येक प्रजाति का भी वर्गीकरण अपने स्वरूप में वैभवित रहते हुए विकास क्रम में एक-दूसरे की प्रवृत्ति सहअस्तित्व सहज विधि से पाये जाने वाले सहवास स्वाभाविक है। सहवास विधि से ही अणुबंधन विधि दृष्टव्य है। परमाणु में नाभिकीय रूप में एक से अधिक अंशों का होना ही भारबंधन का सूत्र है। इसको और स्पष्ट रूप में देखना इस प्रकार बनता है कि प्रत्येक परमाणु में एक से अधिक अंश निश्चित दूरी पर एक दूसरे के साथ तालमेल से हैं और वह तालमेल स्वयं एक गति पथ सहित होना पाया जाता है। गति पथ स्वाभाविक रूप में वर्तुलाकार में अथवा अपरिपूर्ण वर्तुलाकार अथवा अण्डाकार होना पाया जाता है। किसी भी दो अंश एकत्रित होने के उपरान्त निश्चित दूरी का स्वरूप स्वयं मर्यादा के रूप में दिखाई पड़ती है। यही मर्यादा रेखा ही स्वयं गति पथ के रूप में स्थापित रहता है। यह स्थापना कम से कम दो अंश एक निश्चित दूरी के साथ-साथ मिला हुआ का प्रकाशन है। यह अनुस्युत क्रिया के रूप में अर्थात् एक अंश मध्य में, दूसरा एक

अंश उसके सभी ओर चक्कर लगाता हुआ रहता है। अंश जैसे-जैसे बढ़ती जाती है वैसे-वैसे नाभिकीय क्षेत्र में अंशों का जमाव बढ़ता जाता है। फलस्वरूप परमाणु में भार प्रदर्शन क्षमता घटा-बढ़ा हुआ होना पाया जाता है। यही भार प्रदर्शन क्षमता अस्तित्व सहज, सहअस्तित्व प्रभाव समेत परमाणुएं एक दूसरे के साथ जुड़ पाते हैं। इसे अणु के रूप में देखा जा सकता है। ऐसे अणुएं अपने भार सहित विभिन्न रचनाओं में भागीदारी को निर्वाह करता हुआ देखा जाता है। ऐसे ही विभिन्न अणुएं विभिन्न अनुपात में पूरकता नियमपूर्वक रासायनिक क्रियाकलापों में भागीदारी करते हैं। फलस्वरूप प्राणकोषा, प्राणसूत्र रचनासूत्र, उदात्तीकरण सिद्धांत पूर्वक श्रेष्ठ और श्रेष्ठतम रचनाएं इसी धरती पर प्रमाणित होना वर्तमान है। दूसरे ओर परमाणु में विकास गठनपूर्णता संक्रमणपूर्वक चैतन्य इकाई जीवन पद में वैभवित होना - ऐसा जीवन ज्ञानावस्था में स्वयं को, स्वयं से, स्वयं के लिए अध्ययन करना सहज संभव होना पाया गया। जीवन ज्ञान के आधार पर ही जीवन ही दृष्टा होना इसका प्रवेश सूत्र अर्थात् जीवन-जीवन को समझने का सूत्र मानव परंपरा संस्कारानुषंगीय विधि से कार्यरत रहना देखा गया, अतएव यही सूत्र क्रम से मानव स्वयं का अध्ययन क्रम को जोड़ने का प्रमाण को प्रस्तुत कर दिया। अध्ययन विधि से ही मानव स्वीकृतियों को अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन किया जाना प्रमाणित हो चुका है। अध्ययन पूर्वक स्वीकृतियों के साथ तृप्ति, सुरक्षा, सदुपयोग, न्याय, समाधान, धर्म, सत्य जैसे नामों के साथ-साथ अर्थ बोध विधि से अध्ययन कार्य को सम्पन्न करने की ओर कल्पनाएं दौड़ता ही रहे आया। इसी क्रम में भ्रम अर्थात् अतिव्याप्ति कार्यक्रमों का अभिव्यक्ति-संप्रेषणा-प्रकाशन के आधार पर चेष्टाएं भ्रमित मानव को बारंबार स्व-निरीक्षण के लिए बाध्य करता ही रहा जैसा शोषण के अनन्तर, युद्ध के अनन्तर, द्रोह-विद्रोह के अनन्तर, सुविधा संग्रह भोग विलास के अनंतर, परिवार बैर के अंनतर, समुदायों में अंतर्विरोध के अनन्तर, परस्पर समुदाय सीमाओं, धरती की सीमाओं के अनन्तर मूल्यांकन करने का प्रयास बारंबार ध्यानाकर्षण का बिन्दुएं रही। मुख्यत: इस क्रियाकलाप में निष्कर्ष और स्थिरता, फलस्वरूप सार्वभौमता और उसकी अक्षुण्णता में प्रश्न चिन्ह बनने की बिन्दुओं में (1) सहअस्तित्व नित्य वर्तमान होने में स्वीकृति स्पष्ट नहीं हो पाना फलस्वरूप भ्रमित रहना। (2) जीवन और जीवन ज्ञान संबंधी शोध कार्य सम्पन्न नहीं हो पाना फलस्वरूप जीवन (स्वयं) के संबंध में भ्रमित रहना। फलस्वरूप स्थिर और निश्चयता से वंचित रहना पाया गया। जबकि अस्तित्व स्थिर, विकास और जागृति अस्तित्व में ही निश्चित है।

भ्रमित होने के फलस्वरूप मार-पीट, वध-विध्वंसपूर्वक स्व-अस्तित्व और वर्चस्व बनाने का प्रयास मानव कर बैठा। इस अपराधिक विचारों कार्यों को भुलावा देने के लिए इतना ही इनके परिणामों में स्मृतियों को विस्मृत करने के लिए सुविधा-संग्रह, भोग-विलास आवश्यकता के रूप में सम्मोहन पूर्वक स्वीकृत हुई। इसे बनाये रखने के लिए शोषण, द्रोह, विद्रोह पुन: युद्ध विध्वंस का कार्यक्रम बनता ही गया। इन्हीं सब

प्रमाणों के आधार पर जीव चेतनावश सर्वाधिक मानव संख्या पशु मानव-राक्षस मानव के कोटि में गण्य होते ही रहे। पशु मानव के साथ राक्षस मानव शोषण क्रियाओं को विविध आयामों में जारी रखा। वस्तु व्यापार, युद्ध व्यापार, धर्म व्यापार, ज्ञान व्यापार इन्हीं के अंगभूत सभी व्यापार शाखाएं भ्रमित मानव को स्वीकृति के लिए विवश करते ही रहे स्वयम् भ्रमित रहना स्वीकार नहीं हो पाया। मानव तो अब बरबादी को आबादी की दुहाई देते हुए अपने ढंग से पतली गली बना लिया, साथ-साथ धरती का शक्ल बदल गई। विकृत स्वरूप की ओर ढल चुकी। इसके आधार पर मानव को पुनर्विचार करने की आवश्यकता भी समीचीन रही ही। अतएव स्थिरता-निश्चयता के आधार पर ही अस्तित्व सहज सहअस्तित्व में ही प्रत्येक एक का वैभव व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का अध्ययन सूत्र मानव कुल में प्रकाशित होना एक आवश्कता रही क्योंकि मानव कुल स्व नियंत्रित दूसरी भाषा से स्व-स्वीकृति पूर्वक व्यवस्था में होना अथवा भ्रमित होना देखा गया है। **स्वीकृत होने का क्रम सच्चाई की ओर अपेक्षा के रूप में बना ही रहता है। क्योंकि हर भ्रमित व्यक्ति भी सच्चाई की दुहाई देता ही है। इसी आधार पर सच्चाई सार्वभौम कसौटियों के साथ स्वीकृत होने की सम्भावना समीचीन है ही।**

सार्वभौमता की कसौटी अपने आप में व्यवस्था और समग्र में व्यवस्था में भागीदारी है क्योंकि मानवेत्तर प्रकृति में व्यवस्था स्पष्ट है और मानव में भी व्यवस्था की आवश्यकता है। व्यवस्था में जीने का प्रमाण वर्तमान में विश्वास ही है। वर्तमान में विश्वास का वैभव स्वयं में समाधान, परिवार में समृद्धि, अखण्ड समाज में अभय, सार्वभौम व्यवस्था में सहअस्तित्व, नित्य प्रमाण है। यही वर्तमान में विश्वास का स्वरूप है, कार्यरूप है, गतिरूप है।

सार्वभौम व्यवस्था में, अखण्ड समाज में, मानवीयतापूर्ण परिवार में स्वयं स्वायत्तता के रूप में, अनुभव बल, विचार शैली, जीने की कला ही स्वयं पुन: अनुभव बल के रूप में प्रयोजित होना अर्थात् सुख, शांति, संतोष, आनंद का स्रोत होना पाया जाता है। प्रत्येक स्वायत्त व्यक्ति में अनुभव और उसकी निरंतरता नित्य रस है। इस का तात्पर्य आनन्द रस ही है। अनुभव बल का धारक वाहकता प्रत्येक मानव में आवश्यकता ही है। इसके आपूर्ति-संपूर्ति जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान विधि से समीचीन है। सम्पूर्ति का तात्पर्य क्रियापूर्णता, आचरणपूर्णता के अर्थ में प्रमाणित होने के रूप में है। प्रमाणित होने का स्वरूप अनुभव बल, विचार शैली, जीने की कला का अविभाज्यता है। आपूर्ति का तात्पर्य आवश्यकता के अनुसार समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व का प्रमाण हर मानव के लिए सहज, सुलभ रहने से है। यह परंपरा में भागीदारी के अर्थ में सार्थक बनाता है। परंपरा कम से कम परिवार से है। स्वायत्त मानव ही परिवार मानव होना पहले से स्पष्ट है। प्रत्येक स्वायत्त मानव में स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान,

व्यवसाय में स्वावलंबन, व्यवहार में सामाजिक अर्थात् अखण्ड समाज में भागीदारी सहज ज्ञान, दर्शन, आचरण, विवेक और विज्ञान सम्पन्नता से है। ज्ञान, दर्शन, जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन के रूप में स्पष्ट हो चुका है। **विवेक का तात्पर्य जीवन का अमरत्व, शरीर का नश्वरत्व और व्यवहार के नियमों के प्रति पूर्ण जागृति फलत: स्वीकृति और संकल्प, दृढ़ता उसकी निरंतरता का स्वरूप है।** व्यवहार के नियम, मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में स्पष्ट हो चुका है जो मूल्य, चरित्र, नैतिकता का अविभाज्य कार्यकलाप है। यह भी आवर्तनशीलता का ही स्वरूप है। चरित्र का पोषण मूल्य, मूल्य का पोषण नैतिकता, और नैतिकता का पोषण चरित्र किया जाना हर जागृत मानव में आंकलित होती है। जागृत मानव परंपरा में मानव का जागृत होना सहज है। हर व्यक्ति जागृत होना चाहता ही है, वरता भी है; परंपरा जागृत न होने का फल ही है भ्रमित रहना। भ्रमित परंपरा में अर्पित हर मानव संतान भ्रमित होने के लिए बाध्य हो जाता है। परंपरा का कायाकल्प अर्थात् परिवर्तन और सर्वतोमुखी परिवर्तन एक अनिवार्यता है ही। इसकी सफलता जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान पर आधारित है जो अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन है जिसके आधार पर ही मध्यस्थ दर्शन (सहअस्तित्ववाद) स्पष्ट रूप में अध्ययनगम्य है।

मध्यस्थ दर्शन मूलत: मध्यस्थ सत्ता, मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ गति और मध्यस्थ जीवन का प्रतिपादन है जो वांङ्मय के रूप में स्पष्ट हो चुका है जिसके अध्ययन से मानवीयतापूर्ण आचरण स्वयं स्फूर्त रूप में प्रमाणित होता है।

जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान ही अनुभव बल का स्वरूप और स्रोत है। यही अनुभव बल, विचार शैली के रूप में संप्रेषित होते हुए देखा जाता है। ऐसे स्थिति में विज्ञान सम्मत विवेक, विवेक सम्मत विज्ञान विधि से विचार शैली का स्वरूप होना पाया गया। ऐसी विचार शैली स्वयं में मध्यस्थ दर्शन सूत्रों से एवम् सहअस्तित्ववादी सूत्रों से सूत्रित होना स्वाभाविक रहा। यही सहअस्तित्ववाद, समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद और अनुभवात्मक अध्यात्मवाद के रूप में प्रस्तुत है। यही विचार शैली पुन: शास्त्रों के रूप में संप्रेषित हुई है। इसमें से आवर्तनशील अर्थचिंतन शास्त्र और व्यवस्था का मूल स्वरूप इस प्रबंध के द्वारा मानव कुल के लिए अर्पित है। इसी के साथ-साथ व्यवहारवादी समाजशास्त्र जो स्वयं में मानवीयतापूर्ण आचार संहिता रूपी संविधान सूत्र और व्याख्या है तथा मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान मानव कुल के विचारार्थ प्रस्तुत है। भ्रमित मानव भी शुभ चाहता है। शुभ का स्वरूप समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व है। यह सर्वमानव स्वीकृत है। इनके सार्वभौमता को अध्ययन विधि से सुस्पष्ट करना ही मध्यस्थ दर्शन (अनुभव बल), विचारशैली और शास्त्र (जीने की कला) का उद्देश्य है। अतएव आवर्तनशील अर्थचिंतन का आधार सहअस्तित्व तथा सहअस्तित्व में मानव में अनुभव सहज जीना ही है। अस्तित्व ही

स्वयं सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति के रूप में सहअस्तित्व होना देखा गया है। यही अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिंतन का ध्रुव बिन्दु है। अस्तित्व नित्य वर्तमानता के रूप में स्थिर होना नित्य प्रमाण है। अस्तित्व ही सहअस्तित्व नित्य प्रमाण होने के आधार पर परमाणु में विकास, गठनपूर्णता जीवनपद फलत: परिणाम का अमरत्व ज्ञात होता है। जीवन ही जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम में गुजरता हुआ जागृत पद में क्रियापूर्णता, जिसका प्रमाण में मानव, स्वायत्त मानव, परिवार मानव, व्यवस्था मानव के रूप में स्वयं में व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण उसमें पारंगत विधिपूर्ण शिक्षा-संस्कार, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान का अध्ययन सहज है। इसी के साथ-साथ सहअस्तित्व में संपूर्ण जड़ प्रकृति अर्थात् रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना का अध्ययन स्वाभाविक रूप में समाहित है। जिसमें सम्पूर्ण भौतिक वस्तुओं को तात्विक, मिश्रण और यौगिक रूप में अध्ययन करना सहज हो चुका है और रासायनिक द्रव्यों में, से, प्राणकोषा, और प्राणावस्था का रचनासूत्र (प्राणसूत्र) जीव शरीर और मानव शरीर रचना सूत्र क्रम में विकसित होकर इस धरती पर चारों अवस्थाओं में परंपरा के रूप में स्थापित रहना पाया गया। सहअस्तित्व नित्य प्रभावी होने के आधार पर जड़-चैतन्य प्रकृति में सहअस्तित्व सहज रूप में वर्तमान है। संपूर्ण संबंधों का सूत्र भी सहअस्तित्व ही है। जीवन और शरीर का संबंध भी निश्चित अर्थ और प्रमाण सहित ही वर्तमान हैं। जीव शरीरों के साथ जीवन का संबंध वंशानुषंगीय विधियों से कार्य करने के रूप में प्रमाणित है मानव शरीर और जीवन का संबंध संस्कारानुषंगीय विधि से सार्थक और प्रमाणित होना पाया जाता है। संस्कार का तात्पर्य ही है स्वीकृति पूर्वक (अवधारणा पूर्वक) प्रवर्तनशील होने से अथवा प्रवर्तित होने से है। यही मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था के रूप में सहज अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन है।

पंचकोटि के मानव चित्र से स्पष्ट है मानवीयतापूर्ण मानव ही परिवार मानव पूर्ण स्वत्व स्वतंत्रता अधिकारपूर्वक स्वयं स्फूर्त विधि से परिवार में समाहित जितने भी सदस्य या मानव होते हैं (स्त्री-पुरुष-आबाल-वृद्ध) उनके **परस्परता में संबंधों को पहचानते हैं, संबोधन पूर्वक मूल्यों का निर्वाह करते हैं। साथ ही दोनों मूल्यांकन करते हैं, उभय तृप्ति का अनुभव करते हैं। यही विश्वास के नाम से जाना जाता है। सुख, शांति, संतोष, आनंद का नाम ही विश्वास है। यह विश्वास परस्परता में होना स्पष्ट है।** ऐसी परस्परताएं नैसर्गिक पर्यावरण मानवकृत वातावरण जैसा - मानवीय शिक्षा संस्कार, परिवार मूलक मानवीय आचार संहिता रूपी स्वराज्य, व्यवस्था, संविधान और मूल्य मूलक, लक्ष्य मूलक प्रभेदों में प्रवर्तन के आधार पर मानव का व्यवस्था पूर्वक सुखी होना स्पष्ट है।

ज्ञानावस्था के पाँच मानव

मानव	स्वभाव	विषय	दृष्टि	प्रमाण
राक्षस मानव	क्रूरता प्रधान हीनता, दीनता	आहार, निद्रा, भय, मैथुन	प्रिय, हित, लाभ	अव्यवस्थाओं का प्रकाशन = भ्रांत मानव
पशु मानव	दीनता प्रधान हीनता, क्रूरता	आहार, निद्रा, भय, मैथुन	प्रिय, हित, लाभ	अव्यवस्थाओं का प्रकाशन = भ्रांत मानव
मानव	न्याय प्रधान धीरता, वीरता, उदारता	वित्तेषणा, पुत्रेषणा, लोकेषणा सहित उपकार प्रवृत्ति सर्वोतोमुखी समाधान	न्याय प्रधान धर्म, सत्य	व्यवस्था, शिक्षा, आचरण में सामरस्यता = स्वराज्य में प्रवृति, प्रमाण
देव मानव	धर्म प्रधान दया , धीरता, वीरता, उदारता	लोकेषणा सहित उपकार प्रवृत्ति सर्वोतोमुखी समाधान	न्याय व धर्म प्रधान, सत्य	स्वराज्य में निष्ठा स्वतंत्रता में प्रवृति, प्रमाण
दिव्य मानव	सत्य प्रधान दया, कृपा, करुणा, धीरता, वीरता, उदारता	आचरण पूर्णता (नित्य समाधान) सर्वोतोमुखी समाधान उपकार प्रवृति	सत्य प्रधान	मुक्त जीवन और स्वराज्य व स्वतंत्रता सहज प्रमाण = निर्भ्रांत मानव

लक्ष्य मूलक	**मूल्य मूलक एवं लक्ष्य मूलक**
जागृति पूर्णता पूर्वक परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सहज प्रेरकता सहित निर्वाह क्रिया	जागृति सहित मूल्यों के आस्वादन के आधार पर चयन आस्वादन

ऊपर किये गये चित्रण से रूचिमूलक विधि से असामाजिक होना समीक्षित होता है। मूल्य मूलक एवं लक्ष्य मूलक विधि से व्यवस्था में सार्वभौमता और व्यवस्था में भागीदारी की सार्वभौमता दृष्टव्य है।

जागृत मानव परंपरा में अध्ययन पूर्वक शिक्षा संस्कार होना देखा गया। जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान विधिवत् अध्ययनपूर्वक बोधगम्य होना हो पाता है। इसको अभिव्यक्ति, संप्रेषणा क्रम में प्रामाणिकता और प्रमाण होना पाया जाता है। इसी विधि से यह सुस्पष्ट है कि उक्त परम ज्ञान, परम दर्शन के आधार पर सहअस्तित्ववादी विचार शैली, शास्त्र बोध होना और साक्षात्कार होना स्वाभाविक है। बोध और साक्षात्कार के क्रम में नित्य आचरण पूर्वक पुष्टि, अनुभव मूलक प्रणाली से नित्य स्रोत बनाए रखना, इसे प्रत्येक मानव अनुभव कर सकता है। मानव अपने में सुखी होने के क्रम में सर्वतोमुखी समाधान की आवश्यकता और अनिवार्यता स्पष्ट हो जाती है। यही सहअस्तित्वपूर्वक सुखी होने का रास्ता है। इस क्रम में मानव में स्वायत्तता परिवार और विश्व परिवार में प्रमाणित हो पाता है। इसी विधि से समाज रचना और परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था अविभाज्य रूप में प्रमाणित होता है।

परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था क्रम में ही जीने देकर जीने का प्रमाण मानव कुल में हो पाता है। इसे भ्रमित परंपरा में भी संवेदना के रूप में होना देखा गया है। एक माँ अथवा पिता सीमित साधनवश खाने के अत्यल्प आहार होने की स्थिति में सर्वप्रथम अपने संतान को पहले आहार देकर बचा हुआ को ही खाना चाहेंगें। इसमें ममता मूल्य विश्वास क्रियाशील रहने के फलस्वरूप ऐसा आचरण अभिभावकों में होना देखने में आता है। अभिभावक का परिभाषा है अभ्युदय के अर्थ में संतान को स्वीकारा है। जागृत मानव कुल में जीने देकर जीने की प्रवृत्ति चिन्हित रूप में दिखाई पड़ती है और जीवों में अर्थात् जीकर जीने देने की प्रवृत्ति देखने में मिलती है। जैसे बड़ी मछली छोटे मछली को भक्षण करती है। मानव में ही जीने देकर जीना सर्वाधिक सम्भावना, आवश्यकता, उसके लिए पर्याप्त स्रोत जीवन सहज अक्षय बल, अक्षय शक्ति के रूप में विद्यमान है। हर मानव में कर्म करने की स्वतंत्रता जीवन और शरीर के सहअस्तित्व में प्रमाणित होती है। मानव कर्म करते समय स्वतंत्र होने के फलस्वरुप ही स्वयं स्फूर्त कार्य करने का प्रमाण जागृति सहज विधि से सर्व मानव में प्रकाशित है। इसी के साथ कल्पनाशीलता अक्षय रूप में कार्य करता हुआ प्रत्येक

मानव में आंकलित है। इनके अतृप्ति वश ही बारंबार परिवर्तन का प्रयास, इच्छा, विचारपूर्वक प्रयोग किया है। इन सभी प्रयोगों का चाहे वह आदिकाल से हो, प्राचीनकाल से हो, अर्वाचीन काल से क्यों न हो और आधुनिक, अत्याधुनिक काल क्यों न हो, इन सभी समय में किया गया सम्पूर्ण क्रियाकलाप का परिणाम वर्तमान में ही आंकलित होना, मूल्यांकित होना देखा जाता है। अत्याधुनिक कहलाने वाले सीमा में किए गए क्रियाकलापों के उपरांत भी पुनः परिवर्तन की अपेक्षा बेहतरीन जिंदगी की अपेक्षा सार्वभौम शुभ की स्वीकृति के साथ-साथ आज भी मूल्यांकित होता है। इसलिए सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज की ओर ज्ञान, दर्शन, विचार, शास्त्र और योजना की ओर अनुसंधान, अध्ययन आवश्यक होना पाया जाता है।

परिवर्तन के क्रम में ही मूल्य मूलक, लक्ष्य मूलक विधि से जीने की कला, विचारशैली और अनुभव बल के साथ जीना मानव संस्कारानुषंगीय इकाई होने का प्रमाण है। संस्कार मूलतः पूर्णता और उसकी निरंतरता के अर्थ में किया गया सम्पूर्ण कार्यकलाप विचार विविध दर्शन और ज्ञान सहज प्रामाणिकताएँ हैं। ज्ञान और दर्शन विधाओं में पारंगत और प्रमाणित होना अनुभवमूलक विधि से ही होता है। अनुभव क्षमता प्रत्येक मानव में होने वाले जीवन सहज कार्यकलापों में से सर्वोपरि वैभव है।

सर्वशुभ समझदारी से ही है।

अध्याय - 7

जागृति और स्वतंत्रता

मानव का वैभव अथवा परम वैभव सहअस्तित्व में अनुभवमूलक विधि से प्रमाणित करना ही कर्म स्वतंत्रता का तृप्ति है। यही जीवन जागृति का भी प्रमाण है। इसी का वैभव स्वाभाविक रूप में ही परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और उसकी निरंतरता परम्परा के रूप में चरितार्थ होना पाया जाता है। ऐसी परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी केवल परिवार मानव सहज अधिकार स्वत्व, स्वतंत्रता के आधार पर वैभव (व्यवस्था) प्रमाणित होता है। तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग-सुरक्षा परिवार मानव विधि से चरितार्थ हो पाता है। चरितार्थता का तात्पर्य मानवीयतापूर्ण चरित्र में ही नैतिकता अर्थात् तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग-सुरक्षात्मक नीति का व्यवहारीकरण पूर्वक प्रमाणित होता है। व्यवहारीकरण स्वरूप को इस प्रकार समझा गया है कि हर व्यक्ति में तन, मन, धन रूपी अर्थ होता ही है। तन और मन के संयोग मानव में नित्य वर्तमान और प्रमाण है। आशा, विचार, इच्छा सहित ही हर प्रकार के कार्य-व्यवहार करता हुआ देखने को मिलता है। ऐसे कार्य-व्यवहार क्रम में ही चरित्र अपने आप में स्पष्ट होता है। मानवीयता पूर्ण चरित्र स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष दयापूर्ण कार्य-व्यवहार होना स्पष्ट किया जा चुका है। दयापूर्ण कार्य-व्यवहार में ही तन, मन, धन का सदुपयोग होना मूल्यांकित होता है। दया की मूल प्रक्रिया ही है जीने देकर जीना। जागृत मानव जीने देकर जीने में प्रमाणित रहता ही है। इसका सहज चरितार्थता परिवार मानव के रूप में ही सम्पन्न हो पाता है। ऐसे परिवार मानव रूपी अधिकार, स्वत्व और स्वतंत्रता का स्रोत अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ही है। चिंतन का तात्पर्य अनुभव सहज साक्षात्कार से है। साक्षात्कार का तात्पर्य जो जैसा है उसे वैसा ही जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने से ही है। जो जैसा है उसे जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने का प्रमाण स्वयं व्यवस्था में जीना और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने के रूप में स्पष्ट होता है। स्वायत्त मानव ही परिवार में व्यवस्था के रूप में जीकर प्रमाणित हो पाता है। यह परिवार व्यवस्था के रूप में ही गण्य होता है। ऐसे परिवार मानव समग्र व्यवस्था में अर्थात् विश्व परिवार व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करने योग्य हो पाते हैं। अतएव स्वायत्त मानव से परिवार मानव, परिवार मानव से ही व्यवस्था मानव, व्यवस्था मानव से ही समग्र व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करने का स्वत्व, स्वतंत्रता और अधिकार को स्पष्ट करता है। अधिकार का तात्पर्य अनुभव बल के रूप में दृष्टव्य है। यही मानव अधिकार है। अनुभव बल को प्रमाणित करने का कार्य ही स्वत्व के रूप में देखने को मिलता है। ऐसे अधिकार और स्वत्व के सूत्रों पर व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी प्रमाणित होना ही

स्वतंत्रता है। यही मानव कुल में संप्रभुता और प्रभुसत्ता के रूप में वैभवित होना जिसकी सार्वभौमता सर्व स्वीकार होना सहज है। इसी तथ्य के आधार पर सर्वशुभ योजना समीचीन है। सर्वशुभ सम्पन्न होने का अधिकार, स्वत्व, स्वतंत्रता हर मानव में, से, के लिए समीचीन रहना पाया जाता है। ऐसा सर्वशुभ समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व में अनुभव सहज प्रमाण ही है। इसे सर्वसुलभ करने के क्रम में ही हर व्यक्ति, हर परिवार प्रमाणित होने का अवसर, आवश्यकता विद्यमान है ही। इसी विधि से हम मूल्य मूलक प्रणाली से योजना और कार्य शैलियों को पाना सहज है। यही मानवीयतापूर्ण विधि से जीने की कला का स्वरूप है।

अस्तु मूल्य मूलक, लक्ष्य मूलक विधि से प्रत्येक मानव व्यवस्था में जीना और व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करना सहज और आवश्यक है यह स्पष्ट है। अतएव मानव अपने में व्यवस्था विधि स्वीकृति के लिए सम्पूर्ण मूल्यों का स्रोत जीवन सहज अक्षय शक्ति, अक्षय बल ही हैं।

उक्त चित्रण से यह स्पष्ट है कि समझदारी स्वयं स्फूर्त होता है। मानव शरीर को संचालित करने वाला जीवन सहज शक्ति और बल मानव कुल में, मानव कुल का तात्पर्य शरीर रचना के आधार पर है, मानव शरीर के द्वारा जीवन ही सम्पूर्ण मूल्यों को प्रमाणित करता है, निर्वाह करता है और मूल्यांकित करता है। तृप्ति पाने की इच्छा से ही यह सब कार्यों को करता है। जीवन तृप्ति समाधान-समृद्धि पूर्वक, सुख, शांति, संतोष रूप में ख्यात हो पाता है और प्रामाणिकता पूर्वक सर्वतोमुखी समाधान रूपी ज्ञान, दर्शन, विवेक, विज्ञान सम्पन्न विचार शैली और जीने की कला सम्पूर्ण प्रमाण का आधार होना पाया जाता है।

मूलत: **अर्थ का स्वरूप तन, मन, धन के रूप में देखा गया है। धन केवल उत्पादित वस्तु ही है।** प्राकृतिक ऐश्वर्य पर ही मानव सहज श्रम का नियोजन होना भी सुस्पष्ट हो चुका है। इसी के परिणाम स्वरूप सामान्याकाँक्षा, महत्वाकाँक्षा संबंधी वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं, यही प्रतिफल का स्वरूप है।

श्रम नियोजन का प्रतिफल ही विनिमय के लिए वस्तु है। इन्हीं विनिमय विधि में श्रम मूल्य के आधार पर विनिमय कार्य को सम्पन्न करना आवर्तनशीलता की एक कड़ी है। आशा, विचार, इच्छाएँ निपुणता, कुशलता के रूप में कार्य करना सर्व विदित है। दूसरे विधि से **आशा, विचार, इच्छा ही अनुभव मूलक विधि से जीवन ही निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य का धारक वाहक हैं।** यह सर्वविदित है। यह भी विदित है आशा, विचार, इच्छा के अनुसार ही मानव शरीर संचालन कर पाता है। ऐसी संचालन क्रियाकलाप में ही निश्चित विधि से निश्चित उत्पादन भी होना देखा जाता है। सामान्य आकाँक्षा एवं महत्वाकाँक्षा संबंधी वस्तुओं का उत्पादन कार्य में तत्पर व्यक्ति को देखने से यही दिखाई पड़ता है। जिस वस्तु का उत्पादन होना है उसका आकार, प्रकार उसके मानसिकता में होता ही है। फलस्वरूप उत्पादन कार्य सम्पन्न होता है। इस

विधि से निपुणता-कुशलता उत्पादन कार्य के मूल में होना और उसका उपयोगिता, सदुपयोगिता और प्रयोजनशीलता स्पष्ट होता है। आवश्यकता के आधार पर तकनीकी निपुणता, कुशलता और सम्भावनाओं सहित कार्यकलाप सम्पन्न होना देखा गया है। इस क्रम में पीढ़ी से पीढ़ी समृद्धि होता ही आया है। मूलत: विरोधाभास जो कुछ भी निर्मित हुई ईंधन नियोजन, रासायनिक द्रव्यों का नियोजन, उसके उत्पादनों में होने वाली विसर्जन प्रणालियों से विसंगतियाँ निर्मित हुआ, जिसको प्रदूषण के नाम से इंगित करते हैं। दूसरा विसंगति विनिमय प्रणाली में उत्पादक और उपभोक्ता के बीच में दूरी लाभ के रूप में बढ़ता जाना रहा है। इन्हीं दो विसंगतियों के चलते इनसे संबंधित सभी उथल-पुथल होना अर्थात् अवांछित घटनाएँ होना रहा हैं।

उत्पादन कार्य में मानसिकता, स्वस्थ शरीर और हस्तलाघव सहित श्रम नियोजित होता ही है। जहाँ तक साधन की बात है, अर्थात् इसके पहले से जो वस्तुएँ निर्मित हो चुकी हैं, पुन: उत्पादन कार्य के लिए उपयोगी है। यह पीढ़ी से पीढ़ी प्रदत्त होते हुए आया है। इस प्रकार हर पीढ़ी के बाद साधन सम्पन्न होने के क्रम से पीढ़ी से पीढ़ी समृद्ध होना स्वाभाविक है। यह परिवारमूलक विधि से ही सर्वसुलभ हो पाता है। हर परिवार में आवश्यकता व उत्पादन, उपयोग, सदुपयोग, विनिमय ये सभी अवयव कार्य-व्यवहार के रूप में होना स्वाभाविक है। इन्हीं कार्य-व्यवहारों में समृद्धि का अनुभव एक लक्ष्य है। इसी लक्ष्य को प्रत्येक परिवार पाने के क्रम में निश्चित उत्पादन का योजना, स्वरूप स्थापित होता ही है। यही व्यवस्था का मूल तत्परता है। परिवारगत आवश्यकता से अधिक उत्पादन से ही समृद्धि का अनुभव होना स्वाभाविक है।

आवर्तनशीलता के स्वरूपों को सहज ही हम इस प्रकार देख सकते हैं कि उत्पादन के लिए आवश्यकता, आवश्यकता के अनुरूप मानसिकता जो निपुणता, कुशलता और पांडित्य सम्पन्न मानसिकता, स्वस्थ शरीर के द्वारा प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन पूर्वक वस्तुओं में कला मूल्य और उपयोगिता मूल्य की स्थापना, उपयोगिता मूल्य के अनुरूप उसका सदुपयोग, फलत: आवश्यकता की आपूर्ति, शेष का विनिमय। इस प्रकार समृद्धि का अनुभव सूत्र स्पष्ट होता है।

उत्पादन कार्यों के गति में जो ईंधनों को संयोजित किया जाता है इसमें आवर्तनशीलता को पहचानना अनिवार्य है। इन्हीं में जो कुछ भी अभी समीचीन प्रदूषण का संकट है इसमें मुख्य तत्व कोयला और खनिज तेल से मुक्त ईंधन विधि और प्रकाश विधियों को संजो लेना ही ईंधन संबंधी आवर्तनशीलता का तात्पर्य है। इसके मुख्य स्रोत का अधिकांश भाग मानव मानस में आ ही चुका है जैसा सूर्य ऊर्जा, प्रपात बल, हवा का दबाव, प्रवाह शक्ति पर, गोबर कचरा से उत्पन्न ईंधन। इन सभी ओर ध्यान जा ही रहा है कि खनिज कोयला और तेल के बाद क्या करेंगे? इसके उत्तर में सोचा गया है। खनिज कोयला और तेल से ही

सर्वाधिक प्रदूषण है। इस आधार पर इसकी आवश्यकता धरती को है, इसी आधार पर विकल्प को पहचानने की आवश्यकता है। तब विकल्पात्मक स्रोतों के प्रति निष्ठा स्थापित होना सहज है। **खनिज तेल और कोयला के अतिरिक्त और खतरनाक रूप में जो प्रदूषण आक्रमण कर रहा है वह विकिरणात्मक ईंधन प्रणाली है।** ये तीनों धरती पर स्थित अन्न, वनस्पति, जीव और मानव प्रकृति के लिए सर्वाधिक हानिप्रद होना हम समझ चुके हैं। इसके बाद भी इन्हीं तीनों प्रकार के ईंधन की ओर सभी देशों का ध्यान आकर्षित रहना अभी तक देखा जा रहा है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है विकल्प की ओर हमारी निष्ठा पूरा स्थापित नहीं हो पा रही है। इसके मूल कारण दो स्वरूप में दिखाई पड़ती है (1) हर उत्पादन को स्वचालित बनाने का चक्कर और (2) उद्योगों का केन्द्रीयकरण प्रणाली का प्रयास। ये दोनों कारण पूँजी निवेश पर आधारित हैं। इसका आधार विशेषज्ञता है। इसी के साथ साथ जनशक्ति को अर्थात् श्रम शक्ति को खरीदने के क्रम में आ चुकी है। इन्हीं दो उपक्रमों ईंधन विकल्प के प्रति निष्ठा स्थापित करने में, होने में अड़चन बन बैठी है। स्वचालित उत्पादन कार्य तंत्र विधि से जितना मानव उत्पादन कार्य में लग रहा था वह कम होता गया। कुछ लोगों को जिन्हें नौकरी मिल जाती है, वे अपने को धन्य मान लेते हैं। बड़े उद्योगों के चलते यह संकट गहराता जाता है। जैसा एक ही प्रकार से शिक्षा ग्रहण किया हुआ एक आदमी को नौकरी मिल जाता है और एक आदमी को नौकरी नहीं मिलता है। नौकरी मिला हुआ अपने को धन्य मानता है, नहीं मिला हुआ अपने को बेकार मानता है, निरर्थक मानता है। ये सभी बातें सभी विद्वानों को पता है। यहाँ उल्लेख करने का यही तात्पर्य है कि इसकी विकल्प विधि को पहचानने की आवश्यकता पर बल देना ही रहा।

ईंधन कार्य विधि के लिए प्रवाह बल शक्ति को सर्वाधिक रूप में विद्युतीकरण कार्य के लिए उपयोग करना आवश्यक है। प्रपात शक्तियों को उपयोग करने की विधि प्रचलित हो चुकी है। केवल प्रवाह बल का उपयोग विधि को प्रचलित करना अब अति अनिवार्य हो चुकी है। इससे छोटे-बड़े विद्युतीकरण कार्य को संपादित किया जा सकता है। प्रवाह का अपार स्रोत आज भी धरती पर है। अतएव ऐसे स्रोत रहते ही इसका उपयोग करना प्रदूषण विहीन विद्युत चुम्बकीय ताकत को पाना बन जाता है। इस क्रम में सूर्य उष्मा को भी विद्युतीकरण और ताप भट्टियों के लिए प्रयुक्त कर लेना उपयोगी है ही। इस ओर भी हमारा ध्यान लगा है। इसको समृद्ध बनाने की आवश्यकता और लोकव्यापीकरण करने की आवश्यकता है। इस क्रियाकलाप में ज्ञान व्यापार, धर्म व्यापार को त्याग देना आवश्यक है। इसे मानव का मानव सहज स्वत्व के रूप में पहचानने की आवश्यकता है क्योंकि एक मानव जो समझ सकता है उसे सभी मानव समझ सकते हैं इस तथ्य पर विश्वास करने की आवश्यकता है। इसी के आधार पर एक व्यक्ति जो पाता है उसे हर व्यक्ति पा सकता है। यह तभी संभव है जब ज्ञान और धर्म व्यापार को सर्वथा मानव त्याग दे और इस व्यापार के स्थान पर जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान यह जीवन जागृति

रूपी सहज तथ्यों को लोक व्यापीकरण करने की अनिवार्यता, आवश्यकता को पहचानना हर मानव सहज रूप में ही विशेषता, आरक्षण, दलन, दमन जैसी अमानवीय प्रवृत्तियों से मुक्त हो सकते हैं और मानवीयता देव-दिव्य मानवीयतापूर्ण विधि से इस धरती को सजा सकते हैं।

मानवीयतापूर्ण और देव-दिव्य मानवीयतापूर्ण विधि से ही इस धरती में अखण्डता और मानव समाज में अखण्डता और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में सार्वभौमता को पहचानना, निर्वाह करना सहज है। जिसकी आवश्यकता को हर व्यक्ति स्वीकारता है। अखण्डता और सार्वभौमता की अक्षुण्णता अन्तर्गत् निश्चित गति होना पाया जाता है। यही सर्वशुभ सुलभ होने का सूत्र है। जीवन ज्ञान, जीवन का स्वत्व होते हुए प्रामाणिकता में ही इसका सम्पूर्ण गरिमा और सम्मान होना पाया जाता है। प्रामाणिकता सदा ही सार्वभौमता और अखण्डता के पक्ष में ही हो पाता है। इसे भले प्रकार से हर व्यक्ति परीक्षण-निरीक्षण कर सकता है। दूसरी विधि से यह भी एक निश्चित तथ्य है कि जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ही अपने महिमा को प्रमाणित करने के क्रम में अखण्डता और सार्वभौमता प्रमाणित होना सहज है। इसके अतिरिक्त जो-जो विधियाँ अभी तक प्रयोग में किए गए हैं, उसके अनुसार अखण्डता सार्वभौमता उक्त विधाओं में स्थापित नहीं हो पाया, जिसकी आवश्यकता, अनिवार्यता बना ही है। यह क्रम से परिवार मानव विधि से ग्राम परिवार, विश्व परिवार और उसी के व्यवस्था क्रम में सम्पूर्ण परिवार ही अखण्ड समाज के रूप में, सम्पूर्ण परिवार व्यवस्था क्रम में सम्पूर्ण परिवार ही सार्वभौम व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होता है।

परिवार में आवश्यकता से अधिक उत्पादन करना लक्ष्य होने के आधार पर विभिन्न उद्यमों को हर परिवार अपनाते हैं। आवश्यकता से अधिक उत्पादन समृद्धि का द्योतक होना पाया जाता है। ऐसा सम्पूर्ण ग्राम परिवार मिलकर ग्राम के आवश्यकीय सभी वस्तुओं को उत्पादन करने के लिए प्रवृत्तशील होते हैं। गाँव के सभी परिवार एक दूसरे के पूरक होते हैं। उत्पादन में पूरक, विनिमय में पूरक और पूरक विधि से ही उपयोग, सदुपयोग करते हैं।

मानवीय संविधान का प्रारूप

व्यवहार	परिवार	संबंध मूल्य
व्यवहार	परिवार समूह	संबंध मूल्य
व्यवहार	ग्राम स्वराज्य परिवार	संबंध मूल्य
व्यवहार	ग्राम समूह परिवार	संबंध मूल्य
व्यवहार	ग्राम क्षेत्र परिवार	संबंध मूल्य
व्यवहार	मंडल परिवार	संबंध मूल्य
व्यवहार	मंडल समूह परिवार	संबंध मूल्य
व्यवहार	मुख्य राज्य परिवार	संबंध मूल्य
व्यवहार	प्रधान राज्य परिवार	संबंध मूल्य
व्यवहार	विश्व राज्य परिवार	अखंड समाज (संबंध मूल्य)
सार्वभौम व्यवस्था	विश्व राज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	प्रधान राज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	मुख्य राज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	मंडल समूह राज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	मंडल राज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	ग्राम क्षेत्र राज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	ग्राम समूह राज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	ग्राम स्वराज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	परिवार समूह सभा	भागीदारी
व्यवस्था	परिवार सभा	भागीदारी

अध्याय - 8

परिवार मूलक ग्राम स्वराज्य व्यवस्था का स्वरूप

परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को एक परिवार सभा व्यवस्था से ग्राम परिवार सभा व्यवस्था और विश्व परिवार सभा व्यवस्था का संयुक्त अविभाज्य रूपी अवधारणा और वर्णन विश्लेषण से स्पष्ट हो चुका है। अर्थव्यवस्था समग्र व्यवस्था में अंगभूत है। **जिसमें से एक आवर्तनशील अर्थशास्त्र और व्यवस्था है, दूसरा व्यवहारवादी समाज शास्त्र और व्यवस्था और तीसरा मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान व्यवस्था। व्यवस्था का मूल अवधारणा समझदार व्यक्ति में, से, के लिए वर्तमान स्वयं में विश्वास, परिवार में समाधान-समृद्धि, राष्ट्र में अभय और अंतर्राष्ट्र में सहअस्तित्व सहज प्रमाणित होना है।** इन प्रमाणों के आधार पर ही विश्व मानव व्यवस्था का स्वरूप सहअस्तित्व सहज अखण्डता सार्वभौमता के आधार पर परिशीलन किया गया है। हर विधाओं में मानव द्रोह-विद्रोह रूपी काला दीवाल के सम्मुख आ चुका है या आने वाला है। इसलिए इसकी समाधान, अखण्डता, सार्वभौमता के अर्थ में और समाधान, समृद्धि, अभयता के अर्थ में ही आवश्यकता, अनिवार्यता समीचीन होना देखा गया। इसी क्रम में इसके लोकव्यापीकरण को और उसकी महत्ता को समझा गया। फलस्वरूप मानव सम्मुख इसे प्रस्तुत करने का प्रयास है।

परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था क्रम में मानव कुल संक्रमित होने के उपरांत अथवा परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को मानव कुल अपनाने के उपरांत जन प्रतिनिधि को पाने के लिए, पहचानने के लिए और प्रस्तुत होने के लिए अर्थात् जन प्रतिनिधि के प्रस्तुत होने के लिए निर्वाचन प्रक्रिया और भागदौड़ में धन व्यय शून्य हो जाता है। फलस्वरूप पैसे से पदाभिलाषा का सूत्र समाप्त हो जाता है। पहले से मानव, स्वायत्त मानव और परिवार मानव के रूप में पदस्थ रहते ही हैं। यह स्वयं स्फूर्त आकाँक्षा है ही।

स्वायत्त मानव का स्वरूप, परिवार मानव का स्वरूप के संबंध में अवधारणाएँ स्पष्ट हो चुकी हैं। अतएव परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का अवधारणा इस ग्रंथ का अध्ययन करने वाले मनीषी को सुलभ हुआ रहता ही है।

परिवार मूलक स्वराज्य का अंतर संबंध पाँच आयामों से सूत्रित, संबंधित एवं व्याख्यायित रहना ही परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का प्रमाण होता है। इनमें से हर आयाम दूसरे आयाम के साथ अविभाज्य रूप में सूत्रित रहता है। यही व्यवस्था का तानाबाना है। इस विधि से हर स्तरीय परिवार सभा, उसकी रचना और कार्य विधि में सामरस्यता और एकात्मता स्पष्ट हो जाता है। कार्यप्रणाली में दूसरे स्तरीय परिवार सभा के

साथ सामरस्यता, एकरूपता के आधार पर ही सामरस्यता का अनुभव होना हर स्तरीय परिवार सभा का उद्देश्य और निष्ठा की समानता ही एकात्मता का तात्पर्य है। एकात्मता का तात्पर्य स्पष्ट उद्देश्य और निष्ठा के स्वरूप में है। सार्वभौम उद्देश्य के संबंध में विविध प्रकार से स्वरूप को स्पष्ट किए हैं। उल्लेखनीय तथ्य यही है कि सार्वभौम उद्देश्य समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व है। प्रत्येक मानव का जीवन सहज उद्देश्य भी समान है यह है जीवन जागृति। हर मानव जागृतिपूर्वक ही अपने को ज्ञान, दर्शन, विज्ञान, विवेक सम्पन्नता सहित मानवीयतापूर्ण आचरण सहित जीने की कला को वरता है। इस प्रकार जागृति ही अनुभव, विचार, व्यवहार (परिवार और समाज) और व्यवस्था में जीने के स्वरूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। इन सभी अवयवों पर भी मनस्वियों का ध्यानाकर्षण अवधारणा सुलभ होने के अर्थ में प्रस्तुत किया गया है।

मानव अपने जीवन जागृति और सर्वमानव शुभ के अर्थ में जीने की कला विधि सहज ही व्यवस्था का स्वरूप होना नियति क्रम और जागृति क्रम का तृप्ति बिन्दु है। इसीलिए यह दोनों **सम्पूर्ण मानव का उद्देश्य, प्रत्येक जीवन का उद्देश्य समान होने के फलस्वरूप इन्हीं दो ध्रुवों के मध्य में सम्पूर्ण व्यवस्था का ताना-बाना स्पष्ट हुआ है।** यह मूलत: अस्तित्व स्थिर और विकास और जागृति निश्चित होने के लिए सहअस्तित्व सहज सूत्र पर ही आधारित है। इन तथ्यों को सुदृढ़ रूप में जानने-मानने के लिए अस्तित्व ही नित्य वर्तमान और सहअस्तित्व का स्वरूप होना प्रतिपादित हो चुका है।

इस चित्र में स्पष्ट किया गया पाँचों आयाम रेखाकार और वर्तुलाकार विधि से अन्तर संबंधित और कार्यरत रहते हैं। रेखाकार विधि से अन्तर्संबंध, वर्तुलाकार विधि से पांचों समितियों को अविभाज्य संबंध आवर्तनशीलता के रूप में देखने को मिलता है। इसके मूल में मानव ही मानवीय शिक्षा-संस्कार पूर्वक स्वायत्त मानव, परिवार मानव (समाज मानव) और व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होना ही परिवार मूलक के स्वराज्य व्यवस्था का अबाध गति है। इस क्रम में ग्राम परिवार व्यवस्था में विनिमय कोष का कार्य का सामान्य चित्र जो उत्पादन और विनिमय सुलभ रूप को स्पष्ट करता है –

इस चित्र में ग्राम में उत्पादनों का सामान्य ध्यानाकर्षण किया है। सामान्य का तात्पर्य हर गाँव में एक ही परिवार में सभी प्रकार के उत्पादन सीमाओं को बांधना संभव नहीं है। विभिन्न प्रकार के उत्पादन होना वांछनीय है। अतएव जिन-जिन ग्रामों की सीमा में जो-जो उत्पादन कार्य सम्पन्न होता है, उसका विनिमय कार्य को श्रम विनिमय विधि से सम्पन्न करना ही विनिमय कोष का प्रधान कार्य है।

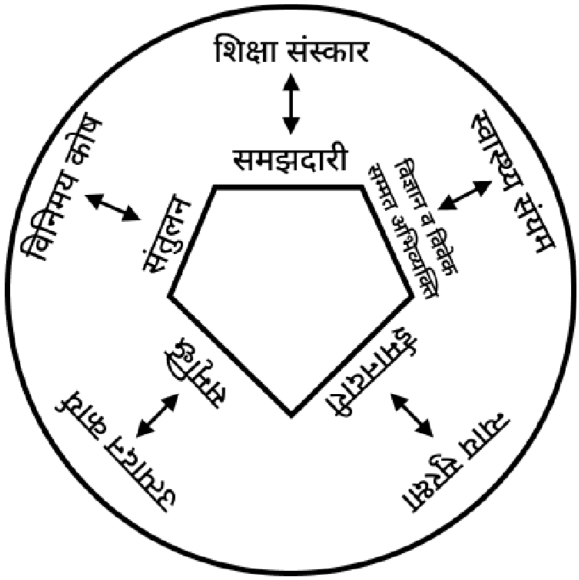

सामान्य आकांक्षा (स्थानीय सर्वेक्षण के आधार पर)		**महत्वाकांक्षा** (स्थानीय ग्राह्यता के आधार पर)	
आहार आवास अलंकार स्वास्थ्य संयम शिक्षा संस्कार	संबंधी वस्तु एवं उपकरण	दूरगमन दूरश्रवन दूरदर्शन	संबंधी उत्पादन एवं उपकरण

"वस्तु और कोष का अलग-अलग कोई स्थान नहीं होता।" क्योंकि अस्तित्व में वस्तु और उसका मूल्य अविभाज्य रूप में देखा जाता है। यही विधि/तथ्य सम्पूर्ण उत्पादित वस्तुओं में भी दिखाई पड़ता है। जैसे एक वाहन को छोटा या बड़ा सामने रखकर देखें इसका उपयोगिता मूल्य, सुन्दरता मूल्य और वह वाहन अलग-अलग हो सकता है? इस पर कितना भी सोचा जाए अंत में यह अविभाज्य है। यही मानव जाति से कहना बनता है।

"उत्पादित वस्तुओं में उपयोगिता मूल्य बना ही रहता है।" हर वस्तुओं का उपयोगिता मूल्य और कला मूल्य मानव के श्रम नियोजन का ही फलन है। **मूल्यांकन श्रम का ही हो पाता है न कि प्रतीक वस्तुओं का।** इस

तथ्य पर भी पहले विश्लेषण-निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा चुका है। इसी विधि से मानव परंपरा में हर परिवार, हर स्तरीय परिवार स्वाभाविक रूप में समृद्धि, समाधान, अभय और सहअस्तित्व में ओत-प्रोत रहना अथवा यह सर्वसुलभ रहना ही परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का एक अनिवार्यता है क्योंकि सर्वमानव का यही लक्ष्य है। **'समृद्धि का आधार आवश्यकता से अधिक उत्पादित वस्तु, सदुपयोग और सुरक्षा के योगफल में होना देखा गया।'** इसका प्रमाण और उसकी निरंतरता अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था में गति का होना पाया जाता है। अतएव वस्तु और उसका मूल्य स्वाभाविक रूप में अविभाज्य बना रहता है। इसलिए विनिमय-कोष व्यवस्था सुन्दर, सुखद, समाधानपूर्ण मानव मार्ग है।

श्रम मूल्यांकन प्रणाली को पाने के लिए सहज ही हर स्तरीय समीति में अर्हताएँ और समाधानपूर्ण विधि अपनाना सहज है। क्योंकि जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान के योगफल में सर्वतोमुखी समाधान करतलगत रहता ही है। इसी क्षमता के उपयोगवश मूल्यांकन क्रियाकलाप सम्पन्न होता है। इसकी पुष्टि में पहले भी इंगित कराया जा चुका है हर व्यक्ति सत्य में अनुभूत होना चाहता ही है। सच्चाई को प्रमाणित करना चाहता ही है। यह सर्वसुलभ होना समीचीन है क्योंकि जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान मानव सहज रूप में ही स्पष्ट हो पाता है और किसी अन्य प्रकृति के आधार पर इसका प्रमाण स्थापित नहीं हुआ है यथा जीवावस्था, प्राणावस्था और पदार्थावस्था सहज कृतियाँ हर मानव में, से, के लिए दृष्टव्य हैं। इन सबका यथास्थिति परिपूर्ण अध्ययन, इनका अंतर संबंध, इनकी अविभाज्यता क्रम में उपयोगिता-पूरकता, परस्पर पूरकता, उसका प्रयोजन रूपी सहअस्तित्व, दृष्टा, कर्ता, भोक्ता केवल मानव में ही मौलिक रूप में ज्ञान, विवेक व विज्ञान विद्यमान है। इसीलिए मानव सम्पूर्णता के साथ हो, सार्वभौम व्यवस्था को और प्रत्येक मानव अपने में व्यवस्था होने के स्वरूपों को स्पष्टतया अध्ययन करता है। इसी क्रम में आवर्तनशील अर्थव्यवस्था समग्र व्यवस्था का अंगभूत होना सहअस्तित्व सहज प्रणाली है।

मूल्यांकन संबंधी निश्चयन हर ग्राम से आरंभ होकर विश्व परिवार विनिमय कोष तक संबंध रहना आवश्यक है। शिक्षा पूर्वक हर व्यक्ति में निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य सुलभ होता है। फलस्वरूप उत्पादन कार्य में दक्ष होना पाया जाता है। इसी आधार पर प्रत्येक व्यक्ति में स्वायत्तता पूर्ण लक्ष्य अध्ययन काल से ही समाहित रहता है। सम्पूर्ण उत्पादन की कोटि और स्वरूप स्पष्ट हो चुका है। समृद्धि का सर्वाधिक आपूर्ति आहार, आवास, अलंकार संबंधी वस्तुओं, उपकरणों और सामग्रियों सहित प्रत्येक ग्राम सीमा में जो कुछ भी प्राकृतिक ऐश्वर्य, जलवायु, वन, खनिज, नैसर्गिकता के रूप में रहते ही हैं। इन्हीं आधारों पर या इन्हीं के पृष्ठभूमि में मानव अपना श्रम नियोजन करने का कार्यक्रम बनाता है। हर परिवार अपने प्रतिष्ठा के अनुरूप आवश्यकताओं का निर्धारण करने में मानवीयता पूर्ण शिक्षा संस्कार के बाद ही समर्थ होना पाया

जाता है। ऐसे परिवार मानवों से सम्बद्ध परिवार अपने आवश्यकता की तादात, गुणवत्ता सहित आवश्यकताओं को अनुभव करेंगे और उत्पादन कार्य को अपनायेंगे। हर गाँव में साधारणतया कृषि, पशुपालन, ग्राम शिल्प, कुटीर उद्योग, हस्तकला, ग्रामोद्योगों को अपनाना सहज है। इसी आधार पर हर परिवार के लिए आवश्यकतानुरूप उत्पादन कार्य का अवसर समीचीन होना स्पष्ट है। इसी के साथ यह भी स्पष्ट है कि **सम्पूर्ण आवश्यकताएँ शरीर पोषण, संरक्षण और समाज गति में ही उपयोगी, सदुपयोगी, प्रयोजनशील है। इसी स्पष्ट नजरिये से जीवन ज्ञान सम्पन्न हर मानव को आवश्यकताएँ सीमित दिखाई पड़ती हैं और आवश्यकता के अनुरूप उत्पादन श्रम शक्ति मूलत: जीवन शक्ति की ही अक्षय महिमा होने के आधार पर आवश्यकता से अधिक उत्पादन में विश्वास स्वाभाविक है।** यह स्वायत्त मानव में अभिव्यक्त होने वाले आयामों में से उत्पादन कार्य भी एक आयाम है। इस विधि से आवश्यकताएँ सीमित संयत होना पाया जाता है। इसी सूत्र के आधार पर अपने उत्पादन कार्यों को विभिन्न वस्तुओं के रूप में परिणित करने में निष्ठान्वित होते हैं।

एक ग्राम में कम से कम 100 परिवार की परिकल्पना की जाती है। पाँचों आयाम संबंधी व्यवस्था सफल होने के लिए कम से कम 100 परिवार का होना एक आवश्यकता है। 100 परिवार के बीच सामान्य आकाँक्षा संबंधित सभी अथवा सर्वाधिक वस्तुएँ ग्राम में ही उत्पादित होना सहज है। **उत्पादन कार्यों में परिवार मानव जब संलग्न होता है, उसे निरीक्षण परीक्षण करने पर पता लगता है कि प्रत्येक उत्पादन कार्य निपुणता, कुशलता, पांडित्य सम्पन्न मानसिकता, विचार, इच्छा, समय खण्ड, हस्तलाघव और निश्चित साधन के योगफल में होना पाया जाता है।** जहाँ तक साधनों की गणना है यह परंपरा के रूप में पीढ़ी से पीढ़ी अधिक साधन सम्पन्न होने की व्यवस्था है। यहाँ यह भी ध्यान रखना आवश्यक है मानव, जलवायु, धरती, वन, खनिज जैसी नैसर्गिकता में और अनंत और व्यापक ब्रह्मांडीय किरणों के वातावरण में होता हुआ देखने का मिलता है। इसी के साथ साथ मानवकृत उप-वातावरण सहज ही गण्य होता है। अभी यहाँ मानवकृत वातावरण में परिवर्तन, परिवर्धन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। नैसर्गिकता पर किए जाने वाले हस्तक्षेपों, श्रम नियोजनों, प्रतिफलों, उसकी उपयोगिता, सदुपयोगिता और प्रयोजनशीलताओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है। यह मानवकृत वातावरण में से एक पक्ष है। इसी के साथ साथ मानवकृत वातावरणिक सूत्र जुड़ा ही रहता है। अन्य वातावरण का तात्पर्य नैसर्गिक और ब्रह्मांडीय वातावरण अविभाज्य वर्तमानित रहने से है। इस प्रकार समग्रता के साथ ही यह धरती, धरती की समग्रता के साथ ही मानव, मानव के समग्रता के साथ ही व्यवस्था और समाज परिकल्पना अध्ययन, योजना और क्रियान्वयन क्रम में मानवीयतापूर्ण मानव के वैभव की पहचान होती है। इसी विधि से मानव समाज और व्यवस्था का अविभाज्य स्वरूप को परिवार और परिवारमूलक व्यवस्था के रूप में देखा गया है। जो स्वयं स्वराज्य और धर्म

अविभाज्य रूप और उसका प्रमाण होना पाया गया है। अस्तु समग्र मानव को ध्यान में रखते हुए पाँच आयाम सम्पन्न व्यवस्था को परिपूर्णता के रूप में अध्ययन किया गया है। इसी के अंगभूत उत्पादन, विनिमय-कोष के आधार पर अथवा कार्यप्रणाली के आधार पर ग्राम से आरंभित स्वराज्य वैभव सूत्रों के अंगभूत होने के कारण ग्राम सभा से विश्व सभा तक इसकी लम्बाई पहुँचना स्वाभाविक है।

ग्राम सभा से मनोनयन पूर्वक व्यवस्थित विनिमय कोष व्यवस्था सूत्र और उत्पादन कार्य सूत्र यह दोनों अविच्छिन्न रूप में विशाल और विशालता की ओर सम्बद्ध होना समीचीन है। जैसा ग्राम सभा क्षेत्र में कार्यरत उद्यमों के अतिरिक्त कुटीर और लघु उद्योगों को ग्राम समूह समिति में स्थित उत्पादन कार्य समिति सम्पन्न करेगा और विनिमय कोष समिति विनिमय कार्यों को सम्पन्न करेगा। क्षेत्र सभा समिति लघु उद्योगों और मध्यम उद्योगों के बारे में, से संबंधित उत्पादनों को सम्पन्न करेगा और ग्राम क्षेत्र समिति से मनोनीत विनिमय कोष समिति इसका विनिमय कार्य सम्पन्न करेगी। क्षेत्र विनिमय कोष समिति ग्राम समूह समितियों के, से अक्षुण्ण संबंध बनाए रखने के आधार पर विनिमय कोष समिति से आदान प्रदान विधि से गतिशील रहना सहज है। इसी प्रकार मण्डल और मण्डल समूह सभाओं से मनोनीत उत्पादन कार्य समिति और विनिमय कोष समितियों के परामर्श से मध्यम कोटि के उद्योगों और वृहद उद्योगों को गतिशील बनाएगा, विनिमय कोष पूर्वक ग्राम सभा तक विनिमय विधान (आदान-प्रदान) को बनाये रखेगा। इसी प्रकार मुख्य राज्य और प्रधान राज्य सभाओं से मनोनीत उत्पादन कार्य समिति द्वारा वृहद् उद्योगों को और उत्पादनों को समृद्ध बनाने का कार्य करेगा। इनसे मनोनीत विनिमय कोष समिति द्वारा आदान-प्रदान विधि सम्पन्न होगी। विश्व राज्य परिवार सभा से मनोनीत उत्पादन कार्य और विनिमय कोष समितियों के द्वारा सम्पूर्ण राज्य में संतुलन को बनाए रखने का कार्य करेगा और आवश्यकतानुसार विश्व राज्य सभा द्वारा मनोनीत उत्पादन कार्य समिति विश्व समृद्धि के अर्थ में वृहद उद्योगों को स्थापित कर उत्पादन कार्य को सम्पन्न करेगा। विनिमय कोष द्वारा वस्तुओं का आदान-प्रदान कार्य सम्पन्न होगा। इसी प्रकार अन्य समितियों का भी संबंध अपने-अपने स्थिति में और ग्राम परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक रहेगा। इसी में दूरसंचार, परिवहनों का धारकता, वाहकता, उसकी रख रखाव की व्यवस्था सुपरिमार्जित रूप में बना रहेगा। शिक्षा संस्कार पूर्वक आवश्यकीय सभी तकनीकी शिक्षा को जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन सहित सहअस्तित्व मानसिकता से सम्पन्न कराने की व्यवस्था रहेगी। फलस्वरूप न्याय सुलभता और स्वास्थ्य संयम समितियों का अंतर संबंध अपने-अपने विशालता सहित सम्पूर्ण कार्य करने की व्यवस्था रहेगी।

कार्य मूल्य (श्रम मूल्य) की पहचान और मूल्यांकन

मानव में, से, के लिए जो कुछ भी कार्य वर्तमान में प्रकाशित संप्रेषित और अभिव्यक्त होता दिखाई पड़ता है यही जागृति के अनंतर उपयोगिता व कला के संयुक्त रूप में, सदुपयोगता पूर्वक पूर्णता को इंगित कराने के प्रमाणों में सार्थक होने के स्वरूप और पूर्ण जागृति (प्रामाणिकता) को वर्तमान में प्रमाणित करने के स्वरूपों में देखना समीचीन है। उपयोगिता, कला का प्रकाशन जीवन सहज आशा, विचार, इच्छा एवं उपयोगिता में अनुकूलता के अनुरूप, स्वरूप प्रदान करने के क्रम में इन अक्षय शक्तियों का नियोजन प्राकृतिक ऐश्वर्य पर स्थापित और सफल हो जाता है। इसी का नाम उत्पादन है। उत्पादन का परिभाषा यही है कि-

1. प्राकृतिक ऐश्वर्य पर कार्य (श्रम) नियोजन पूर्वक उपयोगिता व कला मूल्यों की स्थापना सहित सामान्य आकाँक्षा और महत्वाकाँक्षा के रूप में वस्तुओं को रूप प्रदान करने की क्रिया।
2. मानव द्वारा मानवेत्तर प्रकृति पर उपयोगिता एवं सुन्दरता की स्थापना किया जाना।
3. उपयोगिता मूल्य एवं उत्थान की दिशा में तन, मन और प्राकृतिक ऐश्वर्य में किया गया गुणात्मक परिवर्तन।

उत्पादन कार्य संबंधी परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है मानव अपने कर्ता पद को प्रयोग करने में समर्थ है। सम्पूर्ण कार्य कर्ता पद प्रतिष्ठा सहज वैभव है। **प्राकृतिक ऐश्वर्य पर ही श्रम नियोजन पूर्वक उत्पादन का अर्थ सार्थक होना पाया जाता है। इसके साथ मानव के कर्ता पद की महिमा और उसका संयोग ही है कि प्रत्येक मानव में कर्तव्य (करने का प्रमाण) नित्य प्रभावी है** अर्थात् नित्य प्रकाशमान है और वर्तमान है।

मानव परंपरा भी एक अनुस्यूत प्रक्रिया है। यह परंपरा मानव शरीर रचना रूपी प्रजनन क्रिया के रूप में परंपरा स्थापित है। यह स्वाभाविक रूप में ही ब्रह्मांडीय वातावरण, नैसर्गिक समृद्धि के योगफल में सम्पन्न हुआ होना देखा गया है। होने का तात्पर्य वर्तमान में प्रमाण ही है। इस विधि से मानव शरीर रचना का स्वरूप प्रणाली प्रजनन के नाम से इंगित होना सर्वविदित है। मानवीयता का आधार जागृत जीवन है। जीवन नित्य चैतन्य क्रिया है। जीवन अपने जागृति को प्रमाणित करने के लिए सुस्पष्ट हो चुका है। अर्थ प्रणाली का प्रयोजन भी हमें स्पष्ट हो चुका है कि शरीर पोषण, संरक्षण और समाज गति के अर्थ में उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता के अर्थ में प्रमाणित होते हैं। उपयोगिताएँ न्याय से सूत्रित, सदुपयोगिता समाधान से और प्रयोजनीयता प्रामाणिकता से सूत्रित है। इसी क्रम में समृद्धि का अनुभव सहज हो पाता है। **न्यायपूर्वक ही परिवार, समाज, सर्वतोमुखी समाधान पूर्वक ही परिवार, समाज, व्यवस्था और प्रामाणिकता पूर्वक ही जागृतिपूर्ण परंपरा का प्रमाण मानव में नित्य प्रवाहित होने की व्यवस्था है।** प्रवाहित होने का तात्पर्य पीढ़ी से पीढ़ी में अंतरित होने, परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक स्वीकृत होने और निष्ठा

पूर्वक हर पीढ़ी में प्रमाणित होने से है। यही परंपरा का तात्पर्य है। इस विधा में अर्थात् आवर्तनशील अर्थशास्त्र और व्यवस्था क्रम में यही प्रधान बिन्दु है कि यह व्यवस्था मानवीयतापूर्ण व्यवस्था का अंगभूत है। अर्थशास्त्र अपने अकेलेपन में कोई परिभाषा प्रतिष्ठा नहीं होती है। इसका साक्ष्य लाभोन्मादी धन का विज्ञान साक्षित कर चुकी है। अतएव अर्थशास्त्र व्यवस्था मानवीयतापूर्ण व्यवस्था परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था के अंगभूत वरतने वाली अविभाज्य कार्य के रूप में होना अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था समीचीन हैं।

मूल्यांकन के मूल में मानव ही प्रधान वस्तु है। प्रत्येक समझदार मानव अपने स्वायत्तता सहित सम्पूर्ण है। परिवार मानव के रूप में प्रमाण है। 'परिवार मानव' स्वायत्त मानवों का सीमित संख्या है जो परस्पर संबंधों को पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं, मूल्यांकन करते हैं उभयतृप्ति पाते हैं और परिवार सहज आवश्यकता के अनुसार उत्पादन कार्य को अपनाए रहते हैं, ऐसे उत्पादन कार्य को सफल, सार्थक बनाने के लिए आवश्यकता से अधिक पाने के लिए सभी पूरक रहते हैं। यही परिवार व्यवहार और परिवार कार्य को स्पष्टतया प्रमाणित करते हैं।

परिवार में दस समझदार का होना आवश्यक है। यही वैभव अखण्ड समाज अथवा विश्व परिवार के स्वरूप में भी इतना ही व्यवहार और इतने ही कार्य रूप में होना पाया जाता है। इसीलिए परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का नाम दिया है। इसी परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का अंगभूत आवर्तनशील अर्थशास्त्र को समझा गया है। इस आवर्तनशीलता क्रम में मूल्यों का मूल्यांकन करने के संबंध में स्पष्ट विश्लेषण, कार्यरूप, उसका संबंध सूत्र, उपयोगिता, सदुपयोगिता की ओर गति को पहचानने की आवश्यकता है। जिससे अखण्डता सार्वभौमता अक्षुण्ण हो सके।

विश्लेषण का स्वरूप वस्तु सहज व्याख्या ही है। क्योंकि सम्पूर्ण वस्तुएं अपने स्वरूप में विद्यमान है, वर्तमान हैं और व्यवस्था के अर्थ में वैभव है यथा जल, वायु, वन, खनिज धरती में सहज ही देखने को मिल रहा है। वनों में वन्य प्राणी, वन्य जीव और इस धरती में मानव कुल को हम पाते हैं। मानव परंपरा भी अपने आदिम स्वरूप से आज तक झेलता हुआ परंपरा के रूप में मूल्यांकित है। वन्य जीवन भी परंपरा के रूप में ही दिखते हैं। वन-वनस्पति और अन्न समुदाय भी परम्परा के रूप में हैं। **ये सभी परम्पराएं अर्थात् मानवेत्तर सभी परम्पराएं अपने नियमों से निबद्ध और व्यवस्था के रूप में होना पाया जाता है। मानव ही अपने व्यवस्था को पहचानना एक आवश्यकता के रूप में रहा है और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था के रूप में होना अनिवार्य है।** इस प्रकार विश्लेषणों का स्वरूप स्पष्ट है, कार्य रूप अपने आप में व्यवस्था के रूप में होना स्पष्ट हैं।

संबंध सूत्रों को मानव जागृति पूर्वक विकास संबंध, रचना संबंध, जीवन संबंध, जागृति संबंध के रूप में देखने को मिलता है। यह भी पहले स्पष्ट हो चुका है परमाणु में विकास का संबंध परमाणु अंशों के परस्परता में होना देखा गया है। क्योंकि हर परमाणु निश्चित परमाणु अंशों की संख्या के साथ ही अपने वैभव को व्यवस्था के अर्थ में स्थापित कर पाता है। इसी क्रम में गठनपूर्ण परमाणु (चैतन्य इकाई) जीवन पद में अपने को स्पष्ट करता है। विकास का चरमोत्कर्ष बिन्दु गठनपूर्णता ही है।

प्रत्येक परमाणु अपने भार बंधनवश अणुबंधनपूर्वक रचनाओं को प्रमाणित किया उसमें से एक रचना यह धरती है। इसी धरती में प्राणावस्था के वनस्पति संसार, जीवावस्था के जीव संसार, ज्ञानावस्था के मानव परंपरा का शरीर रचना और पदार्थावस्था में रासायनिक-भौतिक रचनाएं हमें दिखती हैं। रासायनिक-भौतिक रचना रूपी जीव शरीरों द्वारा वंशानुषंगीय विधि से व्यवस्था को जीवन ही प्रमाणित करता है और मानव संस्कारानुषंगीय (समझदारीपूर्ण) विधि से अपने व्यवस्था के रूप में प्रमाणित करने का प्रयास जारी है। इन्हीं प्रयास क्रम में मानव परिवार मूलक स्वराज्य विधि से व्यवस्था में भागीदार होने का स्वरूप स्पष्ट हो गया है। अतएव प्रत्येक रचना और प्रत्येक जीवन अपने में व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदार होने का तथ्य स्पष्ट होता है। यह सहअस्तित्व विधि से ही सार्थक होता हुआ प्रमाणित है। मानव भी सहअस्तित्व विधि से व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित कर सकता है। मानव ही जीवन जागृति के प्रमाणों को दृष्टा, कर्ता, भोक्ता विधियों से प्रमाणित करता है।

उपयोगिता को हम पहले से ही स्पष्ट किए हैं। यह क्रम से न्याय, धर्म और सत्य प्रधानता सहज प्रकाशन है। इस के आधार पर परिवार मानव, व्यवस्था मानव और जागृतिपूर्ण मानव (प्रमाणिक मानव) के रूप में अपने को प्रमाणित करने की गति में तन, मन, धन का उपयोग, सदुपयोग और प्रयोजनशील होने का तथ्य अभिहित है। इस प्रकार आवर्तनशीलता का आधार और सूत्र व्यवस्था ही है और व्यवस्था सूत्र के क्रम में ही वस्तुओं का सदुपयोग होना सहज है।

सदुपयोगिता क्रम और विधि से ही सम्पूर्ण मानव में आवश्यकताएँ संयत होते हैं, समृद्ध होने की संभावना बढ़ती है। फलत: उत्पादन कार्य करने के साधनों की वृद्धि एवं समय घटने की संभावना भी जुड़ी रहती है। क्योंकि आवश्यकता से अधिक साधन (समान्याकाँक्षा, महत्वाकाँक्षा के) एक पीढ़ी दूसरे पीढ़ी के लिए अर्पित करता रहेगा। यह मानव सहज कीर्ति है। इसी क्रम में सदुपयोगिता विधि से साधन अधिक होने के आधार पर ही समृद्धि सर्वसुलभ होना सहज है। समृद्धि के आधार पर ही उत्पादन मात्रा नियंत्रित होना भी सहज है। गुणवत्ता की ओर मानव का स्वाभाविक रुप से ध्यान होना पाया जाता है। क्योंकि हर मानव समृद्धि कल्पना के साथ ही गुणवत्ता की ओर परिकल्पना तो कर रहा है। जबकि अभी परिवार मूलक

स्वराज्य व्यवस्था इस धरती पर प्रचलित नहीं हुआ। इसके बावजूद मानव परोपकारी नेतृत्वशील व्यक्तियों को अधिकाधिक साधनों के साथ (भले ही राक्षसीयता से क्यों न हो एकत्रित किया हुआ) प्रयुक्त होता आंकलित हुआ।

परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था विधि में हर परिवार समृद्ध होना स्वाभाविक है। यह भी अभी तक स्पष्ट हो चुका है कि जागृत मानवों का समुदाय ही परिवार मानव और विश्व परिवार मानव के रूप में जीने में समर्थ होता है।

वस्तु मूल्यांकन के लिए मानव का शक्ति नियोजन, समय और साधन सहित प्राकृतिक ऐश्वर्य की समीचीनता का योगफल, इसमें शरीर का संयोजन निपुणता, कुशलतापूर्ण मानस और पांडित्य के साथ कार्य करना भी एक आवश्यकता है। जैसे एक आदमी हल चलाने में गति, पत्थर फोड़ने में गति, घर बनाने में गति, इसी प्रकार हर क्रियाकलापों में हर व्यक्ति का गति स्पष्ट हो जाता है। दूसरा विभिन्न कार्यों के अनुसार गति विविधता का होना भी देखा गया है। जैसे कृषि कार्य की गति, पशुपालन की गति, ग्राम शिल्प की गति, हस्तकला की गति, कुटीर उद्योग की गति, गृह निर्माण में गति, अलंकार द्रव्यों को निर्मित करने में गति, यंत्र रचनाओं में गति अलग अलग होना भी देखा गया है। मानव का ही कार्य गति मूलतः परिमापन का आधार है। इसी के साथ उत्पादन का तादात सामने आता है। हर उत्पादन सदुपयोगिता में, प्रयोजनशीलता में आवर्तनशील होता है। फलस्वरूप मूल्यांकन सुलभ होता है। इसी क्रम में अर्थात् आवर्तनशीलता क्रम में होने वाली तृप्ति क्रम में उसकी निरंतरता की प्रवृत्ति मानव में उदय होना स्वाभाविक है, क्योंकि मानव में जीवन शक्तियाँ अक्षय रूप में विद्यमान है ही। इसी विधि से हर वस्तु का उत्पादन और तृप्ति उसकी निरंतरता और सम्भावना समीचीन रहता ही है।

जितने समय में जो वस्तु जिस तकनीकी मानसिकता पूर्वक हस्तलाघव सहित परिमापित रूप में स्पष्ट हो गई, उसे एक उत्पादन अथवा एक श्रम के रूप में पहचानना सहज है। उसी के समान कार्य (श्रम) के साथ विनिमय होना स्वाभाविक है। ऐसी हर वस्तु का मात्रा और गुण के साथ श्रम परिमापन मानव सहज उपलब्धि है और सुगम है। इसके साथ एक परिशीलन वस्तु अवश्य ही मानव के मन में आता है क्या प्रत्येक मानव का हस्तलाघव, निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य एक सा हो पाता है? इसका उत्तर यही मिलता है कि परिवार में जितने भी समझदार व्यक्ति रहते हैं उनसे वह लक्षित कार्य पूरा होता ही रहता है। परिवार में एक दिन एक आदमी उत्पादन में कम पूरक हुआ, दूसरे दिन ज्यादा पूरक हुआ, इसकी नापतौल की आवश्यकता नहीं बन पाती। वस्तु उत्पादन कार्य को सीखने-करने में ज्यादा कम रहता है यही प्रधान मुद्दा है। किसी वस्तु के उत्पादन में अकेले से कुछ होता ही नहीं है। एक से अधिक लोगों के बीच में ही किसी

वस्तु का उत्पादन संभव है। मूल्यांकन के लिए एक से अधिक व्यक्तियों का होना ही है। विनिमय के लिए और व्यक्ति परिवार की आवश्यकता ही है। व्यक्ति के सीमा में कोई उत्पादन का निर्णय नहीं होता। इस बात को पहले से ही स्पष्ट किया है **हर मानव किसी न किसी मानवीयतापूर्ण परिवार में प्रमाणित होगा। हर मानव बहुआयामी अभिव्यक्ति है इसलिए उत्पादन कार्य एक आयाम है। परिवार में लक्ष्य उत्पाद है न कि श्रम ज्यादा कम।**

विनिमय कार्य विधि की यह सही बेला है। मानव ने पहले भी एक बार विनिमय का प्रयास किया। उस प्रयास में उत्पादन कार्य के मूल्यांकन का आधार श्रम मूल्य नहीं रहा। उसके विपरीत लाभ मानसिकता उस समय में भी व्यापारी में बना रहा। लाभ मानसिकताएँ शोषण मूलक होते ही हैं। इसमें संग्रह-सुविधा का पुट रहता ही है। यह आज भी स्पष्टतया दिखाई पड़ता है। इस आधार पर मानव अपने व्यवस्था का अंगभूत अथवा समग्र व्यवस्था के अंगभूत रूप में अर्थ और आर्थिक गति को पहचानने की स्थिति में यह पता लगता है कि अस्तित्व में सम्पूर्ण विकास सहज सीढ़ियाँ आवर्तनशीलता और पूरकता विधि सम्पन्न है। सहअस्तित्व में निरंतर पूरकता और विकास ही समाधान के रूप में स्पष्ट है। इसी क्रम में मानव अपने दृष्टा पद प्रतिष्ठा को पहचानने के उपरांत ही स्वयं में व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी होने की आवश्यकता को अनुभव किया और जागृति मूलक विधि से ही परिवार मूलक स्वराज्य मानव सहज पद होना मानव का अभिलाषित, आकांक्षित और आवश्यकता के रूप में पहचाना गया। सर्वशुभ सर्वसुलभ होने के लिए आवर्तनशील अर्थव्यवस्था की समग्र व्यवस्था के अंगभूत कार्यक्रम होना देखा गया है। इसी विधि से **पहला आर्थिक असमानताएँ समाप्त होते हैं और समृद्धि के आधार पर हर समझदार परिवार में प्रमाण सुलभ होना सहज है। दूसरा, प्रतीक मूल्य से छूटकर प्राप्त मूल्यों से तृप्त होने का सूत्र सहज रूप में रहा है उसमें जागृति प्रमाणित होती है। तीसरा, संग्रह का भूत संघर्ष के साथ शोषण के साथ जुड़ा ही रहता है, यह सर्वथा दूर होकर परिवार मानव के रूप में हर व्यक्ति अपने दायित्व, कर्तव्यों का निर्वाह करने का उत्सव सम्पन्न होने का अवसर सर्वदा समीचीन रहता ही है। चौथा, परिवार मानव विधि से ही स्वराज्य व्यवस्था उसके अंगभूत आवर्तनशील अर्थव्यवस्था गतिशील होने के क्रम में ही विश्व परिवार और व्यवस्था के साथ सूत्रित होने का कार्यक्रम मानव जागृति सहज वैभव के रूप में होना समझा गया।** और यह इस तथ्य का द्योतक है समुदायों के सीमाओं में स्वीकृत प्रत्येक मानव दिशाविहीनता, लक्ष्यविहीनता फलत: सार्वभौम कर्तव्य विमूढ़ता से ग्रसित हो गया है। इस पीड़ा से छूटने का सर्वसुलभ कार्यक्रम और मार्ग प्रशस्त होना समीचीन है।

इस धरती में नैसर्गिकता के परिप्रेक्ष्य में इस धरती के साथ जुड़ी हुई अनंत ब्रह्मांडीय किरणों-विकिरणों का आदान-प्रदान रूपी अनुस्यूत वातावरणों के परिप्रेक्ष्य में सुखद सुन्दर ये धरा अपने में सजी धजी थी। इन तीनों परिप्रेक्ष्यों के साथ मानव अपने ही भ्रमवश व्यक्त किए गए भय, प्रलोभन के आधार पर ही जितने भी विसंगतियाँ निर्मित किया है। विसंगतियाँ सदा ही पीड़ा का कारण होता है। यह तथ्य सबके समझ में आ चुका है। अस्तु, इन तीनों परिप्रेक्ष्यों में संगीतीकरण विधि को पहचानने का अवसर अभी भी समीचीन है। इस सौभाग्यमयी अवसर को सार्थक बनाने का मार्ग, विधि, ज्ञान, दर्शन, विवेक, विज्ञान, तर्क, निर्णय यह सब समग्र व्यवस्था में भागीदारीपूर्वक समाधानित होने का, सूत्र का अध्ययन और स्वीकृतियाँ अर्थात् संस्कार मानव के लिए समीचीन हो गया है। इसे जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान के रूप में पहचाना गया है।

अध्याय - 9

परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था योजना

1) स्वराज्य व्यवस्था के लिए पूर्व तत्परता एवं आंकलन

2) स्वराज्य सभा

3) शिक्षा-संस्कार व्यवस्था

4) उत्पादन-कार्य व्यवस्था

5) स्वायत्त सहकारी विनिमय-कोष व्यवस्था

6) स्वास्थ्य-संयम व्यवस्था

7) न्याय-सुरक्षा व्यवस्था

8) मूल्यांकन, प्रोत्साहन नियंत्रण प्रक्रिया

1) स्वराज्य व्यवस्था के लिए पूर्व तत्परता एवं आंकलन

ग्राम स्वराज्य व्यवस्था को आरंभ करने के पूर्व यह आवश्यक है कि उस ग्राम के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त कर ली जाय। इस जानकारी, सर्वेक्षण एवं आंकलन के आधार पर ग्राम स्वराज्य व्यवस्था की विस्तृत योजना बनायी जाये। जानकारी का प्रकार निम्न होगा :-

1. ग्राम का नाम, जिला, पोस्ट ऑफिस, पिन कोड, प्रान्त, स्थानीय तापमान, वर्षा।
2. गाँव की जनसंख्या, आयु, वर्ग, स्त्री, पुरूष, बच्चे, लड़का, लड़की के आधार पर।
3. प्राप्त शैक्षणिक स्थितियों, योग्यताओं का आंकलन 10 वर्ष से 18 वर्ष, 19 वर्ष से 30 वर्ष और 30 वर्ष से ऊपर कितने साक्षर हैं, कितने नहीं। कहाँ तक पढ़े हैं?
4. कितने लोग उत्पादन, नौकरी, मजदूरी, ग्राम शिल्प, हस्त कला, कुटीर उद्योग, ग्रामोद्योग में कार्य कर रहे हैं। कितने लोग बेरोजगार हैं।
5. कितने व्यापार करने में व्यस्त हैं। कितनी दुकानें हैं और कितने इन पर आश्रित हैं।

गाँव की सामान्य सुविधाओं का आंकलन :-

1. गाँव व गाँव के भूक्षेत्र, जलवायु समीपस्थ वन, वन-खनिज, वन-सम्पदा, वनौषधियों का आंकलन।
2. आवास, ईंधन, प्रकाश, पीने का पानी, जल-मल व्यवस्था, पाठशाला, ऊर्जा स्त्रोतों, सड़क व्यवस्था, डाक घर, बैंक, सांस्कृतिक भवन, तालाब, नहर, नदी, तलीय जल स्रोत आदि का आंकलन व सर्वेक्षण।

उत्पादन संबंधी आंकलन :-

1. कृषि भूमि, पड़ती भूमि, कृषि एवं वन संभावित भूमि। सिंचाई व्यवस्था, जल के स्रोत, तालाब, नलकूप, नहर, नदी आदि संबंधी स्थिति और संभावनाओं का आंकलन।
2. फसलों के किस्म, प्रकार, कृषि उपज, तादाद, वर्ष-फसल चक्र, स्थानीय अभाव, समस्याएं व संभावनाएं।
3. कृषि संबंधी तकनीक व ज्ञान में पारंगत व्यक्तियों की संख्या। क्या वे अन्य को पारंगत बना सकते हैं?
4. ऊर्वरक व्यवस्था, गोबर, कम्पोस्ट खाद व रासायनिक खादों के उपयोग के संबंध में जानकारी।
5. बीजों के प्रकार, उनके बारे में जानकारी। कृषि संबंधी औज़ारों, यंत्रों, कीटनाशक, दवाइयों आदि की उपलब्धता व अभ्यास के बारे में जानकारी।
6. पशुधन के बारे में पूरी जानकारी। उनकी तादाद, नस्ल, प्रकार के अनुसार। कितने कृषक, कृषि के साथ गौशाला रखते हैं? कितने गोबर गैस प्लांट हैं? कितना लगना है?
7. हस्त शिल्प संबंधी उत्पादन जैसे - चित्रकला, मूर्तिकला, शिल्प कला, बुनाई, कढ़ाई, छपाई, रंगाई, बधाई पत्र, सूत कातना, इनग्रेविंग आदि में कितने लोग व्यस्त हैं? उनसे उपलब्ध तकनीक व विशेषता आदि का आंकलन।
8. ग्राम शिल्प संबंधी उत्पादन जैसे धातु कला, रेशम, काष्ठ कला, मिट्टी और चर्म कला आदि में कितने लोग प्रशिक्षित व व्यस्त हैं। इनमें उपलब्ध तकनीक व विशेषज्ञता का आंकलन।
9. कुटीर उद्योग द्वारा उत्पादन कार्यों में कितने लोग व्यस्त हैं? वे क्या व कितना बना रहे हैं? इसी तरह ग्रामोद्योग के बारे में आंकलन। सेवा कार्यों में लगे व्यक्तियों का सर्वेक्षण।

विनिमय संबंधी आंकलन :-

सभी उत्पादित वस्तुओं की संख्या, तादाद, प्रकार, उपयोगिता व मूल्य। वर्तमान में विनिमय व्यवस्था का आंकलन। कितनी दुकानें हैं, कितने व्यक्ति क्रय-विक्रय कार्य में लगे हुए हैं। गोदाम आदि स्टोरेज व्यवस्था का आंकलन।

स्थानीय रूप से आवश्यक वस्तुएँ जो बाह्य बाजारों से खरीदी और बेची जाती हैं।

शिक्षा संबंधी आंकलन :-

पाठशाला है या नहीं। यदि है तो कहाँ तक पढ़ाई होती है? कितने विद्यार्थी हैं? कितने शिक्षक हैं? आयु, वर्ग के आधार पर शिक्षा का सर्वेक्षण। शिक्षा पाठ्यक्रम का निर्वाह कैसा है? स्थानीय आवश्यकतानुसार शिक्षा दी जाती है या केवल किताबी ज्ञान दिया जाता है? शिक्षा प्राप्त कर कितने व्यक्ति गाँव में रह रहे हैं? कितने गाँव छोड़ दिए हैं? महिलाओं व बच्चों में जागरूकता कैसी है? कितने साक्षर हैं? कितने साक्षर होना शेष है? आयु वर्ग के अनुसार।

निकटवर्ती तकनीकी व अन्य समाज सेवी संस्थाओं के सहयोग की संभावना।

स्वास्थ्य संयम संबंधी आंकलन :-

1. जन्म व मृत्यु दर।
2. सीमित व संतुलित परिवार के प्रति ग्रामवासी कितने प्रतिशत जागरूक हैं?
3. अनावश्यक आदतों का सर्वेक्षण (गांजा, भांग, तम्बाकू, चरस, शराब, अफीम, धूम्रपान, जुआ आदि बुरी आदतों) वर्गीकरण व उसके लिए व्यक्तियों का नाम आयु सहित आंकलन।
4. घरेलू चिकित्सा के प्रति जागरूकता और आंकलन।
5. स्थानीय रूप से उपलब्ध जड़ी-बूटियों के प्रकार व उनके औषधि के रूप में प्रयोग, उपयोग और संरक्षण संभावना।
6. सामान्य व विशेष चिकित्सा सुविधा का आंकलन।
7. चिकित्सालय और औषधालय है या नहीं? व्यायाम शाला, खेल व्यवस्था, योग प्रशिक्षण, सांस्कृतिक भवन है या नहीं?

न्याय सुरक्षा संबंधी आंकलन :-

1. ग्राम का प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता और पात्रता के अनुसार उत्पादन करता है या उत्पादन में भागीदार है या नहीं? के रूप में उत्पादन न्याय का आंकलन।
2. उत्पादित वस्तुओं का शोषण विहीन पद्धति से कहाँ तक विनिमय, आदान-प्रदान हो रहा है - के रूप में विनिमय न्याय का आंकलन।
3. स्वधन, स्वपुरूष/स्वनारी, दया पूर्ण कार्यों और तन, मन, धन रूपी अर्थ के सदुपयोग के आधार पर, आचरण-न्याय का आंकलन।
4. संबंधों के साथ विश्वास निर्वाह के रूप में, व्यवहार-न्याय का आंकलन।
5. वर्तमान में कितने अपराध और अपराधी हैं? कितने अपराध जमीन जायदाद संबंधी है? नारी-पुरूष संबंधों से संबंधित अपराध कितने दर्ज हैं? ऐसे दर्ज अपराधों की संख्या कितनी है जिनका निर्णय होना शेष है?
6. वर्तमान न्याय व्यवस्था के प्रति मानसिकता कैसी है?
7. गाँव सुरक्षा संबंधी आवश्यकताओं का आंकलन व वर्तमान में सुरक्षा व्यवस्था कैसी है?

2) स्वराज्य सभा

ग्राम का प्रत्येक परिवार दस (10) व्यक्तियों के स्वरूप में होगा। परिवार का प्रत्येक सदस्य मिलकर परिवार सभा का गठन करेंगे। परिवार सभा के सब सदस्य मिलकर एक ऐसे व्यक्ति को प्रतिनिधि के रूप में चुनकर परिवार समूह सभा के लिए निर्वाचित करेंगे जो समाधान सहित परिवार में समृद्धि पूर्वक जीते हों।

इस प्रकार 10 परिवारों के प्रधानों से मिलकर एक "परिवार समूह सभा" का गठन किया जायेगा। ऐसे प्रत्येक 10 "परिवार समूह सभा" से एक व्यक्ति को, ग्राम सभा के लिए निर्वाचित करेगा। इसी प्रकार 10 परिवार समूहों से निर्वाचित 10 सदस्य, ग्राम सभा का गठन करेंगे, जिसमें से एक ग्राम सभा का प्रधान होगा। सामान्यतः सौ परिवार मिलकर एक "ग्राम स्वराज्य सभा" का गठन करेंगे जिसमें 10 निर्वाचित सदस्य होंगे। यदि किसी ग्राम में 100 (एक सौ) परिवार से ज्यादा जनसंख्या है तो उसी 10 के गुणांक में उस ग्राम सभा के सदस्य होंगे। उदाहरण के लिए यदि गाँव की जनसंख्या 2000 (दो हजार) है तो उस "ग्राम सभा" में 20 सदस्य होंगे।

कालान्तर में उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक ग्राम सभा के निर्वाचित सदस्य अपने दस सदस्यों में से एक सदस्य को “ग्राम समूह सभा” में, ग्राम समूह सभा के दस सदस्य एक को, ग्राम क्षेत्र सभा, ग्राम क्षेत्र सभा के दस सदस्यों में से एक सदस्य को मंडल सभा, मंडल सभा के 10 सदस्यों में से एक सदस्य को “मंडल समूह सभा”, मंडल समूह सभा के दस सदस्यों में से एक सदस्य को “मुख्य राज्य सभा”, मुख्य राज्य सभा के दस सदस्यों में से एक सदस्य को “प्रधान राज्य सभा” व प्रधान राज्य सभा के दस सदस्यों में से एक सदस्य को “विश्व राज्य सभा” के लिये निर्वाचित करेंगे। इस प्रकार प्रत्येक स्तर में प्रत्येक व्यक्ति सिर्फ 10 व्यक्तियों का मूल्यांकन कर अगली सभा के लिए सदस्य निर्वाचित करेंगे।

निर्वाचित सदस्यों की अर्हता :-

परिवार से लेकर ग्राम-सभा तक प्रत्येक निर्वाचित सदस्य की अर्हता निम्न होगी :-

1. उसकी आयु कम से कम 21 वर्ष होगी।
2. वह समाधान सहित समृद्धि पूर्वक जीता होगा और व्यवसाय में स्वावलम्बी व व्यवहार में सामाजिक होगा।
3. मानवीय आचरण के रूप में वर्तमान में प्रकाशित होगा।

कार्य क्षेत्र :-

1. ग्राम सभा का कार्य 100 परिवारों के साथ होगा। उसका भू-क्षेत्र, ग्राम सीमा तक होगा। ग्राम सीमावर्ती क्षेत्र की समस्त भूमि, वन सम्पदा, खनिज, जल स्त्रोत व अन्य सम्पदाएं ग्राम सभा के अधिकार क्षेत्र में होंगी।
2. ग्राम सभा, सामान्यतः ग्राम के सभी परिवारों का प्रतिनिधित्व करेंगी।

कार्यकाल :-

ग्राम सभा 4 वर्ष के लिए निर्वाचित होंगी। हर चार वर्ष बाद परिवार व “परिवार समूह सभा” को अपने-अपने प्रतिनिधि को फिर से निर्वाचित करने का अधिकार होगा। हर ‘परिवार समूह सभा’ के दस सदस्यों को ग्राम सभा में फिर से नए सदस्यों को चुनने का अधिकार होगा।

कार्य शैली :-

प्रत्येक ग्राम सभा, “ग्राम स्वराज्य व्यवस्था” को स्थापित करने के लिए निम्न 5 समितियों का गठन करेगी:-

1. मानवीय शिक्षा-संस्कार समिति
2. उत्पादन-कार्य व सलाहकार समिति
3. लाभ-हानि मुक्त सहकारी विनिमय-कोष समिति
4. स्वास्थ्य-संयम समिति
5. मानवीय न्याय-सुरक्षा समिति

उपर्युक्त समितियाँ ग्राम सभा के मार्गदर्शन के आधार पर कार्य करेंगी। उपरोक्त समितियाँ क्रम से ग्राम में शिक्षा-संस्कार व्यवस्था, उत्पादन-कार्य व्यवस्था, विनिमय-कोष व्यवस्था, स्वास्थ्य-संयम व्यवस्था व न्याय सुरक्षा व्यवस्था को स्थापित करेंगी। उपरोक्त समिति के सदस्यों का मनोनयन ग्राम सभा करेगी। प्रत्येक मनोनीत सदस्य इन समितियों का अंशकालिक सदस्य होगा व वह अपनी समिति का कर्तव्य एवं दायित्वों का निर्वाह अपने निजी व्यवसाय के अलावा करेगा। वयोवृद्ध स्त्री व पुरूष, जो जीवन विद्या व वस्तु विद्या में पारंगत है उनको समितियों के अंशकालिक व पूर्णकालिक सदस्य होने का अवसर रहेगा। प्रत्येक समिति का विस्तृत कार्यक्रम अगले खंडों में विस्तार से दिया गया है।

ग्राम स्वराज्य व्यवस्था के लक्ष्य निम्न होंगे :-

1. गाँव के प्रत्येक मानव को मानवीय शिक्षा संस्कार से सम्पन्न करना।
2. प्रत्येक व्यक्ति को व्यवसाय में निपुणता-कुशलता को सहज सुलभ करना।
3. प्रत्येक व्यक्ति को व्यवहार में सामाजिक बनाना।
4. प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी उत्पादन कार्य में प्रवृत्त करना।
5. उत्पादित वस्तुओं को विनिमय कोष द्वारा, लाभ हानि मुक्त पद्धति से क्रय-विक्रय करने की व्यवस्था प्रदान करना और ग्रामवासियों के लिए आवश्यकीय वस्तुओं को उपलब्ध कराना।
6. प्रत्येक व्यक्ति को न्याय व सुरक्षा सहज सुलभ कराना। साथ ही सुधारवादी प्रक्रिया से, गलती व अपराधों का निराकरण करना।
7. प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वास्थ्य के प्रति अवधारणा पूर्वक संकल्पबद्ध करना, व्यायाम व खेलों के लिए प्रोत्साहित करना, संक्रामक रोग-विरोधी टीकों की उपयोगिता से अवगत कराना। साथ ही सहज व सस्ती चिकित्सा की व्यवस्था करना।
8. प्रत्येक व्यक्ति में स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, परिवार व्यवस्था के प्रति विश्वास व निष्ठा उत्पन्न करना।

9. प्रत्येक व्यक्ति/परिवार अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन करे, ऐसा सुनिश्चित उपाय करना।
10. ग्राम के लिए सामान्य सुविधाओं की व्यवस्था करना।
11. व्यक्तित्व व प्रतिभा का संतुलन उदय हो, ऐसा सुनिश्चित उपाय करना।
12. प्रत्येक परिवार में भौतिक समृद्धि व बौद्धिक समाधान साक्षित करना, समस्त ग्रामवासियों की परस्परता में अभयता व सहअस्तित्व चरितार्थ करना।

कर्तव्य व दायित्व :-

1. ग्राम सभा पूर्ण रूप से ग्रामवासियों के प्रति उत्तरदायी होगी। साथ ही वह "ग्राम समूह सभा" के प्रेरणा व उनके द्वारा दिए गए सुझावों पर निर्णय लेगी।
2. सर्वेक्षण, आंकलन व अध्ययन के आधार पर प्रत्येक परिवार के लिए समयबद्ध स्वराज्य कार्य योजना बनाएगी व क्रियान्वयन के लिए विभिन्न समितियों को आवश्यक निर्देश देगी।
3. ग्राम की पाँचो समितियों के साथ उनके अपने-अपने लक्ष्य प्राप्त करने में पूर्ण सहयोग देगी व उनके लिए जो भी सुविधायें, तकनीकी ज्ञान आदि की आवश्यकता होगी उसे उपलब्ध करायेगी।
4. "विनिमय कोष" व सरकारी बैंक के बीच संयोजन (एजेन्सी) का कार्य करेगी।
5. पाँचों समितियों के कार्यों का समय-समय पर मूल्यांकन करेगी व उन्हें आवश्यक निर्देश देगी।
6. सर्वेक्षण, आंकलन, अध्ययन व प्राथमिकताओं के आधार पर ग्राम में सामान्य सुविधाओं की व्यवस्था करेगी। इस दिशा में यदि किसी समिति व अन्य संस्थाओं के सहयोग की आवश्यकता हुई तो उसे प्राप्त करेगी।
7. निम्न सामान्य सुविधाओं की व्यवस्था ग्रामसभा द्वारा की जायेगी -
   (1) प्रत्येक परिवार के लिए आवास का प्रावधान। इसके लिए स्थानीय व्यक्तियों व वस्तुओं का अधिक से अधिक उपयोग किया जावेगा।
   (2) शोधन विधि द्वारा शुद्ध व पवित्र पीने के पानी की व्यवस्था।
   (3) पेयजल व मल जल की व्यवस्था करना।
   (4) कृषि के साथ पशु पालन आवश्यक होने के कारण "गोबर गैस प्लांट" द्वारा, गोबर गैस गाँव में सामूहिक या व्यक्तिगत रूप से उपलब्ध कराना। प्राकृतिक गैस उपलब्ध होने की स्थिति में, उसका सर्वाधिक उपयोग करने की, प्रणाली को विकसित करना।

(5) गोबर खाद व कम्पोस्ट खाद के लिए व्यापक व्यवस्था करना।

(6) सौर ऊर्जा का सर्वाधिक प्रयोग करने की प्रणाली विकसित करना ताकि उसका उपयोग, पानी पंप करने, खाना पकाने, वाष्पीकरण, अनाज सुखाने, ठंडा या गर्म करने में किया जा सके, जिससे लकड़ी, कोयला आदि परंपरागत ईंधनों को जलाने से रोका जा सके। इसी संदर्भ में पवन चक्की व जल प्रवाह शक्ति की उपयोगिता की संभावना का पता लगाना व यदि संभव हुआ तो क्रियान्वयन करना।

(7) प्रत्येक घर के साथ शौचालय व सामूहिक शौचालय की व्यवस्था करना।

(8) सड़क मार्ग, रेल, यातायात व्यवस्था को सुदृढ़ बनाना व निकट की मंडियों व बाजारों की सड़कों से जोड़ना।

(9) दूरभाष व दूरसंचार सेवा, डाक घर, बैंक आदि की व्यवस्था करना।

(10) ग्राम के लिए पाठशाला, चिकित्सा केन्द्र, विनिमय-कोष के लिए भवन, गोदाम, बहुउद्देशीय भवन की व्यवस्था करना जो न्याय सभा, संबोधन सभा, सांस्कृतिक सभा, विवाह व मिलन सभा, प्रार्थना सभा, स्वागत सभा व छाया के अंदर खेलने के लिए उपयोगी रहेगा।

परिवार समूह व परिवार प्रतिनिधि के कर्तव्य एवं दायित्व :-

1. परिवार प्रतिनिधि, सदस्यों के साथ व्यवहार, आचरण, स्वास्थ्य, उत्पादन व उत्पादन संबंधी साधनों के संदर्भ में स्वयं प्रमाणिक रहते हुए, उनके अनुरूप सभी सदस्यों को होने के लिए प्रेरणा स्त्रोत बने रहेंगे।

2. परिवार प्रतिनिधि, परिवार के अन्य सदस्यों का मूल्यांकन करेंगे। परिवार प्रतिनिधि का मूल्यांकन, परिवार समूह सभा करेगा। आचरण के लिए मूल्यांकन का आधार स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष व दया पूर्ण कार्य रहेगा।

   व्यवहार के मूल्यांकन का आधार मानव व नैसर्गिक संबंधों व उनमें निहित मूल्यों की पहचान व निर्वाह से है। साथ ही तन, मन, धन रूपी अर्थ के सदुपयोग, सुरक्षा के आधार पर नैतिकता का मूल्यांकन किया जायेगा।

3. परिवार में किसी से गलती होने की स्थिति में सुधारने का कर्तव्य, परिवार के सभी सदस्यों का होगा। इसमें परिवार प्रतिनिधि उभय पक्षीय प्रेरक का कार्य करेगा।

4. परिवार संबंधी समस्त जानकारी, जिसके आधार पर परिवार के सदस्यों को शिक्षा संस्कार, उत्पादन कार्य आदि में लगाना है, के लिए सभी तथ्यों को एकत्रित कर, ग्राम सभा को उपलब्ध कराने का कर्तव्य, परिवार प्रतिनिधि का होगा। परिवार में यदि कोई व्यक्ति, किसी विशेष योग्यता, हस्तकला, हस्त शिल्प, कृषि व अन्य तकनीकी या साहित्य कला में माहिर है तो यह जानकारी भी, ग्राम की संबंधित समिति को उपलब्ध कराएगा।
5. परस्पर परिवारों के विवादों व उत्पन्न कठिनाइयों के निवारण का दायित्व उन परिवार के प्रतिनिधि व परिवार समूह सभा का होगा। परिवार समूह सभा द्वारा विवाद हल न होने की स्थिति में ही विवाद "न्याय सुरक्षा समिति" के पास जायेगा।

3) शिक्षा-संस्कार व्यवस्था

ग्राम में शिक्षा-संस्कार व्यवस्था का संचालन "शिक्षा-संस्कार समिति" करेगी। शिक्षा-संस्कार समिति में कम से कम एक व्यक्ति होगा या अधिक से अधिक तीन व्यक्ति होंगे।

"शिक्षा-संस्कार समिति" के सदस्यों की अर्हता :-

शिक्षा-संस्कार समिति के सदस्यों की अर्हताएं निम्न प्रकार होंगी :-

1. प्रत्येक सदस्य जीवन विद्या एवं वस्तु विद्या में पारंगत रहेगा।
2. वह व्यवहार में सामाजिक व व्यवसाय में स्वावलम्बी होगा।
3. उसमें स्वयं में विश्वास व श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करने का प्रमाण रहेगा।
4. प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलित होने का प्रमाण रहेगा।

शिक्षा-संस्कार व्यवस्था के मूल उद्देश्य :-

प्रत्येक मानव को -

1. व्यवहार में सामाजिक।
2. व्यवसाय में स्वावलम्बी।
3. स्वयं के प्रति विश्वासी।
4. श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करने में पारंगत करना जिससे व्यक्तित्व व प्रतिभा का संतुलन हो सके।

शिक्षा-संस्कार व्यवस्था का स्वरूप :-

1. प्रत्येक मानव को व्यवहार व्यवसाय (उत्पादन) शिक्षा में पारंगत बनाना।
2. प्रत्येक मानव को व्यवसाय (तकनीकी शिक्षा) शिक्षा में पारंगत कर एक से अधिक व्यवसायों में स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर निपुण व कुशल बनाना।
3. प्रत्येक मानव को साक्षर बनाने।
4. "ग्राम सभा" पाठशाला की व्यवस्था, स्थानीय आवश्यकतानुसार करेगी।
5. आयु वर्ग के आधार पर शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था होगी।

शिक्षा की व्यवस्था निम्नलिखित कोटि के ग्रामवासियों के लिए की जावेगी।

1. बाल शिक्षा
2. बालक जो स्कूल छोड़ दिए हैं व दस वर्ष से अधिक आयु के हैं, ऐसे बच्चों को 30 वर्ष के अन्य अशिक्षित व्यक्तियों के साथ व्यवहार शिक्षा व व्यवसाय शिक्षा में पारंगत बनाने की व्यवस्था रहेगी।
3. 30 वर्ष की आयु से अधिक स्त्री पुरूषों को साक्षर बनाकर, व्यवहार शिक्षा में पारंगत बनाने की व्यवस्था होगी।
4. स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर आवश्यकता होने पर स्त्री पुरूषों के लिए अलग शिक्षा व्यवस्था होगी जो कि "स्वास्थ्य-संयम समिति" के साथ मिलकर कार्य करेगी।
5. व्यवसाय शिक्षा के लिए "शिक्षा-संस्कार समिति" "उत्पादन सलाहकार समिति" व "विनिमय-कोष समिति" के साथ मिलकर कार्य करेगी व सम्मिलित रूप से यह तय करेगी कि ग्राम की वर्तमान व भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर, किस-किस व्यक्ति को, किस-किस व्यवसाय की शिक्षा दी जाए। "विनिमय-कोष समिति" ऐसे उपायों की जानकारी देगी, जिनकी गाँव से बाहर अच्छी मांग है।
6. कृषि, पशुपालन, ग्राम शिल्प, कुटीर उद्योग, ग्रामोद्योग व सेवा में जो पहले से पारंगत है, उनके द्वारा ही अन्य ग्रामवासियों को पारंगत करने की व्यवस्था की जायेगी।
7. यदि उपर्युक्त शिक्षा में कभी उन्नत तकनीकी विज्ञान व प्रौद्योगिकी को समावेश करने की आवश्यकता होगी तो उसको समाविष्ट करने की व्यवस्था रहेगी।
8. व्यवहार शिक्षा के लिए "शिक्षा-संस्कार समिति" "स्वास्थ्य-संयम समिति" के साथ मिलकर कार्य करेगी।

9. मानवीयता पूर्ण व्यवहार (आचरण) व जीने की कला सिखाना व अर्थ की सुरक्षा तथा सदुपयोगिता के प्रति जागृति उत्पन्न करना ही, व्यवहार शिक्षा का मुख्य कार्य है।

रूचिमूलक आवश्यकताओं पर आधारित उत्पादन के स्थान पर मूल्य व लक्ष्यमूलक अर्थात् उपयोगिता व प्रयोजनशीलता मूलक उत्पादन करने की शिक्षा प्रदान करना। जिससे प्रत्येक मानव में अधिक उत्पादन, कम उपभोग, असंग्रह, अभयता, सरलता, दया, स्नेह, स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, बौद्धिक समाधान, प्राकृतिक सम्पत्ति का उसके उत्पादन के अनुपात में व्यय व उसके उत्पादन में सहायक सिद्ध हों। ऐसी मानसिकता का विकास करना, व्यवहार शिक्षा में समाविष्ट होगा।

कालान्तर में "ग्राम शिक्षा-संस्कार समिति" क्रम से ग्राम समूह, क्षेत्र सभा, मंडल सभा, मंडल समूह सभा, मुख्य राज्य समूह सभा, प्रधान राज्य सभा व विश्व राज्य की "शिक्षा-संस्कार समिति" से जुड़ी रहेगी। अतः विश्व में कहीं भी स्थित कोई जानकारी "ग्राम-शिक्षा-संस्कार समिति" को उपरोक्त सात स्त्रोतों से तुरंत उपलब्ध हो सकेगी। पूरी जानकारी का आदान प्रदान कम्प्यूटर व्यवस्था द्वारा आपस में जुड़ा रहेगा। इसी प्रकार अन्य चारों समितियाँ भी ऊपर तक आपस में जुड़ी रहेगी।

4) उत्पादन कार्य व्यवस्था

ग्राम में हर तरह का उत्पादन व सेवा कार्य "ग्राम उत्पादन-कार्य सलाह समिति" द्वारा संचालित किया जायेगा। यह समिति अन्य समितियों के साथ मिलकर कार्य करेगी। यह समिति गाँव के प्रत्येक स्त्री पुरूष को, किसी न किसी उत्पादन कार्य में लगावेगी। स्थानीय सर्वेक्षण के आधार पर जिसका विस्तृत विवरण सर्वेक्षण प्रक्रिया के अंतर्गत दिया जा चुका है, उत्पादन समिति प्रत्येक व्यक्ति को, उसकी वर्तमान अर्हता के आधार पर कोई उत्पादन कार्य करने की सलाह देगी व उनके लिए उस व्यक्ति को आवश्यक प्रशिक्षण व अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराएगी। जो भी उत्पादन कार्य होना है वह मानव की सामान्य आकांक्षा (आवास, आहार, अलंकार) व महत्वाकांक्षा (दूरगमन, दूरदर्शन, दूरश्रवण) संबंधी आवश्यकताओं पर आधारित होगा।

"उत्पादन कार्य सलाहकार समिति" ग्राम सभा के सहयोग से गाँव की सामान्य सुविधाओं को स्थापित करने में सहयोग देगी व आवश्यक जानकारी उपलब्ध कराएगी। पर्यावरण सुरक्षा व पर्यावरण के साथ एक सूत्रता को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाएगी। प्रदूषण फैलाने संबंधी कोई भी उत्पादन कार्य नहीं किया जायेगा।

ग्राम के कुछ आयाम निम्नानुसार होंगे।

1. कृषि
2. पशु-पालन
3. वन व वनोपज
4. खनिज
5. हस्त शिल्प
6. ग्राम शिल्प
7. कुटीर उद्योग
8. ग्रामोद्योग
9. सेवा

कृषि :-

वर्तमान स्थिति में ग्राम की कृषि उपज, फसलों की किस्में प्रकार, तादाद, कृषि में व्यस्त धन-बल, कृषि भूमि, पड़ती भूमि, कृषि संभावित भूमि, सिंचाई, उर्वरक, व्यवस्था, पशुपालन व्यवस्था आदि के आधार पर "उत्पादन-कार्य सलाहकार समिति" ग्राम सभा व विनिमय समिति के साथ मिलकर, एक ग्रामव्यापी कृषि योजना तैयार करेगी। जिसमें पशुपालन व ग्राम सीमावर्ती वन प्रबंध का समावेश होगा। योजना में पूरे ग्राम की स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर धान, गेहूँ, दलहन, तिलहन, मसाला, सुगन्धित वनस्पतियों, औषधियों, रेशा, कन्द जाति की उपजों, साग सब्जियों, फलों आदि की आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने का कार्यक्रम होगा।

योजना में निम्न कार्यों की व्याख्या करने का कार्यक्रम होगा।

1. स्थानीय रूप से जो कृषि में पारंगत है उनमें ग्राम के अन्य लोगों (जो कृषि कार्य कर रहे हैं या जिनको भविष्य में कृषि कार्य लगना है) को कृषि में पारंगत बनाने की व्यवस्था।
2. स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार सिंचाई साधनों को एकत्रित करने की व्यवस्था। कृषि संभावित भूमि को, कृषि योग्य बनाकर उनका आबंटन (ऐसे व्यक्तियों को जिनके पास कृषि भूमि नहीं है) की व्यवस्था।
3. बंजर भूमि में उपयोगी फलदार वृक्ष, जड़ी बूटियों को लगाने की व्यवस्था।

4. कृषि के साथ उपयोगी वृक्ष, चारा, साग सब्जियों, व सुगंधित वनस्पतियों की उन्नत प्रणाली को सुलभ (प्रशिक्षण व क्रियान्वयन) करने की व्यवस्था।
5. उन्नत बीज उपलब्ध कराने व तैयार कराने की व्यवस्था। गाँवव्यापी गोबर गैस व कम्पोस्ट खाद बनाने के लिए व्यवस्था।
6. कृषि, फल, साग, सब्जियों में होने वाले रोगों के निवारण में, स्थानीय अनुभवों को सर्वाधिक उपयोग करने की व्यवस्था। रोगों के निवारण न होने की स्थिति में अन्य बाह्य प्राप्त स्रोतों के सहयोग से निवारण की व्यवस्था।
7. कृषि को उत्पादन बढ़ाने के लिए समस्त आवश्यकीय उपायों को सुलभ करने की व्यवस्था। कृषि संबंधी समस्त समस्याओं को निराकरण उत्पादन सलाहकार समिति करेगी।

पशुपालन :-

कृषि के साथ पशुपालन अनिवार्य होगा। पशुपालन के साथ गोबर गैस प्लांट अनिवार्य होगा। गोबर गैस प्लांट स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार कुछ परिवार मिलकर, सामूहिक रुप से या प्रत्येक परिवार के लिए लगाया जायेगा। पशुपालन का मुख्य उद्देश्य खेत जोतने के अलावा गाँव में आवश्यकता से अधिक दूध, घी आदि का उत्पादन, गोबर गैस द्वारा गाँव में ईंधन व प्रकाश तथा खाद की पूर्ति करना होगा। पशुपालन इस अनुपात में करना होगा। जिससे गाँव की आवश्यकतानुसार खाद की पूर्ति, गोबर व कम्पोस्ट खाद पर्याप्त हो सके। साथ ही मिट्टी का लवणी करण, अम्लीय करण कठोरपन, व उर्वरक क्षमता में हो रहे ह्रास को पूरी तरह रोका जा सके।

प्रत्येक कृषक अपने खेत में इस प्रकार का फसल-चक्र अपनाएगा जिससे उसके पास जितने पशु हैं उसके लिए पर्याप्त मात्रा में चारा, घास, भूसी मिल सके। इस व्यवस्था में उन्हें पारंगत बनाने की व्यवस्था होगी।

पशुओं के रोग निवारण के लिए स्थानीय अनुभवों को सर्वाधिक उपयोग करने की व्यवस्था होगी। इन उपायों से रोग निवारण न होने की स्थिति में बाह्य विशेष चिकित्सा की व्यवस्था होगी।

उपरोक्त अर्हता को प्राप्त करने की व्यवस्था उत्पादन सलाहकार समिति करेगी। देश विदेश में शहद की बढ़ती हुई मांग को ध्यान में रखते हुए मधुमक्खी पालन पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।

स्थानीय मानसिकता व आवश्यकताओं के आधार पर भेड़, रेशम के कीड़े, बकरी व अन्य पशुओं के पालन की व्यवस्था की जाएगी।

वन वनोपज व वनौषधि :-

गाँव सीमावर्ती वनों (यदि वे हैं तो) का प्रबंध, "उत्पादन-कार्य सलाहकार समिति" द्वारा किया जायेगा। वनों की सुरक्षा की जिम्मेदारी प्रत्येक गाँव वासी की होगी। वन से वनोपज व वनौषधियों के संग्रह की व्यवस्था उत्पादन सलाहकार समिति करेगी। कुछ ग्राम वासियों की आजीविका का साधन वनोपज व वनौषधियों का संग्रह करना ही होगा। उनके द्वारा संग्रह करने के आधार पर ही विनिमय कोष क्रय कर उनका मूल्य देगा।

गाँव के लिए वनों से लकड़ी की आवश्यकता की पूर्ति सदुपयोगिता अनुसार "उत्पादन-कार्य सलाहकार समिति" तय करेगी ताकि वनों के संरक्षण में कोई कमी न आये।

खनिज :-

स्थानीय विविध उत्पादनों, आवास निर्माण सड़क मार्ग आदि में लगने वाली खनिज वस्तुओं उचित स्थान से उपयोग करने की व्यवस्था "उत्पादन-कार्य सलाहकार समिति" द्वारा होगी। यदि खनिज पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, व उसकी गाँव से बाहर भी मांग है, उस स्थिति में कुछ व्यक्ति खनिज-उत्पादन के आधार पर मूल्य "विनिमय-कोष" द्वारा दिया जायेगा। उत्पादित खनिजों का विनिमय, विनिमय कोष द्वारा ही किया जाएगा। उत्पादित खनिजों के स्थल में उनमें व्यवसाय मूल्य को स्थापित करने की व्यवस्था रहेगी।

हस्त शिल्प, हस्त कला संबंधी उत्पादन कार्य :-

स्थानीय रुप से उपलब्ध, जानकारी व आवश्यकताओं के आधार पर गाँव के कुछ सदस्यों को निम्न कार्यों में लगाया जाएगा। इसके लिए प्रशिक्षण व अन्य सुविधाओं की व्यवस्था "उत्पादन-कार्य सलाह समिति" करेगी। सभी उत्पादित वस्तुओं को विनिमय-कोष समिति खरीदेगी व वह उसका उचित मूल्य देगी।

चित्र कला, मूर्ति कला, बुनाई, कढ़ाई, छपाई, सिलाई दस्तकारी, रंगाई, सूत कातना, सूखा पत्ता, कागजों से अलंकारिक स्वरुप देने का कार्य, ग्रिटिंग्स कार्ड बनाने का कार्य, एम्ब्राइडरी, इनग्रेव्हिंग का कार्य, स्थानीय अनुभवों के आधार पर तत्काल क्रियान्वयन करना व उनको और ज्यादा कुशल, उन्नत और प्रोत्साहित करने की व्यवस्था होगी।

ग्राम शिल्प :-

हस्त शिल्प की तरह कुछ व्यक्तियों को ग्राम शिल्प संबंधी कार्यों में लगाया जावेगा। यह कार्य निम्न में से हो सकते हैं :-

धातु कला, काष्ठ कला, कृषि संबंधी औजार, चर्म कला, बांस कला, फर्नीचर, रेशम उद्योग, कुम्हार सम्बंधी उत्पादन, मिट्टी के बर्तनों पर नक्काशी व अन्य तरह के खिलौने आदि बनाने का कार्य। विशेष कपड़ा बुनाई (स्थानीय अनुभव के आधार पर)।

कुटीर उद्योग :-

कुटीर उद्योग से संबंधित उत्पादन कार्य :- हस्त करघा, रेशम उद्योग, कालीन व चटाई बनाना, साबुन, तेल, सेन्ट, क्रीम, दन्त मंजन, शैम्पू व अन्य सौन्दर्य प्रसाधनों का उत्पादन, पत्तों से दोना/कटोरी आदि बनाने का कार्य (जो कि रेलवे व ब्याह शादी व अन्य उत्सवों में उपयोग में लाए जा सकते हैं।) आटा चक्की, तेल घानी, धान कुटाई, गुड़ शक्कर बनाना, अचार, जाम, मुरब्बा, फलों का रस पेय पदार्थों का निर्माण, अगरबत्ती, काजल, जड़ी बूटियों पर आधारित दवाइयां।

उपर्युक्त सभी कुटीर उद्योगों के लिए आवश्यक जानकारी उपलब्ध कराना।

ग्रामोद्योग :-

मिट्टी पर आधारित व स्थानीय मदद से उपलब्ध, कच्चे माल से आवास बनाने का उद्योग, फलों सब्जियों का डिब्बा बंद करना/संरक्षण, ग्राम के लिए आवश्यकीय औजार। कल पुर्जो का निर्माण स्थानीय रुप से उपलब्ध, कच्चे माल पर आधारित उद्योग, कृषि व आस पास के उद्योगों के लिए कल पुर्जो का उत्पादन, कूप, तालाब जलाशय, नहर, सड़क, बनाने के लिए जानकारी व व्यवस्था।

सेवा :-

धोबी, नाई, साइकिल, रेडियो, टी.व्ही., कृषि यंत्रों व अन्य यंत्रों की मरम्मत, सुधारने के लिए कुछ व्यक्तियों को लगाया जायेगा। यहां प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी, उन्हें उपलब्ध कराया जायेगा। इनके द्वारा लिया गया सेवा का प्रतिफल को, ग्राम सभा द्वारा तय किया जायेगा।

5) स्वायत्त सहकारी विनिमय-कोष व्यवस्था

गाँव में हर तरह का विनिमय "सहकारी विनिमय-कोष समिति" द्वारा संचालित "स्वायत्त सहकारी विनिमय-कोष द्वारा किया जायेगा। स्वायत्त का तात्पर्य समझदारी सहित आवश्यकता से अधिक उत्पादन। विनिमय कोष, गाँव की मुख्य संस्था होगी। इसका अपना अलग से संविधान होगा। यह संस्था लाभ-हानि मुक्त व्यवस्था पर कार्य करेगी। इसका मुख्य उद्देश्य गाँव के प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उत्पादित वस्तुओं का क्रय करना व उनकी आवश्यकता अनुसार वस्तुओं का विक्रय करना होगा। साथ ही यह कोष "उत्पादन-कार्य

विनिमय सलाहकार समिति" व "शिक्षा समिति" के साथ मिलकर कार्य करेगी व व्यापारी करण के स्थान पर उत्पादनीकरण पर ध्यान देगी। विनिमय कोष की कार्य पद्धति निम्न प्रकार से होगी।

विनिमय कोष (बैंक) नौकरी की मानसिकता को हटाकर उत्पादन की मानसिकता को लाने के लिए शिक्षा समिति के साथ सहयोग करेगा। यह गाँव में रह रहे सब व्यापारियों को होर्डिंग (संग्रह) के स्थान पर उत्पादनीकरण का कार्य के लिए प्रेरणा, व प्रशिक्षण भी देगा। इस तरह लाभ-हानि मुक्त उत्पादन व विनिमय व्यवस्था जो कि श्रम के आदान प्रदान व आवर्तनशीलता पर आचरित होगी, को स्थापित करने में विनिमय कोष कार्य करेगा।

विनिमय व्यवस्था बैंकिग पद्धति पर आधारित होगी। प्रत्येक व्यक्ति जो स्थानीय सीमावर्ती निवासी है व उत्पादित वस्तुओं का विक्रय करता है और आवश्यकीय वस्तुओं का क्रय करता है, वह इस कोष का खातेदार (सदस्य) होगा। प्रत्येक व्यक्ति का खाता विनिमय कोष में होगा। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादित वस्तुओं को विनिमय कोष को बेचेगा। वस्तु मूल्य निकटस्थ बाजार भाव के आधार पर तय होगा (निकटस्थ बाजार में जाकर बेचने से, जो दाम मिलेंगे उसमें परिवहन मूल्य घटा दिया जायेगा। विक्रय मूल्य निकटस्थ बाजार भाव के अनुसार तय होगा।

कोष इसी तरह बाहर (शहर व अन्य बाजारों) से वस्तुओं को थोक भाव खरीदेगा व अपने सदस्यों को उपरोक्त पद्धति से बेचेगा। इसी तरह कोष में गाँव के सदस्यों द्वारा, बेची हुई वस्तुएँ, जो स्थानीय आवश्यकता से बच जायेगी, उन्हें शहर व अन्य बाजारों में बेचेगा व उनका मूल्य प्राप्त करेगा। इस क्रय विक्रय से जो कुछ भी अनायास लाभ होगा, उसको गाँव की सामान्य सुविधाओं को सुदृढ़ बनाने के लिए अर्पित किया जावेगा। यह कार्य ग्राम स्वराज्य सभा द्वारा संचालित किया जाएगा। इसी धन को गाँव के विकास पर खर्च किया जावेगा। कोष में प्रत्येक सदस्य की न्यूनतम राशि हमेशा जमा रहेगी ताकि कोष का कार्य सुचारु रुप से चलाया जा सके। जिसकी राशि नहीं होगी उसे कोष, ब्याज रहित ऋण देगा। जिसे वह सदस्य वस्तु का उत्पादन कर, कालान्तर में बैंक को विक्रय कर चुकता कर देगा।

जिन सदस्यों ने न्यूनतम से अधिक राशि, खाते में रखी है उनकी सहमति से, विनिमय कार्य के लिए आवश्यकता पड़ने पर, विनिमय कोष, उस धन राशि का उपयोग करेगा व अन्य राष्ट्रीय कृत बैंक से जो ब्याज मिलता है वह उनको देगा। यह विधि तब तक रहेगी, जब तक, बैंक व विनिमय-प्रणाली अलग-अलग रहेगी। पूरे देश में स्वराज्य व्यवस्था स्थापित होने पर लाभ-हानि मुक्त विनिमय प्रणाली स्थापित हो जाएगी।

गाँव से सभी प्रकार की कर वसूली का दायित्व विनिमय कोष का होगा। कर निर्धारण का कार्य ग्राम सभा करेगी।

संक्रमण काल में उपरोक्त बैंक का गारन्टी दार, राष्ट्रीय कृत सहकारी बैंक होगा जो आरंभ से उसे कार्यशील पूंजी व अन्य ऋण देगा। हानि की भर पाई करेगा। विनिमय-कोष ही आगे अपने सदस्यों को ऋण देगा व वह ही उनसे वसूली करेगा। प्रत्येक सदस्य जो ऋण लेगा वह उत्पादित वस्तुओं के रुप में विनिमय कोष का ऋण लौटा देगा।

विनिमय-कोष शनैः-शनैः सरकारी बैंक से ली गई पूंजी को लौटाता रहेगा। इस तरह सरकारी बैंक के रुपये का ज्यादातर उपयोग होगा।

आरंभ में समाज सेवी (प्रशिक्षण प्राप्त) व्यक्ति विनिमय कोष को चलावेंगे। बाद में स्थानीय व्यक्ति जब व्यवहार शिक्षा/व्यवसाय शिक्षा में पारंगत हो जावेंगे तब वह उस बैंक को चलावेंगे।

सौ परिवार समूह के गाँव के लिए औसतन तीन व्यक्ति विनिमय कोष को चलावेंगे। इसमें से एक व्यक्ति गाँव में उत्पादित वस्तुओं को, अन्य बाजार में बेचेगा व अन्य बाजारों से सामान क्रय कर, विनिमय बैंक में लाएगा। दूसरा व्यक्ति लेखा जोखा व खातों की देख-रेख करेगा। तीसरा व्यक्ति सामान का क्रय-विक्रय करेगा। व उनको भंडार में रखने की व्यवस्था करेगा। आवश्यकता पड़ने पर अन्य व्यक्तियों को भी विनिमय कोष में मनोनीत किया जा सकता है।

विनिमय-कोष के काम काज को सुगम बनाने के लिए कम्प्यूटर को प्रयोग में लाया जायेगा। कालान्तर में विनिमय-कोष व्यवस्था, पूरे राज्य व देश में, स्थापित हो जाने पर, ग्राम विनिमय-कोष क्रय से, ग्राम समूह क्षेत्र, जिला मंडल, मुख्य राज्य व प्रधान राज्य के विनिमय कोष समितियों के साथ आदान-प्रदान से जुड़ा रहेगी। "विनिमय-कोष" संविधान के अनुसार, कार्य करता रहेगा, जिसकी जिम्मेदारी विनिमय कोष समिति की होगी। जो समय-समय पर खातेदार सदस्यों की सामान्य बैठक बुलाकर, उनके सामने प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा। सामान्य बैठक में बहुमत के आधार पर मार्ग-दर्शन प्राप्त कर सकेगा। विनिमय कोष समिति के कार्य का मूल्यांकन ग्राम सभा करेगी व समय-समय पर उन्हें मार्ग दर्शन देगी।

कृषि उपज और प्रौद्योगिकी उपज में श्रम मूल्य के आधार पर, मूल्यांकन को स्थापित करने वाली व्यवस्था रहेगी।

6) स्वास्थ्य-संयम व्यवस्था

ग्राम के सभी व्यक्तियों के स्वास्थ्य एवं संयम की जिम्मेदारी, ग्राम स्वास्थ्य-संयम समिति की होगी। यह समिति शिक्षा-संस्कार समिति के साथ मिलकर कार्य करेगी। स्वास्थ्य-संयम संबंधी पाठ्यक्रम और कार्यक्रम को तैयार कर शिक्षा में सम्मिलित कराएगी। ग्राम चिकित्सा केन्द्र की व्यवस्था, योगासन, व्यायाम, अखाड़ा खेल कूद व्यवस्था, स्कूल के अलावा खेल मैदान (स्टेडियम), सांस्कृतिक भवन, क्लब आदि व्यवस्था का दायित्व, ग्राम स्वास्थ्य समिति का होगा समिति स्थानीय रुप से उपलब्ध जड़ी-बूटियों द्वारा औषधि बनाने के लिए आवश्यकीय व्यवस्था करेगी। इसके साथ ही पशु चिकित्सा केन्द्र की व्यवस्था का दायित्व भी स्वास्थ्य समिति का होगा। समिति "समन्वित चिकित्सा" (आयुर्वेद, एलोपैथी, होमियोपैथी, यूनानी, योग प्राकृतिक, मानसिक) के उन्नयन की व्यवस्था करेगी।

सब ग्राम वासियों को स्वास्थ्य व्यवहार, आचरण संबंधी मूल्यों का मूल्यांकन, उपयोगिता व प्रयोजन मूलक पद्धति से, समिति व्यवस्था प्रदान करेगी। अलंकार, प्रसाधन कार्य, शरीर स्वच्छता, महिलाओं व बच्चों को रोग-निरोधी टीके, और सीमित व संतुलित परिवार के रुप में व्यवहृत होने के लिए व्यवस्था प्रदान करेगी। ऐसी जागृति के लिए एक व्यापक कार्यक्रम को समिति चलाएगी। सामान्य रुप में घटित अस्वस्थता को दूर करने के लिए, घरेलू चिकित्सा में प्रत्येक परिवार को अथवा प्रत्येक परिवार में एक व्यक्ति को प्रवीण बनाने के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाए जाएँगे। घरेलू चिकित्सा से रोग शमन न होने की स्थिति में स्थानीय केन्द्र द्वारा चिकित्सा होगी। वहाँ राहत न मिलने की स्थिति में, निकटवर्ती चिकित्सा केन्द्र में पहुँचाने और चिकित्सा सुलभ कराने की व्यवस्था स्वास्थ्य संयम समिति करेगी।

7) न्याय-सुरक्षा व्यवस्था

न्याय-सुरक्षा समिति :- ग्राम सभा के द्वारा मनोनीत की जायेगी। यह समिति गाँव की सम्पूर्ण व्यवहार संबंधी विवादों को हल करने के लिए स्वतंत्र होगी व बाह्य हस्तक्षेपों से मुक्त रहेगी। न्याय प्रक्रिया का स्वरुप स्वयं स्फूर्त सुधार प्रणाली पर आधारित रहेगा ग्राम न्यायलय में सम्पूर्ण प्रक्रिया मानवीय संचेतनावादी व्यवहार पद्धति पर आधारित होगी। चूंकि प्रत्येक मानव को, मानवीयता पूर्ण पद्धति, प्रणाली व नीति पूर्वक जीने का अधिकार समान है। इसके अनुसार गाँव में मानवीयता पूर्ण आचरण पद्धति, मानवीयता पूर्ण व्यवहार प्रणाली व अर्थ (तन, मन, धन) की सुरक्षात्मक व सदुपयोगात्मक नीति रहेगी। जो भी व्यक्ति इस व्यवस्था की निरंतरता बनाए रखने में हस्तक्षेप करेगा, वह सुधरने के लिए बाध्य होगा। मानव अज्ञान, अत्याशा और अभाववश ही गलती, अपराध तथा तन, मन, धन रुपी अर्थ का अपव्यय करता है। यह व्यवहार मानवीयता

और सामाजिकता व व्यवस्था की दृष्टि से सहायक नहीं है। न्याय-सुरक्षा समिति, न्याय सुलभता और सुरक्षा कार्य में निष्ठान्वित तथा प्रतिज्ञाबद्ध रहेगी।

न्याय-सुरक्षा समिति, मानवीय आचार संहिता के अनुसार न्याय प्रदान करेगी। मानवीय आचार संहिता के अनुसार न्याय व्यवस्था के चार प्रधान आयाम है :- (1) चरित्र में न्याय (2) व्यवहार में न्याय (3) उत्पादन में न्याय (4) विनिमय में न्याय।

1. चरित्र में न्याय :-

स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष और दया पूर्ण कार्य का वर्तमान और उसका मूल्यांकन, चरित्र में न्याय का स्वरूप है। स्वधन का तात्पर्य श्रम नियोजन का प्रतिफल, कला तकनीकी, विद्वत्ता विशेष प्रदर्शन, प्रकाशन किए जाने के फलस्वरूप प्राप्त पुरस्कार और उत्सवों के आधार पर किया गया आदान-प्रदान के रूप में प्राप्त, पारितोष रूप में प्राप्त धन या वस्तुएँ से है।

स्वनारी, स्वपुरूष :-

विवाह पूर्वक स्थापित दाम्पत्य संबंधी जिसका पंजीयन ग्राम सभा में होगा।

दया पूर्ण कार्य :-

(1) अखण्ड समाज सूत्र सहज मानव मूल्य स्थापित मूल्य व शिष्ट मूल्यों की पहचान और उसका निर्वाह।

(2) संबंधों की पहचान और निर्वाह क्रम में तन, मन, धन, रुपी अर्थ का अर्पण समर्पण।

(3) निस्सहाय, कष्ट ग्रस्त, रोग ग्रस्त और प्राकृतिक प्रकोपों से प्रताड़ित व्यक्तियों को सहायता प्रदान करना।

(4) प्राकृतिक, सामाजिक और बौद्धिक नियमों का पालन आचरण पूर्वक प्रमाणित करते हुए मानवीय परंपरा के लिए प्रेरक होना।

(5) जो जैसा जी रहा है, कार्य कर रहा है उसका मूल्यांकन करना। जहां-जहां सहायता की आवश्यकता है वहां सहायता प्रदान करना। समझा हुआ को समझाना, सीखा हुआ को सीखाना, एवं किया हुआ को करना ही सहायता का स्वरूप।

(6) पात्रता हो उसके अनुरूप वस्तु न हो, उसके लिए वस्तु को उपलब्ध कराना ही दया है।

2. व्यवहार में न्याय (मानवीय व्यवहार) :-

(मानवीय व्यवहार) मानव तथा नैसर्गिक संबंधों व उनमें निहित मूल्यों की पहचान और उसका निर्वाह करना। मानव परंपरा में मानव संबंध प्रधानतः सात प्रकार से गण्य है :-

(1) माता - पिता

(2) पुत्र - पुत्री

(3) गुरु - शिष्य

(4) भाई - बहन

(5) मित्र - मित्र

(6) पति - पत्नी

(7) स्वामी - सेवक (साथी - सहयोगी)

उपरोक्त संबंधों में निहित मूल्य निम्न है :-

स्थापित मूल्य	शिष्ट मूल्य
(1) विश्वास	सौम्यता
(2) स्नेह	निष्ठा
(3) कृतज्ञता	सौजन्यता
(4) गौरव	सरलता
(5) ममता	उदारता
(6) वात्सल्य	सहजता
(7) सम्मान	सौहार्द्र
(8) श्रद्धा	पूज्यता
(9) प्रेम	अनन्यता

मानव संबंधों में साम्य मूल्य विश्वास तथा पूर्ण मूल्य प्रेम है। बिना विश्वास के कोई भी संबंध का निर्वाह संभव नहीं है। संबंधों में विश्वास का निर्वाह न कर पाना ही अन्याय है।

मानव के नैसर्गिक संबंध तीन प्रकार से गण्य है :-

(1) पदार्थावस्था के साथ संबंध।

(2) प्राणावस्था (अन्य, वनस्पति) के साथ संबंध।

(3) जीवावस्था (पशु पक्षी आदि मानवेतर जीवों) के साथ संबंध।

उपरोक्त संबंधों में उपयोगिता मूल्य दो प्रकार से गण्य है :-

(1) परस्पर उपयोगिता पूरकता, उदात्तीकरण के रूप में रचना-विरचना क्रम में उपयोगिता।

(2) परमाणु में विकास क्रम में उपयोगिता।

उपयोगिता का स्वरूप निम्न है:-

(1) प्राकृतिक सम्पदा (खनिज, वनस्पति) का उसके उत्पादन के अनुपात में उपयोग संतुलन के अर्थ में।

(2) प्राकृतिक सम्पदा के उत्पादन में विघ्न न डालना एवं प्राकृतिक सम्पदा के उत्पादन में सहायक बनना। (नैसर्गिक पवित्रता को समृद्ध बनाए रखे बिना, मानव स्वयं समृद्ध नहीं हो सकता)

3. उत्पादन में न्याय।

(1) प्रत्येक व्यक्ति द्वारा आवश्यकता से अधिक उत्पादन करना।

(2) प्रत्येक व्यक्ति में आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने योग्य कुशलता व निपुणता को स्थापित करना, जिसका दायित्व शिक्षा-संस्कार समिति को होगा।

(3) उत्पादन के लिए व्यक्ति में निहित क्षमता योग्यता के अनुरूप उसे प्रवृत करना जिसका दायित्व “उत्पादन कार्य सलाहकार समिति” का होगा।

(4) उत्पादन के लिए आवश्यकीय साधनों को सुलभ करना इसका दायित्व “सहकारी विनिमय कोष समिति” का होगा।

(5) उत्पादन कार्य सामान्य आकांक्षी (आहार, आवास, अलंकार) महत्वाकांक्षी (दूरदर्शन, दूरगमन, दूरश्रवण) संबंधी वस्तुओं के रुप में प्रमाणित होना।

(6) "उत्पादन कार्य सलाह समिति" व "विनिमय कोष समिति" संयुक्त रुप से सम्पूर्ण ग्राम की उत्पादन संबंधी तादात, गुणवत्ता व श्रम मूल्यों का निर्धारण करेगी।

4. विनिमय में न्याय :-

(1) उत्पादित वस्तु के विक्रय के लिए क्रय आदान-प्रदान सुलभ करना।

(2) विनिमय प्रक्रिया प्रथम चरण में, श्रम मूल्य को वर्तमान में प्रचलित प्रतीक मुद्रा के आधार पर मूल्यांकित करने की व्यवस्था रहेगी। जैसे स्थानीय उत्पादन को, जहां उसको बेचना है, उस मंडी की दरों पर आधारित उसका क्रय मूल्य निर्धारित होगा। ग्राम की आवश्यकता के लिए अन्य बाजारों से, वस्तुओं का विक्रय मूल्य, उन बाजारों के क्रय मूल्य पर आधारित होगा।

(3) द्वितीय चरण के श्रम के आधार पर प्रतीक मुद्रा को मूल्यांकन करने की व्यवस्था होगी व उसी के आधार पर क्रय विक्रय कार्य सम्पन्न होगा।

(4) तृतीय चरण में श्रम मूल्य के आधार पर, वस्तु मूल्य का मूल्यांकन होगा जिसका आधार उपयोगिता व कला मूल्य ही रहेगा व इसी के अनुसार लाभ, हानि, संग्रह मुक्त पद्धति से विनिमय प्रक्रिया संपन्न होगी। अर्थात् विनिमय प्रक्रिया श्रम मूल्य के आदान प्रदान के रूप में सम्पन्न होगी।

"न्याय सुरक्षा समिति" सुरक्षा कार्य को ग्रामवासियों के तन, मन, धन रूपी अर्थ के सदुपयोग के आधार पर क्रियान्वयन करेगा। जैसे :-

(1) ग्राम में सुरक्षा
(2) उत्पादन एवं विनिमय सुरक्षा
(3) परिवार सुरक्षा
(4) मानवीय शिक्षा-संस्कार सुरक्षा
(5) स्वास्थ्य संयम सुरक्षा
(6) नैसर्गिक सुरक्षा
(7) संगीत, साहित्य, कला की सुरक्षा

"न्याय सुरक्षा समिति" ग्राम की सभी प्रकार की सुरक्षाओं के प्रति जागरूक रहेगी।

ग्राम सुरक्षा :-

ग्राम सीमा में निहित भूमि का क्षेत्रफल और उस भूभाग में निहित वन, खनिज, कृषि योग्य भूमि, बंजर भूमि, जल, जल स्रोत, जल संरक्षण, भूमि संरक्षण, सामान्य सुविधा आदि कार्य को सदुपयोग के आधार पर सुरक्षित करना ग्राम सुरक्षा का तात्पर्य है।

ग्राम से संबंधित वन क्षेत्र और ग्राम की (सरकारी) भूमि और स्वामित्व की भूमि, ग्राम सभा के अधिकार व कार्य क्षेत्र में रहेगी। यदि कोई वन क्षेत्र व भूखण्ड, किसी गाँव से सम्बद्ध न हो ऐसी स्थिति में उसको किसी न किसी गाँव से सम्बद्ध करने की व्यवस्था रहेगी। ऐसे ग्राम क्षेत्र की सुरक्षा का दायित्व भी "न्याय सुरक्षा समिति" का होगा।

उत्पादन और विनिमय सुरक्षा :-

उत्पादन सुरक्षा :-

(1) गाँव में जितने भी प्रकार का उत्पादन संबंधी मौलिकताएँ प्रमाणित होंगी उन सबकी सुरक्षा का दायित्व न्याय सुरक्षा समिति का होगा। जैसे किसी उत्पादन कार्य में विशेष प्रकार की मौलिकता अथवा मौलिक प्रणाली अथवा मौलिक औजार मौलिक विधि जो परंपरा में नहीं रही है, ऐसी स्थिति में उन सबको सुरक्षित किया जाएगा। इन सबसे संबंधित मूल वाङ्गमय, (डिजाइन,) चित्रण, नक्शा प्रक्रिया, प्रणाली और विधियों को लिपि बद्ध, सूत्र बद्ध कर सुरक्षित करेगा। आवश्यकता पड़ने पर पुरस्कार की व्यवस्था करेगा।

(2) औषधियों का अनुसंधान, वनस्पतियों की पहचान, ज्योतिष संबंधी अनुसंधान, हस्तरेखा व सामुद्रिक शास्त्र संबंधी साहित्य का अनुसंधान जो परंपरा में नहीं रहा है, उसको उपयोगिता के अनुसार उसकी सुरक्षा का दायित्व "सुरक्षा समिति" का होगा।

(3) साहित्य, कला, संगीत, शिल्प में परंपरा की श्रेष्ठता का अनुसंधान, जो परंपरा में नहीं थी, ऐसी प्रस्तुति होने की स्थिति में उसका यथावत् संरक्षण करेगा।

(4) खेलकूद व्यायाम आदि में परंपरा से अधिक श्रेष्ठता और अनुसंधानों को संरक्षित करेगा।

(5) उपरोक्त कार्य के लिए "न्याय सुरक्षा समिति" क्रम से "उत्पादन कार्य सलाहकार समिति", "स्वास्थ्य संयम समिति" ,"शिक्षा संस्कार समिति" के सहयोग से मूल्यांकन प्रक्रिया सम्पादित करेगा।

विनिमय में सुरक्षा :-

(1) श्रम मूल्यों को पहचानने की दिशा में "सुरक्षा समिति" निरंतर सजग रहेगी। एक श्रम मूल्य का आकलन जो कुछ भी ग्राम स्वराज्य स्थापना दिवस में प्रमाणित रहेगा, उसकी गति के प्रति सतर्क रहेगा। निपुणता, कुशलता, कार्य गति, समय व साधन के कुल संयोग से श्रम का मूल्यांकन होगा। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु के संबंध में उत्पादन गति में वृद्धि करे, श्रम मूल्य में कमी और विनिमय में उसकी समृद्धि के अर्थ को सार्थक बनाने का कार्य समिति करेगी।

(2) लाभ-हानि के संबंध में सतर्क रहना। (अनावश्यक लाभ और असहनीय हानि न होने के लिए सतर्क होना) उसके लिए सभी व्यवस्था प्रदान करना।

(3) वस्तु की उत्पादकता के आधार पर मूल्यांकन करने में सतर्क रहना व कार्यरूप देना।

(4) सभी विनिमय की संभावना को बनाए रखने में सतर्क रहना व प्रोत्साहित करना।

परिवार सुरक्षा :-

(1) प्रत्येक परिवार की महिमा और गरिमा को ग्राम से बाह्य वातावरण से दूषित होने से बचाना। प्रचार तंत्र द्वारा भ्रमित करने वाली सभी पक्षों से सम्पूर्ण परिवार को सतर्क करते हुए संरक्षित करना।

(2) साहित्य और कला को परिवार राज्य और ग्राम स्वराज्य के अर्थ में प्रदर्शन कार्य के लिए प्रोत्साहन पूर्वक प्रवृत्त करना।

(3) परिवार गत अंतर्विरोध की संभावनाओं को दूर करने के रूप में परिवारों को सुरक्षा प्रदान करना।

(4) किसी एक परिवार की श्रेष्ठता को सभी परिवारों में, सुलभ करने के रूप में परिवार को सुरक्षा प्रदान करना।

(5) किसी परिवार के साथ आकस्मिक दुर्घटना, प्राकृतिक प्रकोप से, असाध्य रोग से क्षतिग्रस्त होने की स्थिति में, उनसे सान्त्वना व सहायता प्रदान करने के रूप में परिवार की सुरक्षा।

शिक्षा संस्कार सुरक्षा :-

(1) न्याय सुरक्षा समिति यह सुनिश्चित करेगी कि प्रत्येक ग्रामवासी को मानवीय शिक्षा (व्यवहार शिक्षा व व्यवसाय शिक्षा) ठीक से मिल रही है या नहीं। जो स्कूल छोड़ दिए हैं, स्कूल में नहीं आते हैं, उनके लिए उनके परिवार वालों से मिल जुलकर, शिक्षा संस्कार को सुलभ कराएगी।

(2) मानवीय शिक्षा में कहीं से भी व्यतिरेक उत्पन्न होता है तो उसको दूर करने की व्यवस्था करेगी।

(3) शिक्षकों का मूल्यांकन करेगी ठीक से शिक्षा प्रदान कर रहे हैं या नहीं? समय-समय पर आकर मार्ग दर्शन देगी।

स्वास्थ्य संयम सुरक्षा :-

(1) ग्राम वासियों की बुरी आदतें, जैसे सिगरेट, बीड़ी, गाँजा, तम्बाकू जर्दा, शराब, अफीम, चरस, जुवा आदि समाज विरोधी बुरे प्रभावों के निराकरण के प्रति उन्हें जागृत कर सुधारना और उन्हें सुरक्षा प्रदान करना।

(2) पशु धन की सुरक्षा करना।

(3) जान माल की हानि न हो ऐसी व्यवस्था करना।

(4) वातावरण में यदि कोई प्रदूषण फैला रहा हो जो कि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, उसको रोकना।

नैसर्गिक सुरक्षा :-

सुरक्षा समिति नैसर्गिक सुरक्षा के लिए निम्न नियमों को ध्यान में रखते हुए कार्य करेगी :-

(1) गाँव की प्राकृतिक सम्पदा का (खनिज, वनस्पति) उसके अनुपात के रूप में उपयोग करेगी।

(2) प्राकृतिक सम्पदा के उत्पादन में, किसी के भी द्वारा विघ्न न डालने देना।

(3) प्राकृतिक सम्पदा के उत्पादन में सहायक होना, यह सुनिश्चित करना।

8) मूल्यांकन, प्रोत्साहन, निष्ठावान प्रक्रिया :-

ग्राम सभा द्वारा विभिन्न समितियों के कार्य का मूल्यांकन निम्न मार्गदर्शक सिद्धांतों द्वारा किया जायेगा :-

"उत्पादन-कार्य सलाहकार समिति" का मूल्यांकन निम्न आधारों पर किया जायेगा:-

1. कृषि, पशुपालन, वनोपज, हस्त शिल्प, ग्राम-शिल्प, कुटीर उद्योग, ग्रामोद्योग के कुल उत्पादन का मूल्यांकन।
2. उत्पादन में कार्य गति का मूल्यांकन।
3. उत्पादन में गुणवत्ता व उत्पादकता का मूल्यांकन।
4. उत्पादन कार्य में कुशलता व निपुणता का मूल्यांकन।
5. उत्पादन कार्य के लिए आवश्यकीय कच्चे माल/वस्तुओं की स्त्रोतों सहज सुलभता का मूल्यांकन।

6. प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए (प्रदूषण विहीन प्रणाली से) उत्पादन और उत्पादन कार्य में तकनीकी परिवर्द्धन का मूल्यांकन।
7. मानव परंपरा में आवश्यकीय व उपयोगी सामान्य आकाँक्षा (आहार, आवास, अलंकार) व महत्वकाँक्षा (दूरगमन, दूरदर्शन, दूरश्रवण) संबंधी वस्तुओं में उत्पादन कार्य का मूल्यांकन।

विनिमय-कोष सलाहकार समिति का मूल्यांकन :-

"विनिमय-कोष सलाहकार समिति" का मूल्यांकन निम्न आधार पर होगा :-

1. विनिमय सहजता व सुलभता का मूल्यांकन।
2. विनिमय में लाभ हानि मुक्त प्रणाली का मूल्यांकन।
3. विनिमय प्रणाली में स्वच्छता का मूल्यांकन।
4. विनिमय क्रियाकलाप में, परिमाण, परिमापन, का मूल्यांकन।
5. विनिमय कोष द्वारा उत्पादन और सहायता का मूल्यांकन।
6. विनिमय श्रम में गुणवत्ता का मूल्यांकन।
7. स्थानीय रूप से खरीदने वाली वस्तुओं क्रय-मूल्य, उसके विक्रय मूल्य के आधार पर और ग्राम वासियों के लिए बाह्य बाजारों से क्रय किया गया वस्तुओं का मूल्यांकन (क्रय मूल्य के आधार पर)
8. साधन प्रबंधो का मूल्यांकन।

शिक्षा-संस्कार समिति के कार्यों का मूल्यांकन :-

"ग्राम सभा" ग्राम के प्रत्येक व्यक्ति व परिवार में "शिक्षा-संस्कार समिति" के कार्यों का मूल्यांकन निम्न आधारों पर करेगी :-

1. संबंधों और मूल्यों की पहचान और निर्वाह, मानवीयता पूर्ण व्यवहार का मूल्यांकन।
2. स्वयं के प्रति विश्वास व श्रेष्ठता के प्रति सम्मान क्रिया का मूल्यांकन।
3. मानवीय आचरण (स्व धन, स्वनारी/स्वपुरूष, दया पूर्ण कार्य) का मूल्यांकन।
4. ग्राम जीवन व परिवार व्यवस्था में विश्वास व निष्ठापूर्ण आचरण का मूल्यांकन।
5. ग्राम व्यवस्था व ग्राम जीवन में भागीदारी का मूल्यांकन।

6. प्रत्येक व्यक्ति व परिवार से किया गया तन, मन व धन रूपी अर्थ की सदुपयोगिता का एवं सुरक्षा का मूल्यांकन।
7. मानव स्वयं व्यवस्था के रूप में संप्रेषित, अभिव्यक्त, प्रकाशित होने व समग्र व्यवस्था में भागीदार होने व उसकी संभावना का मूल्यांकन।
8. किसी व्यक्ति में बुरी आदत हो तो उसके, उससे (बुरी आदत से) मुक्त होने के आधार पर मूल्यांकन।

न्याय-सुरक्षा समिति का मूल्यांकन :-

"न्याय-सुरक्षा समिति" का मूल्यांकन निम्न आधारों पर होगा :-

1. आचरण में न्याय सुलभता का मूल्यांकन।
2. व्यवहार में न्याय सुलभता का मूल्यांकन।
3. उत्पादन में न्याय सुलभता का मूल्यांकन।
4. विनिमय में न्याय सुलभता का मूल्यांकन।
5. तन, मन, धन, रूपी अर्थ की सुरक्षा का मूल्यांकन।
6. ग्राम व प्राकृतिक वातावरण की सुरक्षा का मूल्यांकन।
7. उत्पादन एवं विनिमय सुरक्षा का मूल्यांकन।
8. परिवार सुरक्षा का मूल्यांकन।
9. शिक्षा संस्कार सुरक्षा का मूल्यांकन।
10. स्वास्थ्य संयम सुरक्षा का मूल्यांकन।
11. नैसर्गिक सुरक्षा का मूल्यांकन।

स्वास्थ्य-संयम सुरक्षा समिति के कार्यों का मूल्यांकन :-

1. व्यक्तियों में स्वास्थ्य के प्रति जागृति का मूल्यांकन शारिरिक व मानसिक संतुलन के आधार पर।
2. व्यक्ति, घर, ग्राम, गली, मोहल्लों, को स्वच्छ बनाए रखने का मूल्यांकन।
3. सीमित व संतुलित परिवार के आधार पर मूल्यांकन।
4. रोग निरोधी टीकों के प्रति जागरूकता के आधार पर मूल्यांकन।
5. योगासन, व्यायाम, खेल के प्रति जागरूकता के आधार पर मूल्यांकन।

6. रोगी को शीघ्र चिकित्सा उपलब्ध कराने का मूल्यांकन।
7. घरेलू चिकित्सा के प्रति जागरूकता का मूल्यांकन।
8. स्थानीय जड़ी-बूटियों के संरक्षण, संवर्धन व उनके प्रति जागरूकता का मूल्यांकन।

भूमिः स्वर्गताम् यातु, मनुष्यो यातु देवताम्।
धर्मो सफलताम् यातु, नित्यम् यातु शुभोदयम् ॥

मूल ग्रंथ

"अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन"

बनाम

"मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद"

दर्शन (मध्यस्थ दर्शन)

- मानव व्यवहार दर्शन
- मानव कर्म दर्शन
- मानव अभ्यास दर्शन
- मानव अनुभव दर्शन

वाद (सहअस्तित्ववाद)

- व्यवहारात्मक जनवाद
- समाधानात्मक भौतिकवाद
- अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

शास्त्र (अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन)

- व्यवहारवादी समाजशास्त्र
- आवर्तनशील अर्थशास्त्र
- मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

संविधान

- मानवीय आचार संहिता रूपी मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

परिभाषा

- परिभाषा संहिता

अन्य

- विकल्प एवं अध्ययन बिंदु
- आरोग्य शतक

मध्यस्थ दर्शन पर आधारित उपयोगी संकलन

परिचयात्मक संकलन

- जीवन विद्या एक परिचय
- दिव्य पथ (जीवन परिचय – श्रद्धेय श्री ए. नागराज)

सहयोगी संकलन

- संवाद भाग - 1
- संवाद भाग - 2

प्रकाशित पुस्तक प्राप्ति ईमेल :

books@divya-path.org

प्रकाशित एवं अप्रकाशित मूल प्रति डाउनलोड :

www.madhyasth.org

सामान्य पूछताछ :

info@divya-path.org

Madhyasth Darshan Information Portal /

'जीवन विद्या' गतिविधि जानकारी :

www.madhyasth-darshan.info